श्रीपुराणम्

आचार्य श्री जिनसेन

जैन साहित्य को समृद्ध बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कड़ी में विद्वत्जनों से अज्ञात आ. जिनसेन कृत श्रीपुराण की हिन्दी टीका आ. सुविधिसागर जी ने लिखी है।

श्रीपुराण में अनावश्यक विषय वस्तु का वर्णन नहीं करते हुए सारगर्भित तथ्यों को ही उजागर किया है। आदिनाथ भगवान के दशपूर्वभवों में व्रतों व उसके फलों का वर्णन हैं। भरत की दिग्विजय यात्रा से भरत क्षेत्र की सम्पूर्ण भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती हैं। भरत के सोलह सपने वर्तमान काल में चरितार्थ हो रहे हैं, जिन्हें चित्रों से सुसज्जित करके इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया हैं। श्रीपुराण की सरस व अर्थपूर्ण सुक्तियाँ जीवन की सत्यता का बोध कराती है। वे सुदृढ जीवन बनाने में सहायक हैं।

यह आदिपुराण की साम्यता के आधार पर उसका संक्षिप्त रूप है अतएव स्वाध्याय नियमधारियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

आ. सुविधिसागर महाराज के अमूल्य प्रेरक टिप्पणियों का संकलन पर्वों की समाप्ति पर अंकित है जो जीवन पथ को प्रशस्त करती हैं।

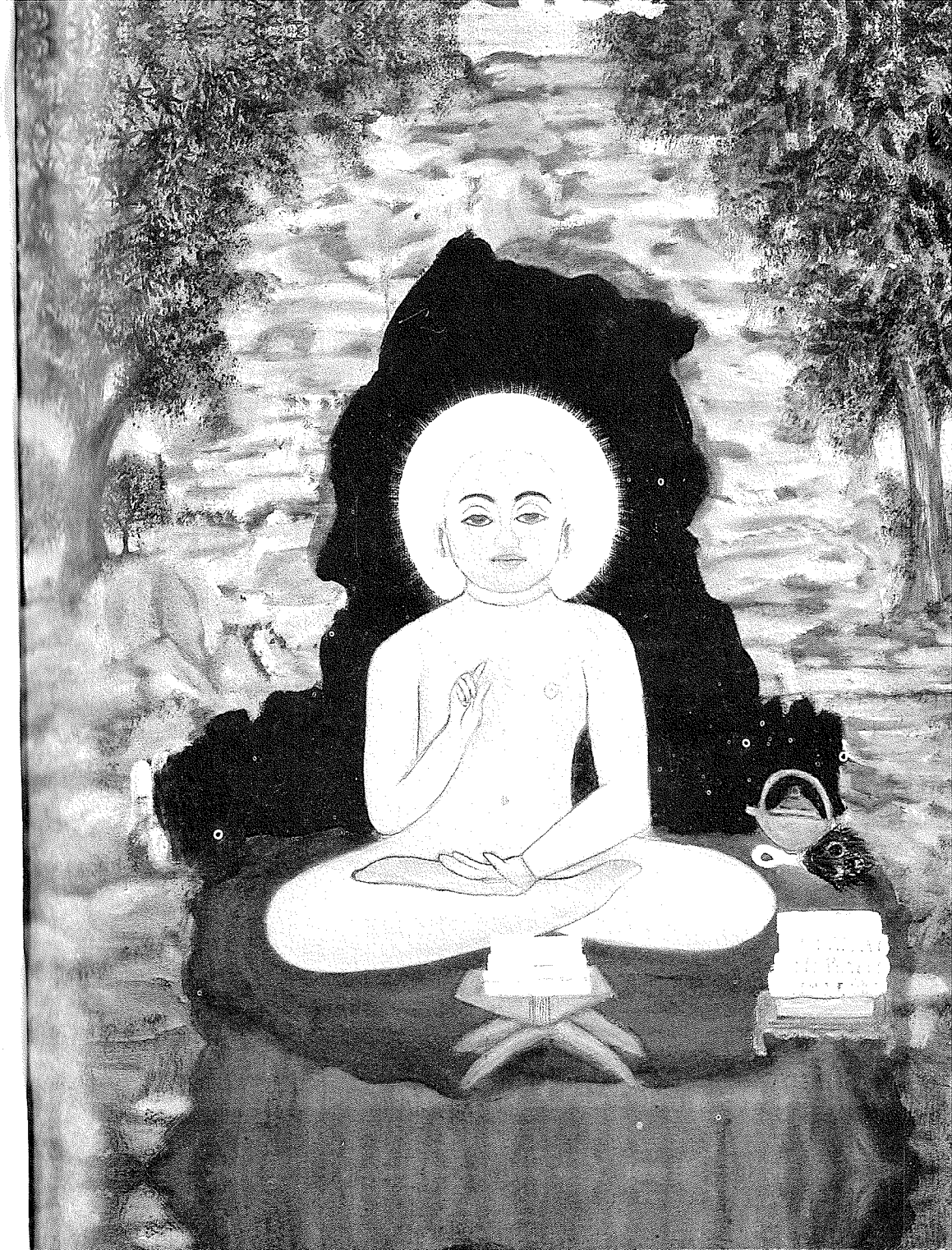

श्री अकलंक शोध संस्थान, कोटा का प्रथम पुष्प

वीतरागाय नमः

आचार्य श्री जिनसेन विरचितम्

श्रीपुराणम्

जिनवाणी कण्ठाभरण आचार्य सुविधिसागर कृत हिन्दी टीका

सम्पादक मण्डल

डॉ. बजरंग लाल

डॉ. हुकम चन्द जैन

डॉ. संस्कृति जैन

प्रकाशक

श्री अकलंक शोध संस्थान, कोटा

प्रकाशक

श्री अकलंक शोध संस्थान,

बसन्त विहार, कोटा 324 009–12

दूरभाष 0744 – 2400866

E-mail aklank_kota@yahoo.com

प्रथम संस्करण 2009

वीर निर्वाण संवत् 2635, आश्विन शुक्ल त्रयोदशी

शुक्रवार, 2 अक्टूबर 2009

मूल्य : रुपये 155.00

प्राप्ति स्थान

श्री अकलंक शोध संस्थान, कोटा

अध्यक्ष – राजेन्द्र कुमार मो. 98281 36162

मंत्री – अविनाश जैन मो. 93526 26623

भरतकुमार इन्दरचन्द पापड़ीवाल

3–4–9, पान दरिबा रोड, अप्पा हलवाई के पास,

औरंगाबाद (महाराष्ट्र) – 431 001

दूरभाष – 0240–2368785

मोबाइल – 093711 41104

E-mail –sanmati28@yahoo.com

मुद्रक

सौभाग्य प्रिन्टर्स एण्ड ग्राफिक्स, कोटा

विषय - अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1.	प्रकाशकीय पूर्वपीठिका	1
2.	सम्पादकीय	5
3.	आचार्य श्री जिनसेन	8
4.	प्रास्ताविक – आचार्य सुविधिसागर	11
5.	प्रथम पर्व – कालचक्र	67
6.	द्वितीय पर्व – आदिनाथ का पूर्वभव (महाबल की कथा)	87
7.	तृतीय पर्व – आदिनाथ का पूर्वभव (ललितांग एवं स्वयम्प्रभा)	107
8.	चतुर्थ पर्व – आदिनाथ का पूर्वभव (श्रीमती एवं वज्रजंघ)	125
9.	पंचम पर्व – आदिनाथ का पूर्वभव (वज्रजंघ का गृहस्थ जीवन)	149
10.	षष्ठ पर्व – तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध	169
11.	सप्तम पर्व – आदिनाथ का जन्म	189
12.	अष्टम पर्व – आदिनाथ का केवलज्ञान	213
13.	नवम पर्व – चक्रवर्ती भरत	231
14.	दशम पर्व – भरत व बाहुबली का वैराग्य	253
15.	श्लोकानुक्रमणिका	280

समर्पित

परम पूज्य समत्व के
उद्गायक,
मुनिकुंजर, समाधि सम्राट्,
श्रमणसंघाचार्य
श्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर) की महान्
पट्टपरम्परा के
वर्तमान अनुशासक
परम पूज्य आध्यात्मिकसन्त,
तपस्वी सम्राट, मानवता के समाधार,
युगशिक्षक, गुणरत्नभूषण,
भारत गौरव,
श्रमणसंघसारथी,
आचार्य श्री सन्मतिसागर जी
महाराज के
करकमलों में .....

विस्तृत अनुक्रमणिका

पहला पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	मंगलाचरण	१	६९
२	प्रतिज्ञा	२	६९
३	काल का स्वरूप	३-४	६९
४	व्यवहार काल व उसके भेद	५-८	७०
५	पहले काल का वर्णन	९-१७	७०-७२
६	दूसरे काल का वर्णन	१८-२२	७२
७	तीसरे काल का वर्णन	२३-२६	७३
८	कुलकरों का वर्णन	२७-८७	७३-८३
९	पीठिका का समापन	८८	८४
१०	महाबलपर्याय	८९-९५	८४-८५
११	महाबल को राज्यप्राप्ति	९६-१००	८५-८६

दूसरा पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	महाबल का जन्मोत्सव	१-२	८९
२	मन्त्री का उपदेश व चार कथायें	३-६१	८९-९९
३	मन्त्री द्वारा मेरु पर युगल मुनियों की वन्दना व वार्त्तालाप	६२-८८	९९-१०४
४	महाबल द्वारा संन्यासग्रहण	८९-९२	१०४-१०५
	महाबल का स्वर्गगमन	९३-९६	१०४
६	देव का सुखोपभोग	९७-१००	१०६

तीसरा पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	देव की आयु का क्षय व स्वर्गच्युति	१-१२	१०९-१११
२	वज्रजंघ का जन्म व यौवनावस्था	१३-१७	१११-११२
३	स्वयम्प्रभा की स्वर्गसे च्युति	१८-२१	११२
४	श्रीमती का जन्म व यौवनावस्था	२२-२४	११२-११३
५	श्रीमती को पूर्वभवस्मरण-मूर्च्छा	२५-३६	११३-११५
६	वज्रदन्त को चक्ररत्न की प्राप्ति	३७-४३	११५-११६
७	श्रीमती के द्वारा वृत्तान्तकथन	४४-७४	११६-१२२
८	पण्डिता के द्वारा आश्वासन	७५-७८	१२२
९	वज्रदन्त का दिग्विजय व नगरप्रवेश	७९-८०	१२३

चौथा पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	वज्रदन्त चक्रवर्ती के पूर्वभव	१-८७	१२७-१४१
२	श्रीमती को इष्टप्राप्ति की सूचना	८६-१०९	१४१-१४७
३	वज्रबाहु की आगवानी	११०	१४७
४	पारस्परिक वार्त्ता एवं निवेदन	१११-११७	१४७-१४६
७	वज्रजंघ-श्रीमती विवाह	११६-१२०	१४६-१४७

पाँचवाँ पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	वज्रजंघ का प्रस्थान	१-७	१५१-१५२
२	वज्रजंघ को राज्यप्राप्ति	६-१३	१५२-१५३
३	चक्रवर्ती की दीक्षा	१४-२२	१५३-१५४
४	वज्रदन्त का बहन के पास गमन	२३-१००	१५४-१६८

छठा पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	वज्रजंघ-श्रीमती की मृत्यु	१-४	१७१
२	उत्तरकुरु में जन्म	७-११	१७२-१७३
३	मुनिदर्शन एवं उपदेशप्राप्ति	१२-३२	१७३-१७६
४	नकुलादि सभी का स्वर्गगमन	३३-४२	१७६-१७८
७	देव के द्वारा केवली का उपदेशश्रवण	४३-५५	१७८-१८०
६	सुविधि का जन्म व विवाह	५६-५८	१८०-१८१
७	नकुलादि के जीवों का जन्म	५९-६७	१८१-१८२
८	सुविधि आदि का स्वर्गगमन	६६-७४	१८२-१८३
९	वज्रनाभि चक्रवर्ती का भव	७५-९२	१८४-१८६
१०	वज्रनाभि को अहमिन्द्रपद की प्राप्ति	९३-१००	१८७-१८८

सातवाँ पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	नगरी की रचना व रत्नवर्षा	१-८	१९१-१९२
२	मरुदेवी के सोलह स्वप्न	९-१४	१९२-१९३
३	भगवान का गर्भकल्याणक	१५-१९	१९३-१९४
४	भगवान का जन्मकल्याणक	२०-५०	१९४-१९९
५	विवाह और सन्तानप्राप्ति	५१-६४	१९९-२०२
६	पुत्र-पुत्रियों की शिक्षा	६५-६७	२०२
७	षट्कर्म की शिक्षा व राज्यव्यवस्था	६८-७८	२०२-२०४
८	भगवान का वैराग्य, दीक्षा-तप	७९-१००	२०४-२०८
९	मिथ्यामतों का प्रवर्त्तन	१०१-१०५	२०८-२०९
१०	नमि-विनमि की भक्ति व उसका फल	१०६-१२०	२०९-२१२

आठवाँ पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	दानतीर्थ की उत्पत्ति	१-३०	२१५-२२०
२	भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति	३१-४५	२२०-२२२
३	भरत के समक्ष तीन कार्य	४६	२२३
४	भरत के द्वारा जिनेन्द्रपूजा	४७-५०	२२३
५	भगवान का शिष्यपरिवार	५१-५६	२२४
६	चक्रवर्ती की दिग्विजय-यात्रा	५७-८०	२२५-२२९

नौवाँ पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	चक्रवर्ती का दिग्विजय	१-५५	२३३-२४२
२	चक्रवर्ती का मानभंग	५६-५८	२४२-२४३
३	पुनः दिग्विजय के लिये गमन	५९-६९	२४३-२४५
४	चक्रवर्ती के द्वारा जिनपूजन	७०-७३	२४५-२४६
५	चक्र का रुकना व भाइयों की दीक्षा	७४-८४	२४६-२४७
६	बाहुबली की युद्ध के लिये तैयारी	८५-१००	२४७-२५१

दसवाँ पर्व

क्र.सं.	विषय	श्लोकांक	पृष्ठांक
१	भाइयों का युद्ध व बाहुबली की दीक्षा	१-२०	२५५-२५८
२	ब्राह्मणवर्ण की स्थापना	२१-३७	२५७-२६०
३	भरत के सोलहस्वप्न और उनका फल	३८-५०	२६०-२६६
४	जयकुमार की दीक्षा	५१-५२	२६६
५	भगवान का निर्वाण, भरत का शोक	५३-९२	२६६-२७०
६	भरत की दीक्षा व मोक्ष	९३-९९	२७०-२७३
७	अन्त्यमंगल	१००	२७३

प्रकाशकीय पूर्वपीठिका

"साहसे श्रीः वसति" चरम शरीरी भगवान बाहुबली के साहसपूर्ण कृत्य जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध व बाहुयुद्ध, के द्वारा विजयश्री का वरण किया गया, लेकिन हे भरत ! तुम इस राजलक्ष्मी को अनश्वर मानते हो, प्रेयसी के समान तुम्हारे द्वारा यह आदृत है, इस श्री को अपने द्वारा भोग्य मानते हो किन्तु यह श्री ऐसी नहीं है। यह श्री आपको ही प्राप्त हो। यह कह कर भगवान वैराग्य का वरण करते हैं। यह घटना प्रासंगिकता को प्रकट करती है, क्योंकि भौतिक चकाचौंध के इस युग में केवल अर्थोपार्जन को ही लक्ष्य मान कर चलने वाली विचारधारा के अन्तर्गत जीवन कलिका को प्रस्फुटित एवं सुरभित करने वाला साहित्य आनन्दरस के स्रोत को प्रवाहमान करता है, जिससे जीवन में शान्ति का साम्राज्य घनीभूत हो जाता है और दुःख का विखण्डन। निराशा के क्षणों में वह मन में उत्साह का संचार करता है, गतिहीन जीवन को गतिशीलता प्रदान करता है तथा कल्पनाओं को जन्म देता है।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त समृद्ध एवं गतिशील है। प्राचीन काल से ही साहित्य सृजन यहाँ के प्रबुद्ध जनों का पुण्य कृत्य रहा है। यह इस देश का सौभाग्य रहा है कि समय के झंझावात के प्रहार से बाधित होते हुए भी अधिकांश साहित्य संरक्षित हैं, उसी परम्परा में श्रीपुराण है। यह कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि साहित्य संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए प्रत्येक वर्ग तथा जाति ने अपने–अपने ढंग से योगदान दिया, परन्तु जैन समाज ने पाण्डुलिपियों के संरक्षण में जो योगदान दिया, वह अद्वितीय है। जैनियों ने धर्म से इतर साहित्य को भी रचा, मुद्रण के अभाव में महत्त्वपूर्ण साहित्य की प्रतिलिपियाँ करवाईं । जैन मन्दिर अथवा स्थानक आदि साहित्य सृजन के स्थल हुआ करते थे। यदि हम केवल राजस्थान के प्राचीन ग्रन्थ भण्डारों पर ही दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार सहित अन्य ग्रन्थ भण्डारों में अत्यन्त दुर्लभ एवं प्राचीन पाण्डुलिपियाँ हैं। इनमें से कुछ ताड़पत्रों पर हैं। इसी श्रृंखला में ज्ञानपिपासा के लिए सतत प्रयत्नशील मनीषी मुनियों ने ज्ञानकोष को समृद्धिशाली बनाया है, जिससे इस सुप्त एवं स्वप्नदृष्टा समाज में वैचारिक क्रान्ति का जन्म हुआ। इन्हीं मनीषियों के माध्यम से जैन समाज में ज्ञान को समृद्ध करने की परम्परा गतिमान हुई है।

विद्या एवं साहित्य के महत्त्व को उजागर करते हुए संस्कृत साहित्य में कहा भी गया है–

रूपयौवनसम्पन्नाः, विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीनाः न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

अर्थात् रूप–यौवन, सम्पन्न, उच्चकुल में उत्पन्न हुआ भी विद्याहीन पुरुष गन्धरहित पलाश के पुष्प के समान शोभा नहीं देते हैं।

हा हा पुत्रक ! नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्कें गौरिव सीदसि।।

अर्थात्, हे पुत्र! तुमने इन विगत रात्रियों में अध्ययन नहीं किया। तुम विद्वानों के बीच, पंक में फँसे बैल के समान दुःखी होते हो।

इसी श्रृंखला में ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित रखने एवं साहित्य की महक को वायुमण्डल में फैलाने की दृष्टि से सन् 1944 में रामपुरा, कोटा में अकलंक शिक्षण संस्थान ने अकलंक विद्यालय का बीजारोपण किया। शिक्षा के उत्थान के साथ जैन समाज में प्रचलित धार्मिक तथा नैतिक भावनाओं का जागरण इस शिक्षण संस्थान का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आज यही संस्था विशाल वटवृक्ष के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित हो रही है।

सम्प्रति, अकलंक विद्यालय एसोसिएस्न् अपनी सेवाओं के विस्तार

के लिए कटिबद्ध है। वह अपने दायित्वों को भलीभाँति रेखांकित करने की प्रयास कर रहा है। इस दृष्टि से उसने वर्ष 2008 में शोध संस्थान का गठन किया । यह ज्ञातव्य है कि हाडौती सहित सम्पूर्ण राजस्थान के जैन मंदिरों, उपासरों आदि में जैन तथा जैनेतर साहित्य वृहत् पैमाने पर विद्यमान है। अधिकांश साहित्य हस्तलिखित है और जैन साधु–साध्वियों, विद्वानों एवं साहित्यकारों द्वारा रचित हैं। इस साहित्य के संरक्षण, संपादन, प्रकाशन की महती आवश्यकता है। अतएव अकलंक शोध संस्थान ने अपनी क्षमता एवं सामर्थ्यानुसार कतिपय ग्रंथों के प्रकाशन का दायित्व लिया। इस साहित्यिक निधि के वैज्ञानिक ढंग से रख रखाव में भी यह शोध संस्थान अपनी सेवाओं का शीघ्र विस्तार करने की अभिलाषा रखता है।

आज कम्प्यूटर का युग है, इस दृष्टि से लेपटॉप आदि के माध्यम से पाण्डुलिपियों को सुव्यवस्थित एवं संरक्षित करने में प्रयासरत 108 श्री सुविधिसागर जी महाराज ने श्रीपुराणम् का सटीक अनुवाद कर जन–जन को बोधगम्य कराने का सार्थक प्रयत्न किया है। आचार्य जिनसेन कृत यह पुराण प्रासंगिक है जैसे, दशम पर्व में भरत–बाहुबली के प्रसंग में अनेक स्वप्नों में से एक स्वप्न सूखे पत्तों को बकरे खा रहे है, जिसका फलादेश है–आगामी काल में मनुष्य सदाचार को छोड़कर दुराचारी हो जायेंगे। तत्कालीन समाज में प्रचलित सूक्तियाँ आज के उद्वेलित मानव मन को शान्त करती हुई अन्धकार में पथभ्रष्ट व्यक्तियों के पथ को आलोकित करने के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रही है।

महाराज जी के द्वारा विद्वत्तापूर्ण टीका का मनन डॉ. हुकम चन्द जैन (विभागाध्यक्ष इतिहास, राज. महा., कोटा), डॉ. बजरंग लाल (पूर्व प्राचार्य, वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा) द्वारा किया गया। टीका पूर्ण रूप से दोष रहित है तथा जन साधारण के मानस पटल को नैतिक दृष्टि से समुन्नत एवं संस्कारित करने की क्षमता से परिपूर्ण है। श्रीपुराण में वर्णित सूक्तियाँ प्रेरणास्पद होने के साथ–साथ जीवन की यथार्थता एवं आदर्श का बोध कराने में सक्षम है। जैसे धर्मो हि शरणं परम्, (निश्चित रूप से धर्म ही सर्वोत्कृष्ट शरण है.) तपो हि फलतीप्सितम् (तप इच्छित फल को देने वाला है.) स्त्रीणां विपत्प्रतिकारे स्त्रियेवावलम्बनम् (स्त्रियों की विपत्तियों को दूर करने में स्त्रियाँ ही एकमात्र सहारा है.)

भगवान् बाहुबली का मन्तव्य है कि हमारे पिता ने जो पृथ्वी हमें प्रदान की है, वह भरत के लिए भाई की पत्नी के समान है। यह उक्ति वाल्मीकि रामायण के सुग्रीव व बाली के प्रसंग की ओर भी संकेत करती है, क्योंकि बाली ने सुग्रीव की पत्नी तारा को अपने अन्तःपुर का अंग बना लिया था। भरत उसी की तरह पृथ्वी को प्राप्त करना चाहते हैं, तो क्या यह कृत्य लज्जाजनक नहीं है ? तीन प्रकार के युद्ध में विजयी बाहुबली श्री का भरत के लिए परित्याग कर देते हैं। यह प्रसंग सांसारिकता का मोहत्याग कर जनसाधारण को वैराग्य की ओर प्रवृत्त करने में सहायक है, क्योंकि विजयश्री का वरण करके भी भगवान बाहुबली वैराग्य के मार्ग का वरण करते है। इसी प्रसंग से ही श्रीपुराण का समापन है।

शोध संस्थान ने आचार्य श्री 108 श्री सुविधिसागर जी महाराज द्वारा लिखित हिन्दी टीका सहित श्रीपुराण का सम्पादन व प्रकाशन किया हैं। यह ग्रन्थ स्वाध्याय के लिए समर्पित सुधीजनों के लिए मोक्षमार्ग को प्रशस्त करेगा, जैनागम–प्रतिपादित सिद्धान्तों से परिचित करायेगा, हमारा यह विश्वास है।

इस अवसर पर हम आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज एवं संघ के अभूतपूर्व सहयोग, मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं आशीर्वाद के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

राजेन्द्र कुमार
अध्यक्ष

अविनाश जैन
मंत्री

सम्पादकीय

परम पूज्य जिनवाणी, कण्ठाभरण, आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज को आरा नगरी में वर्षा योग के मध्य जैन सिद्धान्त भवन के विशाल ग्रन्थ भण्डार में श्रीपुराण ग्रन्थ की प्राप्ति हुई। ग्रन्थ की लम्बाई चौदह इंच व चौडाई आठ इंच हैं जिसमें ग्यारह इंच की लम्बाई व साढ़े पाँच इंच की चौडाई में लेखनकार्य है। पाण्डुलिपि में 75 पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में लगभग 13 पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में 35 अक्षर हैं। इसी को आधार, बना कर आचार्यश्री ने दोष रहित अनुवाद किया है।

इसमें दशपर्व हैं (कुल श्लोक संख्या एक हजार हैं।) प्रत्येक पर्व की अन्तिम पुष्पिका में "इति श्री पुराण समाम्नायें" लिखा होने से ग्रन्थ का नाम श्रीपुराण ही है। श्रीपुराण में 14 कुलकर हैं। भोगभूमिज जीवों को जीवन जीने की पद्धति बताने वाले महापुरुषों को मनु कहते हैं । कुलों को धारण करने वाले होने से उन्हें कुलकर कहा गया है। श्रीपुराण में आदिनाथ के दशभवों का वर्णन है। भरत के सोलह स्वप्न प्रासंगिक हैं । जैसे सूखा हुआ वृक्ष इंगित करता है, स्त्री और पुरूष चरित्र से च्युत होंगे। श्रीपुराण की सूक्तियाँ हृदयावर्जक हैं, जो जीवन को यथार्थता से परिचित कर आदर्श की ओर उन्मुख करती हैं। जैसे, "तपो ही फलतीप्सितम्" अर्थात् तप अभीष्ट फल देता है। श्रीपुराण में व्रतों की विधि वर्णित है। जैसे जिनगुण सम्पतिव्रत, श्रुतज्ञानव्रत, सर्वतोभद्रव्रत, सिंहनिष्क्रीडितव्रत, मुक्तावली आदि आठ व्रतों का विवेचन किया है। आचार्य जिनसेन महाश्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् जिनशासन की धुरी को धारण करने वाले प्रतिभा सम्पन्न आचार्यों में अग्रगण्य आचार्य हैं । मान्यखेट नगरी जो राष्ट्रकूट वंशीय राजा अमोधवर्ष की राजधानी थी, वहीं पर आपका जन्म शक संवत् 675 में हुआ। आपके गुरुवर पंचस्तूपाम्नायी आचार्य वीरसेन थें । इस दृष्टि से ग्रन्थ का समय सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध है। आचार्य जिनसेन रचित पार्श्वाभ्युदय भक्ति और साधना के रहस्य तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करता है। आदि पुराण पुराण होने के साथ–साथ धर्मकथा, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र व इतिहास का परिचायक है। जयधवला टीका प्रश्नोत्तरशैली का सुन्दर निदर्शन है।

श्रीपुराण में सबसे ऊपर ग्रन्थ का मूलभाग, मध्य में हिन्दी अनुवाद व अधोभाग में पर्वांक व श्लोकांक उद्घृत है। प्रत्येक पर्व के अन्त में आचार्य सुविधिसागर जी के द्वारा लिखित टिप्पणियॉ मरुप्रदेश में उपलब्ध जल की कणिका की भाँति मन को प्रफुल्लित करती है, जैसे–"अहिंसा जीवन का सरस संगीत है, अहिंसा की भूमि पर ही धर्म का महल खड़ा होता है।" ग्रन्थ में अनुष्टुप् छन्द है, लेकिन मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ितम् का प्रयोग प्रथम पर्व से नवम पर्व के अन्त में हुआ हैं एवं दशम पर्व के अन्त में वसन्ततिलका, भुजंङ्गप्रयात, पृथ्वी छन्द का प्रयोग हैं । श्लोकानुक्रमणिका अकारादि क्रम से पर्व व श्लोक संख्या के साथ उद्धृत की गई हैं।

संस्था का यह प्रथम पुष्प सुधी जनों को श्रवण,मनन,स्वाध्याय एवं प्रवचन हेतु अर्पित करते हुये हमें अपार हर्ष हैं। इस अवसर पर अध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार एवं मंत्री श्री अविनाश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनका हमें पग–पग पर अमूल्य मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला ।

ग्रन्थ के प्रकाशन में यदि किसी प्रकार की अशुद्धियाँ रह गई हो तो हम क्षमाप्रार्थी हैं एवं हमें त्रुटियाँ से अवगत कर अनुगृहीत करें, आपकी समालोचना सादर आमन्त्रित है।

"धर्मो हि भारणं परम्"
"धर्म ही उत्कृश्ट भारण है।"

सम्पादक मण्डल

डॉ. बजरंग लाल
डॉ. हुकमचन्द जैन
डॉ. संस्कृति जैन

श्री अकलंक शोध संस्थान

कार्यकारिणी सदस्य

1. हरिकुमार औदिच्य	**संरक्षक**
2. राजेन्द्र कुमार	**अध्यक्ष**
3. डॉ. हुकम चन्द जैन	**उपाध्यक्ष**
4. अविनाश कुमार जैन	**मंत्री**
5. महावीर प्रसाद जैन	**कोशाध्यक्ष**
6. मनोज सोगानी	**संयुक्त सचिव**
7. पीयूष जैन	**सदस्य**
8. डॉ. बजरंग लाल	**सदस्य**
9. डॉ. एल.के. दाधीच	**सदस्य**
10.शरद जैन	**सदस्य**
11.सुधीन्द्र श्रृंगी	**सदस्य**

आचार्य श्री जिनसेन

आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज का व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व

महाश्रमण भगवान महावीर के उपरान्त जिनशासन की धुरा को सम्हालने और सहेजने वाली आचार्य-परम्परा में अनेक प्रतिभाशाली आचार्य हुए। उनमें से एक नाम है आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज। संस्कृत भाषा में लिखी हुई अमरकृतियों के कारण आपका नाम युगों-युगों तक प्रतिष्ठा के धवल शिखर पर स्थापित रहेगा।

स्वामी श्री जिनसेन जी महाराज का जीवन-परिचय इतिहास के अदृ पृष्ठों में विलीन हो चुका है। हाँ, कुछ विद्धानों की मान्यता है कि आपने जन्म लेकर मान्यखेट नगरी को गौरवान्वित किया था। मान्यखेट नगर राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्ष की राजधानी थी। उसी नगरी में आपके जीवन का बहुभाग व्यतीत हुआ। विद्धानों के अभिमतानुसार आपका जन्म किसी राजकुल में अथवा किसी जैन ब्राह्मण कुल (उपाध्याय) में हुआ था।

शकसंवत् ६७५ में आपका जन्म हुआ। आपकी आयु लगभग ९० वर्ष की थी। आपके गुरुदेव का नाम पंचस्तूपाम्नायी, कविचक्रवर्ती, आचार्य श्री वीरसेन जी महाराज था।

आचार्यश्री द्धारा निम्नलिखित ग्रन्थों की रचनायें की गयी -

१. पार्श्वाभ्युदय - यह एक दूतकाव्य है। कविकुलतिलक कालिदास विरचित **मेघदूतम्** नामक काव्य में जितने श्लोक हैं, उनके सभी चरणों को इस काव्य के किसी श्लोक में एक और किसी में दो चरण के रूप में ग्रहण कर आचार्य महोदय ने अपनी चमत्कारिणी काव्यप्रतिभा के द्धारा इस काव्य-ग्रन्थ का सृजन किया है।

मेघदूत और **पार्श्वाभ्युदय** इन दोनों काव्यग्रन्थों के विषय का परिशीलन किया जाये तो दोनों में अवनी-अम्बरवत् अन्तर है। जहाँ **पार्श्वाभ्युदय** भक्ति और साधना के रहस्य तक पहुँचाने के मार्ग को प्रशस्त करता है वहीं **मेघदूतम्** वियोग और श्रृंगाररस का अभिव्यंजक है। इसप्रकार विरोधयुक्त वर्णन से परिपूर्ण **मेघदूतम्** के चरणों को लेकर

काव्य का निर्माण करना और उसमें किसीप्रकार की क्लिष्टता अथवा नीरसता को प्रवेश नहीं करने देना यही अद्भुत कौशल्य इस ग्रन्थ में देखने मिलता है।

इस ग्रन्थ के प्रसिद्ध टीकाकार योगिराज श्री पण्डिताचार्य ने लिखा है-

श्री पार्श्वात्साधुतः साधुः, कमठात्खलतः खलः।
पार्श्वाभ्युदयतः काव्यं, न च क्वचिदपीष्यते।।

अर्थात् :- श्री पार्श्वनाथ से बढ़ कर कोई साधु, कमठ से बढ़ कर कोई दु और पार्श्वाभ्युदय से बढ़ कर कोई काव्य दिखलाई नहीं देता।

२. आदिपुराण - ग्रन्थकार इस ग्रन्थ के बयालीस पर्व पूर्ण कर तियालीसवें पर्व के तीन श्लोक लिख पाये। यह केवल पुराण ही नहीं, अपितु महाकाव्य भी है। यह संस्कृतसाहित्य की अनुपम रचना है। यह पुराण भी है, धर्मकथा भी है, राजनीतिशास्त्र भी है, आचारशास्त्र भी है और इतिहासग्रन्थ भी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ, प्रथम चक्रवर्ती भरत और प्रथम कामदेव बाहुबली का सजीव जीवन-चित्रण हुआ है।

इस ग्रन्थ की रचना कवि परमेश्वर के द्वारा कही हुई गद्यकथा के आधार से हुई है। इस ग्रन्थ में लगभग दस हजार श्लोक हैं।

एक विद्वान ने लिखा है-

जिन्हें भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास जानना हो और सत्कवितारूपी वाग्देवी का वात्सल्य-भाजन बनना हो, जिन्हें उत्प्रेक्षा-उपमा-रूपकादि अलंकारों की निराली छटा देखनी हो, जिन्हें व्याकरण की महत्वपूर्ण पदप्रयुक्ति के दर्शन करना हो और जिन्हें जैनसिद्धान्त तथा जैनधर्म की विजय-वैजयन्ती फहराना हो तो उन्हें आचार्य महोदय के महापुराण का एकबार नहीं, अनेक बार अध्ययन करना चाहिये।

३. जयधवला टीका - कषायप्राभृत के पहले स्कन्ध की चारों विभक्तियों पर जयधवला नामक बीस हजार श्लोकप्रमाण टीका लिख कर आचार्य श्री वीरसेन जी महाराज स्वर्ग सिधार गये। गुरु का अवशि कार्य पूर्ण करने की जिम्मेदारी आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज पर आन पड़ी। उन्होंने उसे पूर्ण कर एक अनोखा इतिहास रचा। अवशि भाग पर जिनसेन जी महाराज ने चालीस हजार श्लोकप्रमाण टीका लिखी। इस टीका की

विशेषता यह है कि टीकाकार ने अपने गुरु की शैली का अनुकरण कर इसका निर्माण किया है। टीका में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषा का प्रयोग भी हुआ है। प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग भी बहुतायत रूप से

४. वर्द्धमानपुराण - यह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। इसका वर्णन आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज (द्वितीय) ने इसप्रकार किया है-

वर्द्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः।
प्रस्फुरन्ति गिरीशानाः स्फुटस्फटिकभित्तिषु।।

(हरिवंशपुराण - १/)

अर्थात् :- वर्द्धमानपुराणरूपी उदित होते हुए सूर्य की उक्तिरूपी किरणें विद्वत्पुरुषों के अन्तःकरणरूपी स्फटिकभूमि में प्रकाशमान हो रही हैं।

आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज (द्वितीय) के शब्दों पर ध्यान दें तो एक बात अवश्य स्पष्ट होती है कि यह ग्रन्थ विद्वानों के द्वारा स्पृहणीय ग्रन्थ था।

प्रास्ताविक

आजकल कुछ विद्धान ऐसा कहते हैं - प्रथमानुयोग अप्रामाणिक है। इस वाक्य को सुन कर मेरा मन दुःख से आपूरित हो जाता है। क्या उन विद्धानों का मत समीचीन है ? कहीं उनका यह मत जिनवाणी का अवर्णवाद तो नहीं ? इस विषय पर विचार-विमर्श आवश्यक है। प्रथमानुयोग अप्रामाणिक नहीं, अपितु परम प्रामाणिक है - इस बात को सिद्ध करने के लिये मेरे द्धारा यह छोटा-सा प्रयत्न किया जा रहा है।

इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि ग्रन्थ लिखने की परम्परा का प्रारम्भ किसप्रकार हुआ ?

जब कभी सूर्य अस्त होने के कारण रात्रि का सघन अन्धकार गहराने लगता है तब विवेकी जीव लट्टू लगा कर उसे चीरने का प्रयत्न करता है। किसी कारण से उसकी अनुपलब्धि होने पर बैटरी का उपयोग प्रारम्भ किया जाता है। यदि बैटरी भी न चल पायी तो अन्धेरे में रहने की अपेक्षा एक छोटा-सा दीपक तो जला ही लिया जाता है।

भरतक्षेत्र के भक्तों ने भी यही कार्य किया। जब अन्तिम सर्वज्ञ जम्बूस्वामी -रूपी सूर्य का भी निर्वाण हो गया तो उन्होंने श्रुतकेवलिरूपी लट्टुओं का सहयोग लेकर मोक्षपथ को आलोकित रहने दिया। जब श्रुतकेवलियों का स्वर्गगमन हुआ तो अंग-अंगांशधारी आचार्यों की वाणीरूपी बैटरी से आलोक प्राप्त किया।

किन्तु, जब वह आलोक भी अस्तंगत हो गया तब जिनवाणीरूपी दीपक की शरण लेकर अज्ञानरूपी अन्धकार से युद्ध करना प्रारम्भ किया। आज जिनवाणी का समीचीन आलोक ही मनुष्य के जीवन को आलोकित कर रहा है।

जिसप्रकार धागे से रहित सुई के खो जाने की सम्भावना रहती है, उसीप्रकार जिनवचनों से रहित साधक के भटक जाने की सम्भावना रहती है। जिसप्रकार माँ की उंगली को पकड़ कर चलने वाले बालक

को चलना भी आ जाता है और गिरना भी नहीं पड़ता, उसीप्रकार जिनवाणी के सहयोग से आचरण को बनाने वाले साधक को मोक्षमार्ग में गमन करना भी आता है और उसे कुगति के गर्त्त में गिरने का भय भी नहीं रहता। जिसप्रकार माँ की शरण में रहने वाले बालक की समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं, उसीप्रकार जिनवाणी माँ की शरण में रहने वाले साधक की समस्त मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। माँ जीवन के कुछ मर्म बताती है और जिनवाणी माँ समस्त तत्त्वों के मर्म बताती है। माँ की शरण एक भव को और जिनवाणी की शरण भव-भव को सुखी बनाती है।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होना साहजिक है कि सर्वज्ञ भगवान ने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। केवली भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए उसके सैंकड़ों वर्षों बाद ग्रन्थरचना प्रारम्भ हुई। जिन्होंने ग्रन्थों की रचना का कार्य सम्पन्न किया, वे केवली नहीं थे। सर्वज्ञता के अभाव में उनकी वाणी प्रामाणिक कैसे हो सकती है ? छद्मस्थ आचार्यों की वाणी को जिनवाणी कहना कहाँ तक उचित है ?

इसका उत्तर देते हुए पण्डितप्रवर श्री टोडरमल जी लिखते हैं -

अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै है, ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञान के धारक हैं। बहुरि ते तिन मूल ग्रन्थनिकी परम्परा करि ग्रन्थ बनावै है। बहुरि जिन पदनिका आपको ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाहीं अर जिन पदनिका ज्ञान होइ तिनको सम्यग्ज्ञान प्रमाणतैं ठीक करी गूंथे हैं।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक = अध्याय - १)

आचार्य श्री वीरसेन जी महाराज इस विषय का बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण करते हैं। यथा-

अप्रमाणमिदानीन्तन आगमः, आरातीयपुरुषव्याख्यातार्थत्वादिति चेन्न, एदं- युगीनज्ञानविज्ञानसम्पन्नतया प्राप्तप्रामाण्यैराचार्यैर्व्याख्यातार्थत्वात्।

कथं छद्मस्थानां सत्यवादित्वमिति चेन्न, यथाश्रुतव्याख्यातृणां तदविरोधात्।

(धवला = १/१९८)

शंका – आधुनिक आगम अप्रमाण है, क्योंकि अर्वाचीन पुरुषों ने इसके अर्थ का व्याख्यान किया है ?

समाधान – यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान से सहित होने के कारण प्रमाणता को प्राप्त इस युग के आचार्यों के द्वारा इसके अर्थ का व्याख्यान किया गया है, इसलिये आधुनिक आगम भी प्रमाण है।

शंका – छद्मस्थों के सत्यवादीपना कैसे माना जा सकता है ?

समाधान – नहीं, क्योंकि श्रुत के अनुसार व्याख्यान करने वाले आचार्यों के प्रमाणता मानने में कोई विरोध नहीं है।

इसे यूँ समझ सकते हैं – गंगा का पानी किसी बोतल में भर देने के बाद भी उसे गंगाजल ही कहा जाता है, बोतल का जल नहीं। बोतल में भरने से वह जल अपवित्र नहीं होता। उसीप्रकार सर्वज्ञ की वाणीरूपी गंगाजल को शास्त्ररूपी बोतल में भरने पर भी वह सर्वज्ञवाणी ही रहती है। अतः उसकी प्रामाणिकता भी ध्रुव है।

इससे सिद्ध होता है कि भले ही ग्रन्थों की रचना सर्वज्ञप्रभु ने नहीं की हो अथवा उनके आज्ञानुवर्ती गणधर परमेष्ठियों ने नहीं की हो, किन्तु उनके उपासक, वीतरागी साधक महामुनियों ने उनकी वाणी का संकलन किया है। लेखनी आचार्यों की थी, किन्तु वर्ण्यविषय सर्वज्ञ की वाणी से निःसृत था। अतः ग्रन्थ जिनवाणी ही कहलाये।

जैन इतिहासकार ज्ञानपरम्परा को इसप्रकार अंकित करते हैं –

भगवान महावीर के निर्वाण के उपरान्त गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। उनका काल क्रम से बारह, बारह और अड़तीस वर्ष का है। इसप्रकार केवलियों का काल बासठ वर्षों का हुआ।

तदुपरान्त नन्दी, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु नामक पाँच श्रुतकेवली हुए। उनका क्रम से चौदह, सोलह, बाईस, उन्नीस और उनतीस वर्षों का काल था। इसप्रकार समस्त श्रुतकेवलियों का काल सौ वर्षों का है।

उसके बाद विशाखाचार्य **(दस वर्ष)**, प्रोष्ठिल **(उन्नीस वर्ष)**, क्षत्रिय

(सतरह वर्ष), जयसेन **(इक्कीस वर्ष)**, नागसेन **(अठारह वर्ष)**, सिद्धार्थ **(सतरह वर्ष)**, धृतिषेण **(अठारह वर्ष)**, विजय **(तेरह वर्ष)**, बुद्धिलिंग **(बीस वर्ष)**, देव **(चौदह वर्ष)** और धर्मसेन **(सोलह वर्ष)** दशपूर्व के धारक ग्यारह आचार्य हुए। समुदायरूप से इनका काल एक सौ तिरासी वर्षों का हुआ।

उनके बाद एक सौ तेईस वर्षों में ग्यारह अंग के धारक पाँच आचार्य हुए। यथा – नक्षत्र **(अठारह वर्ष)**, जयपाल **(बीस वर्ष)**, पाण्डव **(उनचालीस वर्ष)**, ध्रुवसेन **(चौदह वर्ष)** और कंस **(बत्तीस वर्ष)**।

उनके बाद सुभद्र **(छह वर्ष)**, यशोभद्र **(अठारह वर्ष)**, भद्रबाहु **(तेईस वर्ष)** और लोहाचार्य **(पचास वर्ष)** ये चार आचार्य दस, नौ और आठ अंग के धारक हुए। इसप्रकार समुदित रूप से सत्तानवें वर्ष का काल व्यतीत हुआ।

उनके उपरान्त एक सौ अठारह वर्षों में पाँच अंगांशधारी आचार्य हुए। उनका भिन्न-भिन्न काल निम्नप्रकार से है – अर्हद्बलि **(अट्ठाईस वर्ष)**, माघनन्दी **(इक्कीस वर्ष)**, धरसेन **(उन्नीस वर्ष)**, पुष्पदन्त **(तीस वर्ष)** और भूतबलि **(बीस वर्ष)**।

सभी का संकलन करने पर कुल छह सौ तिरासी वर्षों तक महाज्ञानियों की परम्परा चलती रही।

आचार्य श्री धरसेन जी महाराज, पुष्पदन्त जी महाराज व भूतबलि जी महाराज प्रभृति अनेक आचार्यों के अन्तःकरण में उपजी करुणा ने ग्रन्थों का प्रणयन किया।

समस्त ग्रन्थों को सुविधा के लिये आचार्यों ने चार विभागों में विभाजित किया – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इस विभाजन का कारण विषयों और शैली की भिन्नता है। सभी का प्रयोजन संसारी जीव को मोक्षमार्ग में स्थिर करना ही है।

जिसमें पुराण, अर्थाख्यान और चरित्र का वर्णन हो वह प्रथमानुयोग है। जिसमें लोकालोक का विभाग, चतुर्गति का वर्णन, गणित और भूगोल का वर्णन हो उसे करणानुयोग कहते हैं। जिसमें श्रावक और

मुनियों के योग्य चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि के उपायों को प्रकट किया गया है वह चरणानुयोग है तथा जिसमें छह द्रव्य, सात तत्त्व और नव पदार्थों का वर्णन पाया जाता है अथवा स्वसमय-परसमय का वर्णन पाया जाता है उसे द्रव्यानुयोग कहा जाता है।

इन चारों अनुयोगों का वर्ण्यविषय भले ही भिन्न हो, शैली में चाहे जितने अन्तर हो, किन्तु लक्ष्य है लौकिक एवं लोकोत्तर तत्त्वों का बोध कराना। इसीलिये चारों अनुयोग समान रूप से पूज्य हैं।

प्रथमानुयोग का विशेष लक्षण बताते हुए आचार्य श्री शुभचन्द्र जी महाराज ने लिखा है -

पढमं मिच्छादिट्ठिं अव्वदिगं आसिदूण पडिज्जं।
अणुयोगो अहियारो वुत्तो पढमाणुयोगो सो।।
(अंगपण्णत्ति = २/३५)

अर्थात् - मिथ्यादृष्टि, अव्रतिक और अव्युत्पन्न जीवों को प्रथम कहते हैं और उसके अधिकार को अनुयोग कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि जो अनुयोग मिथ्यादृष्टि, अव्रतिक और अव्युत्पन्न जीवों के लिये लिखा गया है उसे प्रथमानुयोग कहते हैं।

आचार्य श्री नेमिचन्द्र जी महाराज ने लिखा है -

प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगो-ऽधिकारः प्रथमानुयोगः।

(गोम्मटसार = ३६१-३६२)

अर्थात् - प्रथम शब्द का अर्थ मिथ्यादृष्टि, अव्रतिक अथवा अव्युत्पन्न शिष्य है। उसके लिये जो अनुयोग रचा गया है वह प्रथमानुयोग है।

द्वादशांग में प्रथमानुयोग

जिनवाणी समस्त पदार्थों के रहस्य को प्रकटाने वाली है। स्याद्वाद से संयुक्त होने के कारण वह सम्पूर्ण विरोधविनाशिनी है। आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासका-ध्ययनांग, अन्तःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग और दृष्टिवादांग ये जिनवाणी के बारह

अंग हैं।

इनका लक्षण निम्नप्रकार से है-

१. आचारांग = यह अंग दिगम्बर मुनियों की समस्त आचारपद्धति का वर्णन करता है।

२. सूत्रकृतांग = यह अंग स्वसमय और परसमय का निरूपक है। इसके अतिरिक्त इस अंग में ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्म की क्रियाओं की दिगन्तरशुद्धि, स्त्रीसम्बन्धी परिणाम, क्लीबता, अस्फुटत्व, काम का विलास, आस्फालनसुख और पुरुष की इच्छा करना आदि स्त्रीलक्षणों की प्ररूपणा की गयी है।

३. स्थानांग = यह अंग षट्द्रव्यों के एकोत्तर क्रम से स्थानों की प्ररूपणा करता है।

४. समवायांग = समानता के भाव को समवाय कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से समवाय के चार भेद हैं। उनका वर्णन इस अंग में किया गया है।

५. व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग = यह अंग जीवविषयक साठ हजार प्रश्नों के उत्तरों का प्ररूपक है। इसके अतिरिक्त इस अंग में छिन्नछेदों से ज्ञापनीय शुभ और अशुभ का विस्तार से वर्णन किया गया है।

६. ज्ञातृधर्मकथांग = यह अंग तीर्थंकरों की धर्मदेशना, अनेक प्रकार की कथा और उपकथाओं का प्ररूपण करता है।

७. उपासकाध्ययनांग = इस अंग के द्धारा व्रती और अव्रतियों के आचरणविधि को प्रदर्शित किया गया है। यह अंग विशुद्धरूप से श्रावकाचार का प्ररूपण करता है।

८. अन्तःकृद्दशांग = प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस-दस मुनिराज घोर उपसर्ग सहन कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यह अंग उनके चरित्र का व्याख्यान करता है।

९. अनुत्तरोपपादिकदशांग = प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस-दस मुनिराज घोर उपसर्ग सहन कर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तरों को प्राप्त करते हैं। यह अंग उनके चरित्र

का व्याख्यान करता है।

१०. प्रश्नव्याकरणांग = यह अंग आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदिनी कथाओं का प्ररूपक है। इसके अतिरिक्त इस अंग में त्रिकालविषयक धन-धान्य, लाभ-अलाभ, जीवन-मरण और जय-पराजय से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तरों के उपायों का संकलन किया हुआ है।

११. विपाकसूत्रांग = यह अंग पुण्य और पापरूप कर्मों के फल को प्रकट करने वाला है।

१२. दृष्टिवादांग = यह अंग तीन सौ तिरेसठ मिथ्यामतों का निराकरण करने वाला है। इसके अतिरिक्त इस अंग में अनेक प्रकार के प्रमेयों का वर्णन किया गया है।

बारहवें दृष्टिवाद नामक अंग के पाँच भेद हैं- परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

ग्यारह अंगों में से तीन अंग ज्ञातृधर्मकथांग, अन्तःकृद्दशांग और अनुत्तरोपपादिकदशांग इन तीनों में प्रथमानुयोग को विषय बनाया गया है। बारहवें अंग का प्रथमानुयोग नामक एक स्वतन्त्र भेद ही है।

ज्ञातृधर्म-कथांग, अन्तःकृद्दशांग और अनुत्तरोपपादिकदशांग इन तीनों में क्रम से पाँच लाख छप्पन हजार, तेईस लाख अट्ठाईस हजार और बानवें लाख चवालीस हजार पद हैं। प्रथमानुयोग में पाँच हजार पद हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि बारह अंगों में एक सौ इक्कीस लाख तैंतीस हजार पदों के माध्यम से प्रथमानुयोग का वर्णन हुआ है।

इसप्रकार विचार करने पर प्रथमानुयोग द्वादशांग का अभिन्न अंग है यह स्वयं सिद्ध हो जाता है।

यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि भले ही प्रथमानुयोग द्वादशांग का अभिन्न अंग हो परन्तु अंगशास्त्र तो लुप्त हो गये। अंगशास्त्र के साथ प्रथमानुयोग भी लुप्त हो गया। आज जो प्रथमानुयोग के ग्रन्थ प्राप्त हो रहे हैं, वे द्वादशांग के अंग नहीं हैं। फिर वे ग्रन्थ प्रामाणिक कैसे माने जा सकते हैं ?

यह सत्य है कि अंगशास्त्र लुप्त हो चुके हैं, किन्तु इस तर्क को आधार बना कर प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक माना जायेगा तो समस्त अनुयोगों की प्रामाणिकता भी इसी तर्क से बाधित हो जायेगी।

कालदोष के कारण अल्प आयु और बुद्धि वाले प्राणियों का उपकार करने के लिये जो ग्रन्थ रचे गये हैं उन्हें अंगबाह्य कहते हैं। अंगबाह्य की रचना अंगों के आधार से होती है। वर्तमान में प्रचलित ग्रन्थ अंगबाह्य में सम्मिलित होते हैं। कालिक और उत्कालिक के भेद से अंगबाह्य भी दो प्रकार का है। जिन ग्रन्थों का स्वाध्याय नियत काल में ही हो सकता है वे कालिक अंगबाह्य हैं और जिन्हें पढ़ने के लिये कालविषयक कोई मर्यादा नहीं है उन्हें उत्कालिक अंगबाह्य कहते हैं। अंगबाह्य आगम सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तरा-ध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषेधिका के भेद से चौदह प्रकीर्णकों में विभाजित है। स्तवन और पुण्डरीक नामक प्रकीर्णकों में प्रथमानुयोग का समावेश पाया जाता है।

प्रथमानुयोग में अन्य अनुयोग

प्रथमानुयोग में चारों ही अनुयोगों को गुम्फित करने की परम्परा है। जब भी कथाभाग को प्रारम्भ किया जाता है तो स्थान का नाम बताने के लिये पूरे भूगोल का वर्णन किया जाता है। भौगोलिक वर्णन और उसका परिमाण करणानुयोग का विषय है। किसी मुनिराज की चर्या का वर्णन करते समय सम्पूर्ण श्रमणाचाररूप चरणानुयोग का विवेचन संकलित कर लिया जाता है। जब कोई मुनिराज किसी श्रावक को उसके कर्त्तव्यों का उपदेश करते हैं, उससमय प्रथमानुयोग में श्रावकाचाररूप चरणानुयोग का संकलन हो जाता है। मुनिराज के उपदेश के काल में द्रव्य, गुण और पर्याय का वर्णन पाया जाता है। उपदेश में ही गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास आदि रूप आगम-द्रव्यानुयोग का तथा शुद्धात्मा का ज्ञापक अध्यात्म-द्रव्यानुयोग का

वर्णन पाया जाता है। इसप्रकार प्रथमानुयोग में चारों ही अनुयोगों का समावेश पाया जाता है।

प्रथमानुयोग की विशेषतायें

१. प्रथमानुयोग चारों ही अनुयोगों की शिक्षा देता है।
२. प्रथमानुयोग से नीति की शिक्षा प्राप्त होती है।
३. प्रथमानुयोग की शैली अन्य अनुयोगों की अपेक्षा सरल होती है।
४. प्रथमानुयोग इतिहास व पुराणों का समन्वायक है।
५. प्रथमानुयोग पुण्य, पाप और मोक्षफल को बताने वाला सरल साधन है।
६. प्रथमानुयोग अपने युग को प्रदर्शित करने वाला ज्ञानकोश होता है।

प्रथमानुयोग में विस्तारबहुलता

कुछ विद्धानों का ऐसा मानना है कि प्रथमानुयोगीय ग्रन्थों में विषयों का अनावश्यक विस्तार किया गया है। वह विस्तार उपादेय नहीं है। उसे पढ़ने से तत्त्वों का बोध नहीं होता, प्रत्युत समय व्यर्थ हो जाता है। **सार-सार को ले गहै, थोथा देय उड़ाय** की नीति को अपना कर इस अनुयोग के स्वाध्याय से दूर रहना चाहिये।

यह अतिशय हास्यास्पद तर्क है।

संसार में तीन तरह के शिष्य होते हैं। कुछ शिष्य अतिसंक्षेपरुचि वाले होते हैं। वे अल्प उपदेश को श्रवण कर वस्तुस्वरूप को समझ जाते हैं। कुछ शिष्य मध्यमरुचि वाले होते हैं। उन्हें संक्षेप-विस्तारपूर्वक समझाना पड़ता है, क्योंकि उनकी अत्यधिक विस्तार में रुचि नहीं होती और अतिसंक्षेप से भी उनका कल्याण नहीं होता। कुछ शिष्य विस्ताररुचि वाले होते हैं। उनके समक्ष विस्तारपूर्वक व्याख्यान करना पड़ता है। आचार्य परमेष्ठी समस्त जीवों का हित करने वाले होते हैं। वे कुछ शिष्यों के हित की अनदेखी कैसे कर सकते थे ?

यदि विस्तारबहुलता को निःसार माना जाये तो एक शुद्ध आत्मतत्त्व को समझाने के लिये दो या तीन गाथाओं का प्रयोग पर्याप्त था।

उसके लिये चार सौ पन्द्रह (आचार्य श्री अमृतचन्द्र जी महाराज के अनुसार) या चार सौ उनतालीस (आचार्य श्री जयसेन जी महाराज के अनुसार) गाथाओं से युक्त समयसार लिखने की क्या आवश्यकता थी ?

बन्ध सर्वथा हेय है इतना कहने मात्र से कार्य सम्पन्न हो सकता था। फिर उसके लिये विशालकाय महाबन्ध नामक ग्रन्थ के स्वाध्याय करने का क्या औचित्य है ?

कर्मसिद्धान्त और जैवविज्ञान को समझाने के लिये जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड जैसे ग्रन्थों का प्रणयन क्यों किया गया ?

समाधिमरण की विधि मात्र कुछ श्लोकों में प्रस्तुत की जा सकती है। उसके लिये दो हजार एक सौ चौंसठ गाथाओं से युक्त भगवती आराधना नामक ग्रन्थ लिखने वाले आचार्य श्री शिवकोटि जी महाराज का कार्य अनुमोदित किया जा सकता है कि नहीं ?

तीन लोक का वर्णन कुछ पंक्तियों में किया जा सकता है। उसके लिये तिलोयपण्णत्ति जैसे विशालतम ग्रन्थ की रचना करने वाले आचार्य श्री यतिवृषभ जी महाराज के अनुग्रही रहे कि नहीं ?

एक ही नहीं, चारों ही अनुयोगों में विस्तारबहुल शैली का प्रयोग पाया जाता है। अतः इस तर्क से प्रथमानुयोग की अप्रामाणिकता स्वीकारने पर सभी अनुयोगों की अप्रामाणिकता का प्रसंग आयेगा।

यदि प्रथमानुयोग को पढ़ने से तत्त्वज्ञान उपलब्ध नहीं होता - ऐसा माना जाये तो अनर्थ हो जायेगा, क्योंकि प्रथमानुयोग में चारों ही अनुयोगों का समावेश है इस बात को पूर्व में स्पष्ट किया गया है। तत्त्व की बात तो द्रव्यानुयोग में पायी जाती है, क्योंकि जिसमें तत्त्वों का वर्णन किया जाता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं (रत्नकरण्ड श्रावकाचार - ४६) ऐसा आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज का कथन है। इस लक्षण के अनुसार तो द्रव्यानुयोग के अतिरिक्त आगमों में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। उपर्युक्त हेतु से वे अनुयोग भी हेय मानने पड़ेंगे।

प्रथमानुयोग की प्रामाणिकता

जिनवाणी के अनुयोगों में प्रथमानुयोग को ग्रहण करना और उसके बाद भी उसको प्रमाण नहीं मानना, सर्वज्ञवाणी का अवर्णवाद है।

आचार्य श्री पूज्यपाद जी महाराज प्रार्थना करते हुए लिखते हैं- **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।** क्या अप्रामणिक अनुयोग को नमस्कार किया जा सकता है ? अप्रमाणिक अनुयोग को नमस्कार करने वाले आचार्य की प्रामाणिकता युक्तिपुरस्सर स्वीकार की जा सकती है ?

यदि प्रथमानुयोग अप्रामाणिक होता तो सल्लेखनाधारक साधक को प्रथमानुयोग का उपदेश क्यों दिया जाता ?

अब्भुज्जदंमि मरणे संथारत्थस्स चरमवेलाए।
तिविहं पि कहंति कहं तिदंडपरिमोडया तम्हा।।

(भगवती आराधना = ६५९)

अर्थात् - जब संस्तर पर स्थित क्षपक का अन्त काल निकट में होता है तब अशुभ मन, वचन और काया को निर्मूल करने वाली तीन प्रकार की कथाओं को (संवेजनी, निर्वेजनी और आक्षेपिणी) कहना चाहिये।

प्रथमानुयोग न हो तो धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रथमानुयोग आदि का वर्णन करना ही धर्मोपदेश है।

आचार्य श्री पूज्यपाद जी महाराज ने लिखा है-

धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः।

(सर्वार्थसिद्धि - ९/२५)

अर्थात् - धर्मकथा आदि का अनुष्ठान करने को धर्मोपदेश कहते हैं।

प्रथमानुयोग में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र इन तिरेसठ शलाकापुरुषों के जीवनचरित्र को गुम्फित किया गया है। इनके अतिरिक्त चौबीस तीर्थंकरों की माता, चौबीस तीर्थंकरों के पिता, चौबीस कामदेव, ग्यारह रुद्र, चौदह कुलकर और नौ नारद इन महापुरुषों के जीवनचरित्र को प्रकट किया गया है। यदि प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक माना जायेगा तो एक प्रश्न उपस्थित

होगा कि वे महापुरुष हुए अथवा नहीं ? यदि हुए हैं तो उनके जीवनचरित्र का चित्रण करने वाला प्रथमानुयोग अप्रमाणिक कैसे हो सकता है ? प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये यदि वे पुरुष नहीं हुए - ऐसा माना जाये तो तीर्थंकर नहीं हुए। जब तीर्थंकर नहीं हुए तो उनके द्धारा धर्मप्रवर्त्तन भी नहीं हुआ। यदि दिव्यध्वनि के द्धारा उपदेश नहीं दिया गया तब केवल प्रथमानुयोग ही क्यों, सारे ही अनुयोग काल्पनिक सिद्ध हुए। क्या प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक मानने वाला कोई स्वाध्यायप्रेमी सम्पूर्ण जिनागम को काल्पनिक मानने का दुस्साहस कर सकता है ?

प्रथमानुयोग को संक्षिप्त रूप से तिलोयपण्णत्ती के मध्यलोकाधिकार में भी लिखा गया है। यदि प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक माना जाय तो तिलोयपण्णत्ती को अप्रमाणिक मानना पड़ेगा। इससे करणानुयोग की अप्रमाणिकता का भी प्रसंग आयेगा।

पण्डितप्रवर श्री टोडरमल जी लिखते हैं -

बहुरि जैसे कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निन्दा जा विषै होय, ऐसी कोई पुराण पुरुषनिकी कथा सुनने करि सुभटपनाविषै अति-उत्साहवान हो है। तैसे धर्मात्मा हो है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निन्दा जा विषै होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुनने करि धर्मविषै अति-उत्साहवान हो है। ऐसे यहु प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।

(मोक्षमार्गप्रकाशक = अध्याय - ८)

प्रथमानुयोग और सर्वज्ञवाणी

कुछ विद्धान ऐसा कहते हैं कि द्रव्यानुयोग के आगमों की रचना का सम्बन्ध सीधे द्धादशांग के ज्ञानियों से है। जैसे अंगांशधारक आचार्य श्री धरसेन जी महाराज से अध्ययन कर आचार्य श्री पुष्पदन्त जी महाराज ने सत्प्ररूपणासूत्र और आचार्य श्री भूतबलि जी महाराज ने षट्खण्डागम की रचना की। उसीप्रकार आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने सर्वज्ञप्रभु श्री सीमन्धर स्वामी जी से साक्षात् उपदेश प्राप्त कर आध्यात्मिक ग्रन्थों की तथा चरणानुयोगीय ग्रन्थों की रचना की।

तिलोयपण्णत्ति के रचयिता आचार्य श्री यतिवृषभ जी महाराज आचार्य श्री गुणधर जी महाराज आदि के अन्तेवासी थे। इसप्रकार तीन अनुयोगों का सम्बन्ध कहीं न कहीं सर्वज्ञवाणी से है। किन्तु, प्रथमानुयोग का पहला ग्रन्थ **पद्मपुराण** ईसवी सन् ६७७ में लिखा गया। इसका सम्बन्ध सर्वज्ञवाणी से नहीं है। अतः इसकी प्रामणिकता अविश्वसनीय है।

अब इस तर्क पर विचार किया जाना भी उचित है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थ अष्टपाहुड में बाहुबली, द्विपायन, शिवभूति आदि के दृष्टान्त दिये हैं। इसीप्रकार प्रथम शती के महान आचार्य श्री वट्टकेर जी महाराज ने मूलाचार में, आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में तथा आचार्य श्री शिवकोटि जी महाराज ने भगवती आराधना में कुछ कथापात्रों का समुल्लेख किया है। इसका अर्थ हुआ सन् ६७७ से पूर्व भी प्रथमानुयोग उपलब्ध था, जिसका सम्बन्ध सर्वज्ञवाणी से था। कालदोष से अनेक ग्रन्थ लुप्त हो गये। अतः उपलब्ध ग्रन्थों में प्रथमानुयोग का स्वतन्त्र ग्रन्थ भले ही सन् ६७७ का प्राप्त हो रहा हो, किन्तु वह प्रथमानुयोग का प्रथम ग्रन्थ नहीं है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि आप किस आधार से कह सकते हैं कि पूर्व में भी प्रथमानुयोग के ग्रन्थ उपलब्ध थे ?

इसका उत्तर अतिशय सरल है। कोई भी पापभीरु आचार्य पूर्वाचार्यों का अवलम्बन लेकर ग्रन्थरचना करते हैं, स्वेच्छा से नहीं। आचार्य श्री रविषेण जी महाराज जैसे महान सन्त काल्पनिक रचना तो कर ही नहीं सकते। यदि उन्होंने पूर्वाचार्यों का सहयोग लिया था, यह मान लिया जाये तो अपने आप यह सिद्ध हो जायेगा कि उनके पूर्व में प्रथमानुयोग के ग्रन्थ उपलब्ध थे। स्वयं आचार्य श्री रविषेण जी महाराज भी अपनी रचना से पूर्व प्रथमानुयोग के ग्रन्थों को स्वीकार करते हैं। यथा -

वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः, सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः, सुधर्मं धारणीभवम्।।

प्रभवं क्रमतः कीर्त्तिं, ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
लिखितं तस्य सम्प्राप्य, रवेर्यत्नोऽयमुदन्वतः।।
(पद्मपुराण = १/ ४१-४२)

अर्थात् - श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्द्रभूति नामक गौतम गणधर को प्राप्त हुआ। फिर, धारिणी के पुत्र सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ। फिर प्रभव को प्राप्त हुआ, फिर कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। उनके अनन्तर उत्तरवाग्मी मुनि को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनका लिखा प्राप्त कर यह रविषेण आचार्य का प्रयत्न प्रकट हुआ है।

निर्दि सकलैर्नतेन भुवनैः श्री वर्द्धमानेन यत्,
तत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः,
श्रेयःसाधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम्।।
(पद्मपुराण = १२३/१६७)

अर्थात् - श्री पद्ममुनि का जो चरित मूल में सब संसार में नमस्कृत श्री वर्द्धमान स्वामी के द्वारा कहा गया, फिर इन्द्रभूति गणधर के द्वारा सुधर्मा और जम्बूस्वामी के लिये कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्यों के शिष्य श्री उत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठवक्ता श्री कीर्तिधर मुनि के द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधि की वृद्धि करने वाला है - ऐसा यह पद्मचरित सर्वोत्तम मंगलस्वरूप है।

महाकवि श्री स्वयम्भूदेव जी इसी मत को स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिखा है -

वड्ढमाणमुहकुहविणिग्गय। रामकहाणइ एह कमागय।।
पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं। पुणु धम्मेण गुणालंकरिए।।
पुणु पहवें संसाराराएं। कित्तिहरेण अणुत्तरवाहें।।
पुणु रविसेणायरियपयाएं। बुद्धिएँ अवगाहिय कइराएं।।
(पउमचरिउ = १/२/ १-७ से ९)

अर्थात् - वर्द्धमान स्वामी के मुखरूपी पर्वत से निकल कर यह रामकथारूपी नदी क्रम से चली आ रही है। बाद में आचार्य इन्द्रभूति ने, फिर गुणों से विभूषित धर्माचार्य ने, फिर संसार से विरक्त प्रभवाचार्य ने, फिर अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर ने। फिर आचार्य रविषेण के

प्रसाद से कविराज ने इसका अपनी बुद्धि से अवगाहन किया।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य श्री कीर्तिधर जी महाराज द्वारा लिखे हुए पद्मपुराण के आधार से आचार्य श्री रविषेण जी महाराज ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया। इसका अर्थ यह हुआ कि आचार्य श्री रविषेण जी महाराज के पूर्व भी प्रथमानुयोग के ग्रन्थ थे।

यह तो सभी जानते हैं कि पाठशाला में पढ़ने वाला चतुर बालक जो विषय कठिन होते हैं, उनके टिप्पण बनाता है किन्तु जो विषय सरल होते हैं उनको वह केवल एक-दो बार रट लेता है। वह सभी के टिप्पण नहीं बनाता। परीक्षा के लिये वह दोनों ही प्रकार के विषयों का पुनरावलोकन कर लेता है। इसी प्रकार हमारे आचार्यों ने द्रव्यानुयोग जैसे कठिन विषयों का लेखन कर लिया। किन्तु, प्रथमानुयोग के लेखन से भी वे विमुख नहीं हुए। हाँ उस अनुयोग के ग्रन्थों की संख्या कम थी।

क्या कोई ऐसा मान सकता है कि आचार्य श्री कुन्दकुन्द जी महाराज ने अपने नये शिष्यों को चौबीस तीर्थंकरों का अथवा तिरेसठ शलाका पुरुषों का परिचय दिया ही नहीं होगा ? यदि न दिया होता तो भावपाहुड आदि ग्रन्थों में तीर्थंकरादिकों की कथा कैसे प्राप्त होती ? उनके शिष्य स्तवन नामक आवश्यक की पूर्ति किस विधि से करते थे ?

इसप्रकार प्रथमानुयोग का सम्बन्ध भी द्वादशांग के वेत्ताओं से था यह सिद्ध होता है। जब यह सिद्ध हो गया कि इसका सम्बन्ध सर्वज्ञवाणी से था तो यह भी सिद्ध हो गया कि प्रथमानुयोग भी अन्य अनुयोगों की तरह प्रामाणिक है।

आचार्य भगवन्त श्री समन्तभद्र जी महाराज ने प्रथमानुयोग का वर्णन करते समय लिखा है -

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं, चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं, बोधति बोधः समीचीनम्।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार = ४३)

अर्थात् - सम्यक् श्रुतज्ञान परमार्थ विषय का कथन करने वाले एक पुरुषाश्रित कथा और तिरेसठ शलाकापुरुषों की कथारूप पुण्यवर्द्धक तथा बोधि और समाधि के निधान प्रथमानुयोग को जानता है।

यदि प्रथमानुयोग सर्वज्ञ की वाणीरूप न होता अथवा अप्रामाणिक होता तो क्या आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज जैसे तार्किक आचार्य उसे बोधि अर्थात् रत्नत्रय अथवा सम्यग्ज्ञान का निधान मानते ? अन्य धीमानी आचार्य उसे जिनवाणी का अनुयोग स्वीकार करते ?

प्रथमानुयोग में विकथाओं का अभाव

कुछ धीमानों का मानना है कि प्रथमानुयोग में राजकथा, चौरकथा, भोजनकथा और स्त्रीकथा ये चारों ही विकथायें पायी जाती हैं। अतः विकथाओं से संयुक्त ग्रन्थों को सर्वज्ञप्रणीत आगम कैसे माना जाये ?

प्रथमानुयोग में जितनी कथायें पायी जाती हैं, वे काल्पनिक नहीं हैं। वे पौराणिककाल में घटित हुई कहानियाँ हैं। पुण्य का सुफल और पाप का दुष्फल बताने के लिये उन कथाओं का संकलन किया गया है। चौरविकथा में चोरी करने के प्रयोग सिखाये जाते हैं तथा चोर की प्रशंसा की जाती है। ऐसा तो किसी भी ग्रन्थ में नहीं हुआ है। इसीप्रकार अन्य विकथाओं के विषय में भी समझना चाहिये।

विकथा का एक अर्थ है - विपरीत दर्शनशास्त्रियों के द्वारा प्ररूपित कथा। मिथ्यात्व, असंयम, प्रमाद, कषाय और योगों को बढ़ाने वाली तथा मिथ्यादृष्टि मतावलतावलम्बियों द्वारा प्ररूपित कथा को विकथा कहते हैं। परम संवेगसम्पन्न आचार्यपरमेष्ठी के द्वारा निरूपित कथा विकथा की श्रेणी में आ ही नहीं सकती। विकथाओं का प्रयोजन संसार के विषयों में पाठकों की रुचि को बढ़ाना है और प्रथमानुयोग की कथाओं का प्रयोजन पाठकों को संसार से विरक्त करना है।

अतः प्रथमानुयोग में आयी हुई कथायें विकथायें नहीं हैं, अपितु संवेगिनी और निर्वेदिनी कथायें हैं।

प्रथमानुयोग में श्रृंगारवर्णन

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि प्रथमानुयोग इसीलिये अप्रामाणिक है कि उसमें श्रृंगार की बहुलता है। आचार्यों ने स्त्रियों का नखशिखान्त वर्णन किया है। इससे पाठकों की कामवासना उद्दिप्त हो सकती है। इसे सभा में पढ़ने में भी लज्जा आती है।

यदि इसी कारण से प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक माना जायेगा तो इसी हेतु के आधार पर प्रथमानुयोग से भिन्न कितने ग्रन्थों को प्रामणिक स्वीकार किया जा सकेगा ? अर्थात् अधिकतम ग्रन्थ को अप्रामाणिक स्वीकार करना पड़ेगा।

अब आप ही देखिये,

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां, शुद्धशिला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका सम्पूनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृलिक्ष्मीः।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार = १५०)

अर्थात् - जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने वाली सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी सुख की भूमि होती हुई मुझे उसतरह सुखी करे जिसतरह कि सुख की भूमि कामिनी कामी पुरुष को सुखी करती है। निर्दोष शील से युक्त होते हुए वह मुझे उसप्रकार रक्षित करे जैसे निर्दोष शीलधर्म का पालन करने वाली माता अपने पुत्र का रक्षण करती है और गुणों के आभूषणों को धारण करने वाली वह लक्ष्मी मुझे उसप्रकार पवित्र करे जिसप्रकार गुणविभूषिता कन्या कुल को पवित्र करती है।

उपर्युक्त पद्य में सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी को स्त्री, माता और पुत्री की उपमा दी गयी है। कामी पुरुष को कामिनी सुखी करती है यह उदाहरण श्रृंगाररस से युक्त है।

आचार्यप्रवर श्री कुन्दकुन्द जी महाराज का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है **नियमसार।** उस ग्रन्थ के टीकाकार हैं - गात्रमात्रपरिग्रहधारी आचार्य श्री पद्मप्रभ मलधारीदेव जी। इस टीका में अनेक स्थलों पर मुक्ति को स्त्री की उपमा दी गयी है। इस टीका में श्रृंगाररस का अत्यधिक प्रयोग देखा जा सकता है।

पद्मनन्दी पंचविंशतिका ग्रन्थ में बारहवाँ अधिकार **ब्रह्मचर्यरक्षावर्ति** और छब्बीसवाँ अधिकार **ब्रह्मचर्याक** है। इसमें स्त्री के शरीरादि का वर्णन करते समय वही शैली प्रयुक्त हुई है, जो प्रथमानुयोग में पायी जाती है।

ज्ञानार्णव ध्यान का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ के बारहवें, तेरहवें और चौदहवें अधिकार में श्रृंगाररस की बहुलता है।

आचार्य श्री ज्ञानभूषण जी महाराज का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है **श्रृंगार-वैराग्यतरंगिनी।** इस ग्रन्थ में छियालीस कारिकायें हैं। इस ग्रन्थ के माध्यम से ग्रन्थकार ने श्रृंगार का वर्णन कर उसे वैराग्यरस में रंगाने का सफल प्रयत्न किया है।

क्या इन ग्रन्थों में किया गया वर्णन सभा में पढ़ते हुए लज्जा नहीं आती तो फिर प्रथमानुयोग के प्रति ही ऐसे भाव क्यों ? आचार्यों का प्रयोजन है वस्तुस्वरूप का वर्णन करना, नकि उसे लज्जाजनक बनाना।

यह सभी जानते हैं कि साहित्य में नौ रस माने गये हैं। उनमें श्रृंगार भी एक रस है। यदि नौ रसों का यथोचित समावेश न हो तो वह कृति साहित्य की कोटि में नहीं आती। यही कारण है कि आचार्यों ने इसका यथास्थान प्रयोग किया है।

साहित्य के कुछ नियामक मानदण्ड हैं। कथाग्रन्थों में अधिकार कितने हो ? पात्रों का व प्रकृति का वर्णन कैसे करें ? इन सभी के विषय में कुछ नियम निर्धारित हैं। यदि उन नियमों का परिपालन न किया जाये तो उस कृति को उच्च साहित्य नहीं कहा जा सकता है।

नायिका का वर्णन करते समय किन-किन बातों का मुख्यरूप से उल्लेख होना चाहिये ? इसे सुस्पष्ट करते हुए आचार्य श्री अजितसेन जी महाराज ने लिखा है कि-

देव्यां त्रपा विनीतत्वव्रताचारसुशीलताः।
प्रेमचातुर्यदाक्षिण्यलावण्यकलनिस्वना।।
दयाश्रृङ्गारसौभाग्यमानमन्मथविभ्रमाः।
पत्तलोपरितद्गुल्फनखजङ्घासुजानुभिः।।
ऊरुश्रोणीसुरोमालीवलित्रितयनाभयः।

मध्यवक्षःस्तनग्रीवाबाहुसाङ्गुलिपाणयः ।।
रदनाधरगण्डाक्षिभ्रूभालश्रवणानि च ।
शिरोवेणीकबर्यादिगतिजात्यादिरेव च ।।

(अलंकार चिन्तामणि = १/२९ से ३२)

अर्थात् - लज्जा, नम्रता, व्रताचरण, सुशीलता, प्रेम, चतुराई, व्यवहारनिपुणता, लावण्य, मधुरालाप, दयालुता, श्रृंगार, सौभाग्य, मान, कामसम्बन्धी विविध चेष्ठायें, पैर, तलवा, एड़ी, नख, जंघा, सुन्दर घुटना, ऊरु, कटि, सुन्दर रोमपंक्ति, त्रिवलि, नाभि, मध्यभाग, वक्षस्थल, स्तन, गर्दन, बाहु, अंगुलि, हाथ, दाँत, ओठ, कपोल, आँख, भौंह, ललाट, कान, मस्तक, वेणी इत्यादि अंग-प्रत्यंगों तथा गमनरीति एवं जाति आदि का वर्णन देवी के विषय में जानना चाहिये।

काव्यशास्त्र के नियम को ध्यान में रख कर ही जिनप्रतिमाओं का निर्माण होता है। खड्गासन प्रतिमा में भी उन अंगों का निर्माण किया गया है। अब आप ही बताइये कि जिनेन्द्र भगवान की सर्वांगसुन्दर व कामदेव के रूप को भी लज्जित करने वाली वह प्रतिमा लज्जा उत्पन्न करती है - ऐसा कौन बालबुद्धि वाला स्वीकार करेगा ?

मुख्य बात यह है कि प्रथमानुयोग के ग्रन्थ संवेजिनी और निर्वेगिनी कथा के अंग हैं। आचार्यों ने वहाँ जो कुछ वर्णन किया है, वह संसार से वैराग्य की उत्पत्ति कराने तथा धर्म व धर्मफल में उत्साह को बढ़ाने के लिये ही किया है, विकारों की वृद्धि के लिये नहीं।

यहाँ उदाहरण के रूप में भरत महाराज को प्रस्तुत किया जा सकता है। भरत चक्रवर्ती के विभूतियों का वर्णन करते समय उसकी छियानवें हजार रानियों और उपभोगादिकों का वर्णन किया गया है। यही नहीं, उसके रानियों की सुन्दरता का बखान भी किया गया है। उससमय पाठकों का ध्यान बरबस ही इधर आकर्षित कराया जा रहा है कि उनको इतनी सुन्दर पत्नियों व विभूति की प्राप्ति जैनधर्म का आचरण करने से प्राप्त हुई है। यदि आप भी सुख चाहते हैं तो धर्म करो। प्रथमानुयोग का पाठक प्राथमिक रूप से धर्म की पाठशाला का

नवागन्तुक होता है। संसार के दुःखों से सन्तप्त वह पाठक सुख को प्राप्त करने के लिये धर्म का आश्रय लेने के लिये लालायित हो जाता है।

इसप्रकार अन्य उदाहरण भी जाने जा सकते हैं।

सीता की सुन्दरता का वर्णन करने वाले आचार्य भगवान रविषेण जी महाराज ने उसके शील की भी उतनी ही प्रशंसा की है।

विशेष

प्रथमानुयोग को अप्रामाणिक मानने पर जो सब से बड़ा बाधक कारण उपस्थित होता है, वह यह है कि उन ग्रन्थों के रचयिता आचार्य परमेष्ठी हैं। आचार्य परमेष्ठी की प्रामाणिकता पर सन्देह करने का अर्थ है संघ का अवर्णवाद करना। अप्रामाणिक ग्रन्थ के रचयिता भी अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। इसप्रकार का कथन करना तो आचार्य-अवर्णवाद हुआ। अवर्णवाद तो मिथ्यात्व का आस्रवप्रत्यय है।

एक विचारणीय पहलु यह भी है कि प्रथमानुयोग के ग्रन्थों को अप्रामाणिक मान लेने पर उन ग्रन्थों के लेखक अप्रामाणिक हो गये। उन अप्रामाणिक लेखकों के द्धारा लिखे गये अन्य अनुयोग के ग्रन्थ भी अप्रामाणिक हो जायेंगे, क्योंकि **वक्ताप्रामाण्याद् वक्तृत्वप्रामाण्यम्** यह उक्ति सुप्रसिद्ध है। ऐसा मानने पर उत्तरपुराण के लेखक आचार्य श्री गुणभद्र जी महाराज के द्धारा लिखा हुआ आत्मानुशासन, आदिपुराण के लेखक आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज के द्धारा लिखा हुआ जयधवला का शेषांश, धर्मपरीक्षा के लेखक आचार्य श्री अमितगति जी महाराज के द्धारा लिखे हुए तत्त्वभावना, मरणकण्डिका व पंचसंग्रह तथा धन्यकुमार चरित्र के लेखक आचार्य श्री सकलकीर्ति जी महाराज के द्धारा लिखे गये त्रिलोकसार दीपक, मूलाचार प्रदीप और तत्त्वार्थसार दीपक आदि समस्त ग्रन्थ अप्रामाणिकता की कोटि में परिगणित हो जायेंगे। क्या ऐसा स्वीकार करने की किसी की हिम्मत है ? अतः यही मानना श्रेयस्कर है कि अन्य अनुयोगों की तरह प्रथमानुयोग भी प्रामाणिक है, क्योंकि उनके लेखक सत्यमहाव्रती, आगमज्ञानी और

पापभीरु आचार्य हैं।

प्रथमानुयोग में मतभिन्नता

कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि प्रथमानुयोग में मतभिन्नता की बहुलता है। अतः उसकी प्रामणिकता सन्दिग्ध होती है।

यह तर्क सम्पूर्ण सिद्धान्त को बाधित करता है। आचार्य श्री वीरसेन जी महाराज जैनसिद्धान्त के अप्रतिम विद्वान एवं सिद्धहस्त सिद्धान्त-टीकाकार थे। उनके समक्ष मतभेदों की स्थिति आने पर उन्होंने किसी एक मत का समर्थन नहीं किया, अपितु उन दोनों ही मतों के सम्यक् पने की सिद्धि की है।

यथा -

दोसु वि उवदेसु को एत्थ समंजसो ?

एत्थ ण वाहइ जीब्भमेलाइरियवच्छओ, अलद्धोवदेसादो दोण्हमेक्कस्स पहाणुवलंभादो। किंतु दोसु एक्केण होदव्वं, तं च उवदेसं लहिय वत्तव्वं।

(जयधवला = १/८४)

शंका – इन दोनों उपदेशों में से कौनसा उपदेश ठीक है?

समाधान – एलाचार्य के शिष्य को इस विषय में अपनी जबान नहीं चलाना चाहिये, क्योंकि इन दोनों में से कौन योग्य है और कौन अयोग्य है? इस विषय का उपदेश प्राप्त नहीं है। यद्यपि दोनों उपदेशों में से कोई एक उपदेश ही ठीक है। उस उपदेश को प्राप्त करके ही कहा जा सकता है।

मतभेदों का कारण आचार्यों तक परम्परा से आया हुआ उपदेश है। छद्मस्थ आचार्यों ने प्राप्त उपदेश को अपनी धारणाशक्ति के अनुसार धारण किया। फिर भी उन्होंने अपने मत का एकान्त आग्रह नहीं किया। जैसे -

आचार्य श्री अकलंकदेव जी महाराज

एकादीनिभाज्यानियुगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः।

(तत्त्वार्थसूत्र = १/३०)

इस सूत्र की टीका करते समय अपना मत रखते हैं कि एक ज्ञान

होगा तो मतिज्ञान होगा। यथा - **मतिज्ञानमेकस्मिन्नात्मनि एकम्।** उसके लिये वे अनेक तर्क भी देते हैं।

आचार्य श्री पूज्यपाद जी महाराज का मत है कि एक हो तो केवलज्ञान होगा। इस मतभेद से परिचित आचार्य श्री अकलंकदेव जी महाराज अपने मत की पुष्टि करने के उपरान्त आचार्य श्री पूज्यपाद जी महाराज के मत का अनादर नहीं करते, अपितु समर्थन करते हुए लिखते हैं -

अपर आह – संख्यासहायप्राधान्यवचने एकशब्दे सति एकादीनि केवलादीनीत्यर्थः।

एकस्मिन्नात्मन्येकं केवलज्ञानं क्षायिकत्वात्।

अर्थात् - दूसरे आचार्य कहते हैं कि संख्या, असहाय और प्रधानवाची एक शब्द को मान कर एकादीनि शब्द से केवलादीनि अर्थ करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि एक आत्मा में एक होगा तो केवलज्ञान होगा क्योंकि वह क्षायिक है।

करणानुयोग में मतान्तर

सौधर्म इन्द्र के देवियों की संख्या छिहत्तर करोड़ इक्यासी लाख अट्ठाईस हजार है - ऐसा लोकविनिश्चय नामक ग्रन्थ में है।

सौधर्म इन्द्र के देवियों की संख्या सत्ताईस करोड़ है - ऐसा संग्गहणी नामक ग्रन्थ में है।

सौधर्म इन्द्र के देवियों की संख्या एक लाख साठ हजार है तथा आठ अग्र देवियाँ होती हैं - ऐसा तिलोयपण्णत्ती नामक ग्रन्थ में है।

कुछ आचार्य सर्वार्थसिद्धि के देवों की संख्या मनुष्यनियों से तीन गुणा मानते हैं तो कुछ आचार्य सर्वार्थसिद्धि के देवों की संख्या मनुष्यनियों से सात गुणा मानते हैं।

यदि तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ का मनःपूर्वक स्वाध्याय किया जावे तो अनेक मतान्तर स्पष्ट हो जाते हैं।

देवियों की आयु कितनी हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सिद्धान्त चक्रवर्ती, आचार्य श्री नेमिचन्द्र जी महाराज लिखते हैं -

साहियपल्लं अवरं कप्पदुगित्थीण पणग पढमवरं।

एक्कारसे चउक्के कप्पे दोसत्तपरिवड्ढी।।

(त्रिलोकसार = ५४२)

अर्थात् - सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवांगनाओं की जघन्य आयु साधिक एक पल्य है।

सौधर्म स्वर्ग के देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य है। इसके आगे ग्यारह स्थानों में दो-दो की और शेष चार स्थानों में सात-सात पल्य की वृद्धिपूर्वक है।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य श्री यतिवृषभ जी महाराज ने तीन मतों को प्रस्तुत किया है। यथा -

पलिदोवमाणि पण णव तेरस सत्तरस तह य चोत्तीसं।
अट्ठत्तालं आऊ देवीणं दक्खिणिंदेसु।
सत्तेयारस तेवीस सत्तवीसेक्कताल पणवण्णा।
पल्ला कमेण आऊ देवीणं उत्तरिंदेसु।।
जे सोलस कप्पाणिं केई इच्छंति ताण उवएसे।
अट्ठसु आउपमाणं देवीणं दक्खिणिंदेसु।।
पलिदोवमाणि पण णव तेरस सत्तरस एक्कवीसं च।
पणवीसं चउतीसं अट्ठत्ताणं कमेणेव।।
पल्लासत्तेकारस पण्णरसेक्कोणवीस तेवीसं।
सगवीसमेक्कतालं पणवण्णं उत्तरिंददेवीणं।।
कप्पं पडि पंचादिसु पल्ला देवीण वड्ढदे आऊ।
दोद्दो वड्ढी तत्तो लोयायणिये समुद्दिट्ठं।।
पलिदोवमाणि पंच य सत्तारस पंचवीस पणतीसं।
चउसु जुगलेसु आऊ णादव्वा इंददेवीणं।।
आदणदुगपरियंतं वड्ढंते पंच पंच पल्लाइं।
मूलायाराइरिया एवं णिउणं णिरूवेंति।।

(तिलोयपण्णत्ति = ८/५२७ से ५३५)

अर्थात् - दक्षिण इन्द्रों मे देवियों की आयु क्रम से पाँच, नौ, तेरह, सतरह चौतीस और अड़तालीस पल्यप्रमाण है।

उत्तर इन्द्रों में देवियों की आयु क्रम से सात, ग्यारह, तेवीस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पल्य प्रमाण है।

जो कोई आचार्य सोलह कल्पों की मान्यता रखते हैं उनके उपदेशानुसार आठ दक्षिण इन्द्रों में देवियों की आयु का प्रमाण क्रम से पाँच, नौ, तेरह, सतरह, इक्कीस, पच्चीस, चौतीस और अड़तालीस पल्य है।

उक्त आचार्यों के उपदेशानुसार उत्तर इन्द्रों के देवियों की आयु क्रम से सात, ग्यारह, पन्द्रह, उन्नीस, तेईस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पल्य प्रमाण है।

देवियों की आयु प्रथम कल्प में पाँच पल्य प्रमाण है। इसके आगे प्रत्येक कल्प में दो-दो पल्य की वृद्धि होती है ऐसा लोगाइणी में कहा है।

चार युगलों में इन्द्र के देवियों की आयु क्रम से पाँच, सतरह, पच्चीस और पैंतीस पल्य प्रमाण जाननी चाहिये। इसके आगे आरणयुगलपर्यन्त पाँच-पाँच पल्य की वृद्धि होती गयी है ऐसा मूलाचार में आचार्य स्वरूप से निरूपण करते हैं।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी के भेद से देव चार प्रकार के हैं। उनमें से कल्पवासी देव कल्पों में रहते हैं।

कल्प कितने हैं ?

इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य श्री यतिवृषभ जी महाराज ने लिखा है -

बारसकप्पा केई, केई सोलस वदंति आयरिया।
हेट्ठिम मज्झे उवरिं, पत्तेकं ताण होंति चत्तारि।
एवं बारस कप्पा, सोलस उड्डुड्ढमट्ठ जुगलाणिं।।

(तिलोयपण्णत्ति = ८/११५-११६)

अर्थात् - कोई आचार्य कल्पों की संख्या बारह बतलाते हैं और कोई आचार्य कल्पों की संख्या सोलह बतलाते हैं।

जो आचार्य बारह कल्प स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार अधोभाग, मध्यभाग और उपरिम भाग में से प्रत्येक में चार-चार कल्प हैं।

जो आचार्य सोलह कल्प स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार ऊपर-ऊपर आठ कल्प युगलों में सोलह कल्प है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि करणानुयोग के ग्रन्थों में मतभेद पाये जाते हैं।

चरणानुयोग में मतान्तर

श्रावक तीन प्रकार के व्रतों का परिपालन करते हैं। यथा - अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत। अणुव्रत पाँच प्रकार का है। गुणव्रत के तीन भेद हैं और शिक्षाव्रत चार विकल्पों से समन्वित है। आचार्य परम्परा में गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के नामों को लेकर मतभिन्नता है।

आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज के अनुसार-

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगापरिभोगपरिमाणातिथि-संविभागव्रतसम्पन्नश्च।

(तत्त्वार्थसूत्र = ७/२१)

अर्थात् - दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ये तीन गुणव्रत हैं तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं।

आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज के अनुसार-

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः।।
देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिानि।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार = ६७, ९१)

अर्थात् - दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग-परिमाणव्रत ये तीन गुणव्रत हैं तथा देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं।

प्रतिमा के क्रम को लेकर भी आचार्यों में मतभिन्नता परिलक्षित होती है। आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज के अनुसार सचित्तत्यागप्रतिमा पाँचवीं प्रतिमा है और आरम्भत्याग आठवीं, जबकि आचार्य श्री सोमदेव जी महाराज आरम्भत्याग को पाँचवीं प्रतिमा मानते हैं और सचित्तत्याग को आठवीं।

मूलगुणों के नामों में भी परस्पर भिन्नता पायी जाती है।

आचार्य श्री समन्तभद्र जी महाराज का मत है-

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।

औ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार = ६६)

अर्थात् - पाँच अणुव्रत सहित मद्य, मांस और मधु के त्याग को श्रमणोत्तमों ने गृहस्थों के योग्य आठ मूलगुण कहा है।

सागार धर्मामृत की ज्ञानपंजिका नामक टीका में पण्डितप्रवर श्री आशाधर जी ने एक अज्ञातकर्तृक मत का दिग्दर्शन किया है-

मद्योदुम्बरपञ्चामिषमधुत्यागाः कृपा प्राणिनां,
नक्तंभुक्तिविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोयं सुवस्त्रस्रुतम्।
एतेऽौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणां कीर्त्तिताः,
एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रमी।।

अर्थात् - मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, रात्रिभोजनत्याग, उदम्बर फल त्याग, देवदर्शन, जीवदया और छना हुए जल का सेवन ये श्रावकों के आठ मूलगुण हैं।

अतिचारों के नामोल्लेख में भी मतभिन्नता दिखाई देती है।

व्रतों की भावनाओं में भी मतभेद पाया जाता है। जैसे - स्त्रीरागकथा-श्रवण, तन्मनोहरांगनिरीक्षण, पूर्वरतानुस्मरण, वृष्येरसत्याग और शरीर-संस्कारत्याग को आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज आदि ने **(तत्त्वार्थसूत्र = ७/७)** ब्रह्मचर्य की भावनायें मानी हैं। आचार्य श्री शिवकोटि जी महाराज ने शरीरसंस्कारत्याग के स्थान पर संसक्तवसतित्याग को **(भगवती आराधना = १२१०)** ब्रह्मचर्य की भावना माना है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि चरणानुयोग के ग्रन्थों में मतभेद पाये जाते हैं।

द्रव्यानुयोग में मतान्तर

मणुस्ससासा-----णसम्माइट्ठी संखेज्जवासाउसा मणुसा मणुसेहि कालगद-समाणा कदि गदिओ गच्छंति ?

(धवला = पु. ६ पृष्ठ ४७०)

तिरिक्खेसु गच्छंता एइंदिय-पंचिंदिएसु गच्छंति, णो विगलिंदिएसु गच्छंति।

(धवला = पु. ६ पृष्ठ ४७०)

अर्थात् - मनुष्य सासादन सम्यग्दृष्टि संख्यात वर्षायुष्क मनुष्य मनुष्यपर्याय से मरण करके कितनी गतियों को जाते हैं ?

तिर्यंचों में जाने वाले उपर्युक्त मनुष्य एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में जाते हैं, विकलेन्द्रियों में नहीं जाते हैं।

ये दोनों षट्खण्डागम के मूल सूत्र हैं। किन्तु, टीकाकार आचार्य श्री वीरसेन स्वामी जी लिखते हैं-

को एवं भणदि जधा सासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति। किंतु ते तत्थ मारणंतियं मेल्लंति त्ति अम्हाणं णिच्छओ।

(धवला = ४ पृष्ठ १६२)

अर्थात् - कौन ऐसा कहता है कि सासादन सम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं? किन्तु वे उस गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात करते हैं ऐसा हमारा निश्चय है।

मध्यलोक में कुल मुनियों की संख्या कितनी हैं ?

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।

(धवला = पु. ३ पृष्ठ ९८)

अर्थात् - जिस संख्या के आदि में सात हैं, अन्त में आठ हैं और मध्य में छह बार नौ हैं उतने सर्वसंयत हैं।

वन्दामहे त्रिसंख्योन नवकोटिमुनीश्वरान्।

(कातन्त्ररूपमाला = ४)

अर्थात् - मैं तीन कम नौ करोड़ मुनिराज को नमस्कार करता हूँ।

छक्कादी छक्कंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।

(धवला = पु. ३ पृष्ठ १०१)

अर्थात् - जिस संख्या के आदि में छह, अन्त में छह हो तथा मध्य में छह बार नौ हैं उतने सर्वसंयत हैं।

मुनियों की गुणस्थानानुसार संख्या

क्र.स.	गुणस्थान का नाम	दक्षिणी मान्यता	उत्तरी मान्यता
१	प्रमत्तविरत	५९३९८२०६	४६६६६६६४
२	अप्रमत्तविरत	२९६९९१०३	२२७९९४९८
३	अपूर्वकरण- उपशामक	२९९	२९९
४	अपूर्वकरण- क्षपक	५९८	५९८
५	अनिवृत्तिकरण- उपशामक	२९९	२९९
६	अनिवृत्तिकरण- क्षपक	५९८	५९८
७	सूक्ष्मसामपराय- उपशामक	२९९	२९९
८	सूक्ष्मसामपराय- क्षपक	५९८	५९८
९	उपशान्तमोह	२९९	२९९
१०	क्षीणमोह	५९८	५९८
११	सयोगकेवली	८९८५०२	५२९६४८
१२	अयोगकेवली	५९८	५९८

उपशामक जीवों की संख्या के विषय में तीन मत हैं-

तिसदं वदंति केइं चउरुत्तरमत्थपंचयं केइं।
उवसामगेसु एदं खवगाणं जाण तद्दुगुणं।।

(धवला = पु. ३ पृष्ठ ९४)

अर्थात् - कितने ही आचार्य उपशामक जीवों का प्रमाण तीन सौ कहते हैं। कितने ही आचार्य उपशामक जीवों का प्रमाण तीन सौ चार कहते हैं और कितने ही आचार्य उपशामक जीवों का प्रमाण तीन सौ चार में पाँच कम कहते हैं।

(करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में पाये जाने वाले मतान्तरों की संख्या इतनी ही नहीं है। यदि सभी का संग्रह कर लिया जाये तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जायेगा। यहाँ केवल संकेत मात्र दिया है।)

यह तो सभी जानते हैं कि महाबन्ध के लेखक आचार्य भगवन्त श्री भूतबलि जी महाराज अंगांशधारी श्री धरसेन जी महाराज के चरणकमलों में अध्ययन कर चुके थे। उनके समक्ष भी मतभेद थे। उन्होंने मतभेदों का तिरस्कार नहीं किया, अपितु आदरपूर्वक उनका समुल्लेख किया है।

यथा -

अवट्ठि. पवाइज्जंतेण उवदेसेण ज. ए. उ. ऍक्कारससमयं। अण्णेण पुण उवदेसेण ज. ए. उ. पण्णारससमयं।

(महाबन्ध = ६/५५)

अर्थात् - अवस्थित पद का चालू उपदेश के अनुसार जघन्यकाल एकसमय है और उत्कृकाल ग्यारह समय है।

अन्य उपदेश के अनुसार जघन्यकाल एकसमय है और उत्कृकाल पन्द्रह समय है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों में मतभेद पाये जाते हैं।

यह ज्ञातव्य है कि छद्मस्थ आचार्यों को प्राप्त हुई उपदेश-परम्परा के कारण यद्यपि मतभेद उद्भूत हुए, किन्तु उससे उनकी कृति सन्दिग्ध नहीं हुई। जब अन्य अनुयोग मतभेदों के कारण से सन्दिग्धता की कोटि में नहीं आते तो फिर क्या प्रथमानुयोग के प्रति ऐसा आग्रह करना उचित माना जा सकता है ?

इतने प्रमाणों के उपरान्त भी कुछ लोग केवल हठाग्रहवशात् प्रथमानुयोग को अप्रामणिक, विकथा और असारभूत मानते हैं उन्हें आचार्य श्री श्रुतसागर जी महाराज का निम्नांकित प्रमाण पढ़ लेना चाहिये-

शासनदेवता न पूजनीया आत्मैव देवो वर्त्तते। अपरः कोऽपि देवो नास्ति, वीरादन्तरं किल केवलिनोऽष्ट जाता न तु त्रयः। महापुराणादिकं किल विकथा इत्यादि ये उत्सूत्रं मन्वते ते मिथ्यादृष्टयश्चार्वाका नास्तिकाः। ते यदि

जिनसूत्रमूल्लङ्घन्ते तदास्तिकैर्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः। तथापि ते यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थैरास्तिकैरुपानद्भिर्गूथलिप्ताभिर्मुखे ताडनीयाः। तत्र पापं नास्ति।

(दर्शनपाहुड = २)

अर्थात् = शासनदेवता पूजनीय नहीं हैं, आत्मा ही देव है अन्य कोई देव नहीं हैं, वीर के बाद तीन नहीं अपितु आठ केवली हुए हैं। महापुराणादिक (प्रथमानुयोग) विकथा (खोटी कथायें) है इत्यादि सूत्रविरुद्ध बातों को जो मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं, चार्वाक हैं, नास्तिक हैं। वे यदि जिनसूत्र का उल्लंघन करते हैं तब आस्तिकों के द्वारा युक्तिपूर्वक उनका निषेध करना चाहिये। फिर भी यदि वे अपना कदाग्रह नहीं छोड़ते हो तो समर्थ आस्तिकों के द्वारा विष्ठा से जूता भर कर उनके मुख पर मारना चाहिये। इसमें पाप नहीं है।

श्रीपुराण की प्राप्ति का इतिहास

परम पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों की वन्दना करने के लिये मैं १९९९ में बनारस पहुँचा था। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि आप आरा नगरी वर्षायोग कीजिये और वहाँ के ग्रन्थभण्डार का लाभ उठाइये। गुर्वादेश की परिपालना करने के लिये मैं आरा में वर्षायोग करने के लिये पहुँचा। वहाँ जैन सिद्धान्त भवन का विशाल ग्रन्थभण्डार देख कर मैं अपने भाग्य की सराहना करने लगा। उस ग्रन्थभण्डार में मुझे यह पुराण प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ की ऊँचाई आठ इंच की है तथा लम्बाई चौदह इंच की है। साढ़े पाँच इंच की ऊँचाई और ग्यारह इंच की लम्बाई में लेखनकार्य किया गया है। पाण्डुलिपि में पचहत्तर पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग तेरह पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में लगभग पैंतीस अक्षर पाये जा रहे हैं। अक्षर सुवाच्य हैं और पाण्डुलिपि की स्थिति अत्युत्तम है।

मैंने उस ग्रन्थ की नकल (फोटो कॉपी) की। उसी को आधार बना कर यह अनुवाद कार्य पूर्ण किया है।

मुझे प्राप्त हुई पाण्डुलिपि के अनेक स्थल सन्दिग्ध थे। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुए आदिपुराण के आधार पर उन स्थलों का

संशोधन भी किया गया। अनुवाद करते समय मुझे जिन शब्दों का अर्थ करने में कठिनाइयों का अनुभव हो रहा था, उन शब्दों का अर्थ करने के लिये पण्डितप्रवर श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य जी के अनुवादित आदिपुराण का सहयोग प्राप्त किया।

श्रीपुराण की कथावस्तु

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि आचार्य श्री जिनसेन जी महाराज के द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का कहीं समुल्लेख क्यों नहीं किया गया है ? अथवा इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख क्यों नहीं किया ?

यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। इसे आदिपुराण का लघु संस्करण कहे तो किसीप्रकार की अतिशयोक्ति नहीं होगी। मेरे विचार से यह आदिपुराण की कथा को संक्षिप्त पद्धति से प्रकट करने के लिये किया गया अनुपम संकलन है। एक ही ग्रन्थ के विषय को संकलित करने का कार्य कठिन तो था ही, फिर भी संकलनकार ने कुशलता से कार्य पूर्ण कर दिखाया है। संकलनकार कौन हैं ? इसके विषय में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है।

किन्तु, यह अतिशय साहसिक कार्य है। सभी सुधी जानते हैं कि आदिपुराण एक महान पुराण है। इस पुराण में सैंतालीस पर्वों में प्रथम तीर्थंकर श्री भगवान आदिनाथ के जीवन को रेखांकित किया गया है। इस ग्रन्थ में कुल मिला कर ग्यारह हजार चार सौ तीस श्लोक हैं। इतने बड़े पुराण को कथा की सरसता में व्यत्यय न आने देते हुए भी संक्षिप्त कर दिखाना कठिन है। किन्तु, पाठकगण इस कृति में उस प्रयत्न का सफल साकार रूप देख सकते हैं।

इस ग्रन्थ में मात्र दस पर्व हैं। उन दस पर्वों में क्रमशः सौ, सौ, अस्सी, एक सौ बीस, सौ, सौ, एक सौ बीस, अस्सी, सौ और सौ श्लोक हैं। इसप्रकार पूरे ग्रन्थ में कुल मिला कर एक हजार श्लोक हैं। जैसा कि मैं पूर्व में भी लिख चुका हूँ कि यह आदिपुराण का संक्षिप्त संस्करण है। अतः इस ग्रन्थ में आये हुए श्लोक सारे आदिपुराण में पाये जाते हैं।

किसी स्थान पर पूर्ण श्लोक को ज्यों कि त्यों लिया गया है। कुछ स्थलों पर किसी श्लोक के एक या दो चरण लेकर अन्य श्लोक के चरणों के साथ सम्बन्धित कर दिये गये हैं। इसके उपरान्त भी कथा का सातत्य समाप्त नहीं होता और कथा की मधुरता कायम रहती है। इसप्रकार का प्रयत्न प्रामाणिकता के साथ आज किये जाये तो अनेक ग्रन्थ सरल बन सकते हैं।

प्रथमानुयोग साहित्य का एक महानतम अंग है। अतः उसमें आलंकारिक भाषा का पाया जाना साहजिक है। एक तालाब का वर्णन करने करने के लिये बीस-पच्चीस श्लोकों का प्रयोग करना प्रथमानुयोग में सामान्य है। पाठकों में यदि साहित्यिक रुचि न हो तो उन्हें ये प्रसंग अप्रासंगिक लगते हैं। ऐसे समय में मूल ग्रन्थ का आशय समझने के लिये इसप्रकार का संकलन मूल ग्रन्थों के प्रति आस्था को ही विकसित कर सकेगा - ऐसा मेरा मत है।

इस ग्रन्थ का नाम श्रीपुराण क्यों रखा गया ? यह विषय विचारणीय है। हाँ, मुझे प्राप्त हुई पाण्डुलिपि में यही नाम लिखा हुआ है। प्रत्येक पर्व के अन्तिम पुष्पिका में **इति श्रीपुराण समाम्नाये--** लिखा होने के कारण ही मैंने इस कृति को श्रीपुराण नाम दिया है।

इस कृति का संकलन कब हुआ ?

इस कृति के पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि कब की गयी ?

इत्यादिक प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिये कोई स्रोत उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।

इस ग्रन्थ की कथावस्तु इसप्रकार है-

पहला पर्व

भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो कालपरिवर्तन होता है उसके दो भेद हैं। दस कोड़ाकोड़ी सागर वर्षों का अवसर्पिणी काल होता है और उतना ही उत्सर्पिणी काल होता है। जिस काल में मनुष्य की आयु, बल, धारणाशक्ति और ऊँचाई घटती है उस काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं तथा जिस काल में मनुष्य की आयु, बल, धारणाशक्ति और ऊँचाई

बढ़ती है उस काल को उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इन दोनों के क्रमशः छह-छह भेद हैं। अवसर्पिणी काल के सुखमा-सुखमा, सुखमा, सुखमा-दुखमा, दुखमा-सुखमा, दुखमा और दुखमा-दुखमा ये छह भेद हैं। इनका विलोमक्रम करने पर उत्सर्पिणी काल के छह भेद हो जाते हैं।

अवसर्पिणी काल के सुखमा काल में पहले, दूसरे एवं तीसरे काल में भरत क्षेत्र में भोगभूमि-विषयक व्यवस्था थी। दान के पुण्य से उस काल में उत्पन्न हुए जीव दसप्रकार के कल्पवृक्षों से अपने अभिलषित भोगों को प्राप्त करते थे और मरने के उपरान्त अवशिष्ट पुण्य का उपभोग करने के लिये स्वर्ग में जाते थे। तीसरे काल के समाप्त होने में पल्य का आठवाँ भाग शेष था तब आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन सायंकाल में उदित होता हुआ चन्द्रमा देख कर आर्य लोग घबरा गये। वे श्री प्रतिश्रुति के पास जाकर अपनी आशंका का समाधान करने लगे। उससमय आर्यों को कालपरिवर्तन के तथ्य को समझा कर प्रतिश्रुति ने उन्हें आश्वस्त किया। वे प्रतिश्रुति ही पहले मनु अर्थात् कुलकर कहलाये। उनके बाद एक-एक कर कुल चौदह कुलकरों ने आर्यों का संरक्षण व मार्गदर्शन किया। चौदहवें कुलकर श्री नाभिराजा थे। भगवान आदिनाथ उन्हीं के पुत्र थे।

इसप्रकार कालपरिवर्तन और कुलकरों का वर्णन करने के उपरान्त ग्रन्थकार ने भगवान आदिनाथ के पूर्वभवों की कथा प्रारम्भ की है।

विजयार्द्ध पर्वत की उत्तरश्रेणि में अलका नामक नगर है। वहाँ के राजा का नाम अतिबल था। उनकी महारानी का नाम मनोहरा था। उन दोनों ने महाबल नामक पुत्र को जन्म दिया। अपने पुत्र को राज्य का कार्य सौंप कर अतिबल महाराज ने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। महाबल ने राजा बनने के उपरान्त महामति, सम्भिन्नमति, शतमति और स्वयम्बुद्ध इन चार मन्त्रियों के सहयोग से अपना राजकार्य करना प्रारम्भ किया।

दूसरा पर्व

एकदिन राजा महाबल के जन्मोत्सव का उत्सव मनाया जा रहा

था। उससमय स्वामी का हित चाहने वाले स्वयम्बुद्ध नामक मन्त्री ने राजा को धर्म करने की प्रेरणा दी। उसने जीव की सिद्धि की। तदुपरान्त उसने आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन चारों ही ध्यानों का फल बताते हुए उनके पूर्वजों की चार कथायें सुनाई।

एकबार स्वयम्बुद्ध मेरुपर्वत के चैत्यालयों की वन्दना करने के लिये गया हुआ था। वहाँ उसने आदित्यगति और अरिंजय नामक दो महामुनियों के दर्शन किये। उसने नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रश्न किया कि हे पूज्यवर ! मेरा स्वामी भव्य है कि अभव्य ? गुरुदेव ने कहा कि वह केवल भव्य ही नहीं, अपितु दसवें भव में भरत क्षेत्र में पहला तीर्थंकर होकर मोक्ष को प्राप्त करेगा।

तुम्हारा स्वामी का पूर्वभव इसप्रकार है-

सिंहपुर नगर में श्रीषेण नामक राजा राज्य कर रहा था। उसके सुन्दरी नामक स्त्री से जयवर्मा और श्रीवर्मा नामक दो पुत्र हुए थे। श्रीवर्मा जनप्रसिद्ध था। अतः पिता ने राजकीय भार उसे सौंप दिया। अपनी अवमानना से निर्वेग को प्राप्त हुआ जयवर्मा दीक्षित हुआ। उत्कृष्ट तप करने वाले जयवर्मा ने एकदिन महीधर नामक विद्याधर की विभूति को देख कर विद्याधर बनने का निदान किया। उसीसमय सर्प के काट लेने से वह मरण को प्राप्त हुआ। वही राजा महाबल के रूप में अवतीर्ण होकर अपने तप का फल भोग रहा है।

आज उसने दो स्वप्न देखे हैं। अभी वह उसका फल जानने के लिये व्याकुल हो रहा है। तुम उसे उसके पूछने से पूर्व ही स्वप्नफल बता दो। उसकी अब केवल एक माह की आयु अवशिष्ट रह गयी है।

मुनिराज के कहे अनुसार स्वयम्बुद्ध ने महाबल को वस्तुस्थिति से अवगत कराया। महाबल ने अपना मरण सुधारने के उद्देश्य से अपने उपवन में अष्टाह्निका पर्व में महापूजा की। अपने पुत्र को राज्य सौंप कर उसने वहीं बाईस दिन की सल्लेखना धारण की। मरणकाल में महामन्त्र का जाप किया। मरण कर वह ऐशान स्वर्ग में श्रीप्रभ नामक विमान में ललितांग नामक देव हुआ। जब उसकी आयु कुछ पल्य की शेष रही

तब उसे स्वयम्प्रभा नामक देवी की प्राप्ति हुई। उसके साथ वह निरन्तर आनन्द में मग्न रहने लगा।

तीसरा पर्व

एकदिन ललितांग देव के गले की माला मुरझा गयी। उससे उसे ज्ञात हो गया कि उसकी आयु का अल्प भाग ही अवशिष्ट रहा है। स्वर्गीय सुखों के छूटने का दुःख उसे पीड़ित करने लगा। तब उसे सामानिक देवों ने सम्बोधित किया। सम्बोधन को प्राप्त कर ललितांग ने पन्द्रह दिनों तक जिनालयों की वन्दना की और चैत्यवृक्ष के नीचे अपने प्राणों का विसर्जन किया।

वह जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की पूर्वदिशा में विदेहक्षेत्रस्थ पुष्कलावती देश में उत्पलखेट नगर के राजा वज्रबाहु और महारानी वसुन्धरा के पुत्ररूप में जन्मा। उसका नाम वज्रजंघ रखा गया। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब भी वह सारी स्त्रियों से विरक्त रहने लगा।

इधर, स्वयम्प्रभादेवी ललितांग के वियोग से दुःखी रहने लगी। तब उसे दृढ़धर्म नामक देव ने सम्बोधित किया। स्वयम्प्रभा ने भी मेरुपर्वत के सौमनस वन में चैत्यवृक्ष के नीचे बैठ कर अपने प्राणों का परित्याग किया। वह विदेहक्षेत्र के पुण्डरीकिणी नगरी के महाराज वज्रदन्त की श्रीमती नामक पुत्री हुई। उसकी माता का नाम लक्ष्मीमती था।

एकबार श्रीमती सो रही थी। उसीनगर में यशोधर मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। उनकी पूजा करने के लिये देव लोग बड़े वैभव के साथ आये। उस समय उत्पन्न हुए कोलाहल से श्रीमती जाग गयी। देवों को देख कर उसे जातिस्मरण हुआ। पूर्वभव के स्मरण से वह मूर्च्छित हुई। सखियों के द्वारा माता-पिता को बुलवाया गया। उन्होंने आकर योग्य उपचार के द्वारा उसकी मूर्च्छा दूर की। अपनी पुत्री की सुरक्षा के लिये उन्होंने पण्डिता नामक धाय को नियुक्त किया।

राजा वज्रदन्त के समक्ष एकसाथ दो कार्य उपस्थित हुए। एक ओर उसे गुरुपूजा का अवसर प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर चक्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसने सर्वप्रथम केवली भगवान की पूजा कर दिग्विजय किया।

पण्डिता ने युक्तिपूर्वक श्रीमती के मन की बात निकाल ली। उसने जान लिया कि श्रीमती को उसका पूर्वभव स्मरण में आ गया है। वह श्रीमती के पूर्वभव को स्पष्ट करने वाले चित्रपट लेकर मन्दिर में गयी और वहाँ चित्रशाला में उसने चित्रपट फैला दिया। चक्रवर्ती वज्रदन्त दिग्विजय करके पुनः अपनी राजधानी लौट आया।

चौथा पर्व

एकदिन चक्रवर्ती ने अपनी पुत्री को बुलाया और उसे अपना पूर्वभव सुनाया। उस पूर्वभव में उनका और ललितांग का सम्बन्ध भी बताया। अन्त में उन्होंने कहा कि - हे पुत्री ! ललितांग देव स्वर्ग से च्युत होकर वज्रबाहु का पुत्र हुआ है। वह आज यहाँ पहुँच रहा है। मैं उन्हें लेने के लिए जा रहा हूँ।

राजा के चले जाने पर पण्डिता धाय आयी। उसने श्रीमती को बताया कि मैं जिनालय में चित्रपट फैला कर बैठी हुई थी। अनेक लोगों ने उसे देखे। कुछ लोगों ने अनुमान से इस चित्रपट का आशय जान कर रहस्यों को प्रकट करने का असफल प्रयत्न किया। अन्ततः वज्रजंघ वहाँ आया। अपने पूर्वभव के चित्रपट को देख कर उसने समस्त प्रश्नों का यथावत् उत्तर दिया। मैंने उसे तेरा परिचय दिया है। उसने भी तुम्हारे लिये एक चित्र भेजा है। उस चित्र को देख कर श्रीमती को विश्वास हो गया कि वज्रजंघ ही ललितांग का जीव है। वह आश्वस्त हुई।

चक्रवर्ती वज्रदन्त ने राजा वज्रबाहु की आगवानी की। चक्रवर्ती ने वज्रबाहु से कहा- इस घर में तुम्हें जो इष्ट है, वही मुझ से माँग लीजिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। वज्रबाहु ने वज्रजंघ का विवाह श्रीमती के साथ कराने का निवेदन किया।

शुभ मुहूर्त में श्रीमती और वज्रजंघ का विवाह हो गया।

पाँचवाँ पर्व

बहुत दिनों तक वज्रजंघ ससुराल में ही रहा। वहाँ उसने अपरिमित भोग भोगे। उचित समय पर उसने वहाँ से प्रस्थान किया। चक्रवर्ती ने अपने बेटी की विदाई धूमधाम से की।

एकदिन राजा वज्रबाहु को वैराग्य हो गया। उसने यमधर मुनिराज से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। चक्रवर्ती ने एकदिन कमल में मरा हुआ भौंरा देख कर जिनदीक्षा ग्रहण की। उसका राज्य उसके पौत्र पुण्डरीक को प्राप्त हुआ।

वज्रजंघ की बहन अनुन्धरी ने विचार किया कि पुण्डरीक अभी छोटा है वह विशाल राज्य का संचालन कैसे कर सकेगा ? इसलिये उसने सहयोग के लिये अपने भाई को आमन्त्रित किया। बहन के पत्र को पाकर राजा वज्रजंघ बहन को मिलने के लिये चल पड़े।

मार्ग में एक वन में उन्होंने विश्राम किया। वहाँ उसे दमधर और सागरसेन नामक दो मुनियों को आहारदान देने का लाभ प्राप्त हुआ। उस आहार की अनुमोदना नकुल, सिंह, वानर और सूअर ने की। राजा ने चारणऋद्धि के धारक उन दोनों मुनियों से अपने पूर्वभव और नकुलादि के पूर्वभवों को ज्ञान प्राप्त किया।

महाराजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती ने मुनियों को नमस्कार किया और वे यथासमय पुण्डरीकिणी नगरी में जा पहुँचे। उस राज्य को निष्कण्टक बना कर वे पुनः अपने नगर लौट आये।

छठा पर्व

एकबार वज्रजंघ अपनी महारानी श्रीमती के साथ राजभवन में सो रहे थे। कमरे को सुगन्धित करने के लिये तथा केशों का संस्कार करने के लिये सेवकों ने उनके कमरों में धूपघट जलाये रखे थे। उसदिन वे वातायन को खोलना भूल गये। मध्यरात्रि में दोनों की श्वास अवरुद्ध हो गयी और उनका मरण हो गया।

वे उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न हुए। नकुल आदि के जीव भी उसी स्थान पर उत्पन्न हुए। एकबार उन्होंने चारणऋद्धिधारी दो मुनियों के दर्शन किये। मुनिराज के मुखारविन्द से सम्यग्दर्शन का उपदेश सुन कर उन सभी जीवों ने सम्यग्दर्शन को ग्रहण किया। तीन पल्यप्रमाण आयु का उपभोग कर वे स्वर्गगामी हो गये। वज्रजंघ का जीव ऐशान स्वर्ग में श्रीधर नामक देव हुआ। श्रीमती के जीव ने स्त्रीपर्याय

को छेद कर ऐशान स्वर्ग में ही देवपर्याय धारण की। नकुलादि के जीवों ने भी वहीं पर उत्तम अवस्था प्राप्त की।

एकदिन श्रीधर प्रीतिंकर केवली की वन्दना करने के लिये गया। वहाँ उसने धर्मोपदेश सुना व केवली भगवान से अनेक प्रश्न किये। केवली के उपदेश से उसने अपने परिणामों में प्रशस्तता लायी।

यथासमय श्रीधर देव स्वर्ग से च्युत होकर सुसीमा नगरी के राजा सुदृष्टि और महारानी सुन्दरनन्दा के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। उसका नाम सुविधि रखा गया। उसने चक्रवर्ती अभयघोष की कन्या मनोरमा से विवाह किया। श्रीमती व नकुलादि के जीवों ने राजपरिवारों में जन्म लिया।

एकबार अभयघोष चक्रवर्ती ने विमलवाहन जिनेन्द्र के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली। उसके साथ अनेक राजाओं ने दीक्षा ली। पुत्रस्नेह में सुविधि ने दीक्षा नहीं ली। वह श्रावकपद धारण कर साधना करने लगा। उसने अन्त में निर्ग्रन्थ अवस्था धारण कर संन्यासमरण किया, जिससे वह सोलहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। अन्य राजपुत्र भी अपने-अपने परिणाम के अनुसार स्वर्गसुखों को प्राप्त हुए।

स्वर्ग से चय कर सुविधि का जीव पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता का वज्रनाभि नामक पुत्र हुआ। उसने चक्ररत्न को प्राप्त कर दीर्घकाल तक सुखोपभोग किया।

अन्त में, वज्रनाभि चक्रवर्ती ने वज्रसेन तीर्थंकर के समीप जिनदीक्षा धारण कर षोडशकारण भावनाओं का चिन्तन करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। आयु के अन्त में वज्रनाभि मुनिराज ने सल्लेखनापूर्वक वीरमरण किया। अपने द्वारा किये हुए तप का फल भोगने के लिये वे सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुए।

सातवाँ पर्व

सौधर्म इन्द्र ने अपने ज्ञान के द्वारा यह जान लिया कि भगवान आदिनाथ का जन्म अयोध्या नगरी में होगा। अतः वह नगर की रचना

करने के लिये आया। उसने महाराजा नाभिराय और महारानी मरुदेवी के आँगन में रत्नवर्षा की। एकबार महारानी मरुदेवी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखें और तीर्थंकर बालक को गर्भ में धारण किया। नौ माह पूर्ण होने पर बालक का जन्म हुआ। जिस दिन तीर्थंकर प्रभु ने जन्म लिया वह चैत्र कृष्णा नवमी का दिन था। उस समय उत्तराषाढ़ा नक्षत्र उदित था तो ब्रह्म नाम का सुयोग चल रहा था।

भगवान के जन्म को जान कर देव लोग धरती पर आये। सौधर्म इन्द्र ने भगवान को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर अभिषेक किया। भगवान को लेकर इन्द्र पुनः अयोध्या आया। वहाँ भगवान की सेवा के लिये देवकुमारों को नियुक्त कर वह अपने स्थान चला गया। भगवान आदिनाथ की आयु चौरासी लाख पूर्व की थी। उनका विवाह यशस्वतीऔर सुनन्दा नामक दो विद्याधर-कन्याओं के साथ हुआ। भगवान आदिनाथ को यशस्वती से सौ पुत्र और एक पुत्री तथा सुनन्दा से एक पुत्र और एक पुत्री प्राप्त हुई। उन्होंने उन सभी को यथायोग्य शिक्षा प्रदान की। तदुपरान्त उन्होंने प्रजा को जीवित रहने के लिये षट्कर्मों का उपदेश दिया और कार्यानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और शुद्र इन वर्णों की व्यवस्था बनायी। एकदिन निलांजना नामक अप्सरा की नृत्य करते-करते ही मृत्यु हो गयी। उसे देख कर उन्होंने संसार की असारता जान कर अपना राज्य भरत को सौंप कर तथा अन्य पुत्रों को विविध स्थानों का राजा बना कर जिनदीक्षा धारण कर ली। उनके साथ चार हजार राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान तो छह माह का उपवास करके ध्यान मग्न हो गये, किन्तु वे सब परीषहों की मार को सहन न कर सके। इसीलिये वे भ्रष्ट हो गये। भगवान के पौत्र मारिचिकुमार ने तीन सौ तिरेसठ मिथ्यामतों का प्रवर्त्तन किया।

एक दिन नमि और विनमि भगवान के चरणों में आये और विविध प्रकार की याचना करने लगे। तब धरणेन्द्र ने आकर उन्हें विजयार्द्ध पर्वत का अधिपति बनाया।

आठवाँ पर्व

भगवान ने छह माह तक घोर तप किया। एकदिन उन्होंने विचार किया कि यतियों को आहारविधि बताने के लिये, उनके शरीर की स्थिति को कायम रखने के लिये और निर्दोष आहार की गवेषणा के लिये मुझे आहारविधि करनी चाहिये। ऐसा विचार कर वे आहार को निकले, किन्तु अनेक दिनों तक आहार नहीं मिला। अन्त में राजा श्रेयांस ने उन्हें विधिवत् आहार दिया। उस दिन से अक्षय तृतीया नामक पर्व प्रचलित हुआ। देवों ने व चक्रवर्ती ने श्रेयांस की बहुत प्रशंसा की।

ध्यानतत्पर भगवान आदिनाथ पुरीमताल नगर के शकट उद्यान में विराजमान थे। वहाँ उन्होंने घातिया कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। वह फाल्गुन माह की कृष्णपक्षीय एकादशी थी। देवों ने समवशरण की रचना की। उसी दिन भरत को चक्ररत्न की और पुत्ररत्न की भी प्राप्ति हुई। उसने पहले जिनेन्द्र भगवान की पूजन की, तदुपरान्त पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मना कर चक्ररत्न को स्वीकार किया।

इधर ऋषभसेन, ब्राह्मी, सुन्दरी और श्रेयांस आदि ने भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण की।

भरत चक्ररत्न को प्राप्त कर चारों दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिये निकल पड़ा।

नौवाँ पर्व

चक्रवर्ती भरत विविध देशों और दिशाओं को जीतता हुआ वृषभाचल पर्वत के समीप जा पहुँचा। वहाँ उसने अपनी प्रशस्ति लिखनी चाही। किन्तु, वहाँ अनेक चक्रवर्तियों की सूची देख कर उसका मान गलित हो गया। उसने किसी चक्रवर्ती का नाम मिटा कर अपनी प्रशस्ति लिखी।

पुनः वह शेष भरत खण्ड पर विजय प्राप्त करने के लिये निकल पड़ा। षट्खण्डों को जीत कर भरत चक्रवर्ती भगवान की पूजन करने गया। तदुपरान्त उसने अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। अयोध्या के

द्वार पर चक्ररत्न रुक गया। भरत को निमित्तज्ञों से ज्ञात हुआ कि उसके भाई उसके वशवर्ती नहीं होने से उसकी दिग्विजय-यात्रा अपूर्ण है। जब तक वह पूर्ण नहीं होगी, तब तक चक्ररत्न नगरप्रवेश नहीं करेगा।

चक्रवर्ती भरत ने बाहुबली को छोड़ कर शेष भाइयों के पास दूतों को भेजा। उन्होंने चक्रवर्ती की आधीनता को स्वीकार करने की अपेक्षा दुर्द्धर तप की आधीनता को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर समझा। वे भगवान आदिनाथ के श्रीचरणों में जाकर दीक्षित हो गये। अन्त में दूत पोदनपुर के महाराजा बाहुबली के पास भी पहुँचा। बाहुबली दूत के वचनों को सुन कर भरत के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये।

दसवाँ पर्व

दोनों सेनायें आमने-सामने आ गयी। चक्रवर्ती भरत और कामदेव बाहुबली तो चरमशरीरी थे। युद्ध में उनकी हानि तो होनी ही नहीं थी। सेना को व्यर्थ में ही क्यों हानि पहुँचायी जाये ? यह सोच कर दोनों पक्ष के मन्त्रियों ने दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध का आयोजन किया। तीनों में ही बाहुबली विजयी हुए।

अपने पराजय से क्रोधित हुए भरत ने बाहुबली पर चक्र चलाया। चक्र ने बाहुबली को क्षति नहीं पहुँचायी, किन्तु इस घटना से बाहुबली को वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र महाबली को राज्य देकर परम दिगम्बरी जिनदीक्षा ग्रहण की। घोर तप करके बाहुबली को एक वर्ष के उपरान्त केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

साठ हजार वर्षों तक दिग्विजय करने के उपरान्त चक्रवर्ती पुनः नगर में लौट आया। एकदिन भरत ने विचार किया कि मैं किसे दान दूं? सत्पात्र का अन्वेषण किसप्रकार करूँ ? उसने व्रतियों के समूह को एकत्र किया और ब्राह्मणवर्ण की स्थापना की।

एकदिन रात्रिकाल में भरत ने सोलह स्वप्न देखें। वह भगवान के श्रीचरणों में गया। वहाँ उसने वर्णोत्पत्ति का व स्पप्नों का फल जाना। नगर में आकर उसने अनिष्ट फलों की शान्ति के लिये जिनपूजन व

सत्पात्रदानरूप पुण्यकार्य किये।

अनेक स्थानों पर धर्मोपदेश देकर भगवान कैलासपर्वत पर आये। उन्होंने योगनिरोध किया। इस सूचना को प्राप्त कर भरत प्रभु के चरणों में गया। वहाँ उसने महामह पूजा की। भगवान के निर्वाणगमनोपरान्त शोकसन्तप्त भरत को गणधरदेव ने सदुपदेश दिया।

एकदिन दर्पण में अपने मुख को देखते हुए चक्रवर्ती ने सफेद बाल को देखा और वह विरक्त हुआ। दीक्षा लेकर उसने कैवल्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। अन्त में ग्रन्थकार ने मंगल कामना करते हुए ग्रन्थ का उपसंहार किया है।

श्रीपुराण में वर्णित चौदह कुलकर

भोगभूमिज जीवों को जीवन जीने की पद्धति बताने वाले महापुरुषों को मनु कहते हैं। कुलों को धारण करने वाले होने से उन्हें कुलधर कहा जाता है। वे कुलों के करने में कुशल होते हैं। अतः उन्हें कुलकर भी कहते हैं। जैनागमानुसार कुलकर चौदह होते हैं।

सभी कुलकर पूर्वभव में विदेहक्षेत्रस्थ राजकुमार होते हैं। जिनेन्द्र भगवान के चरणयुगल में क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेने से पूर्व वे दानादि से अर्जित पुण्य के साथ मिथ्यात्वभावना से भोगभूमि का बन्ध करते हैं। कुछ कुलकर अवधिज्ञानी होते हैं और कुछ जातिस्मरण नामक श्रुतज्ञान से सम्पन्न होते हैं।

१. प्रतिश्रुति कुलकर ने सूर्य-चन्द्रमा के उदय और अस्त के विषय में बताया। इनकी आयु पल्य का दसवाँ भाग वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना अठारह सौ धनुष की थी।

२. सन्मति कुलकर ने सूर्य, चन्द्रमा और तारों के गमन के विषय में ज्ञान कराया। इनकी आयु अमम वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना तेरह सौ धनुष की थी।

३. क्षेमंकर कुलकर ने उससमय पशुओं में जो स्वाभाविकरूप से क्रूरता उत्पन्न हुई थी उसके विषय में लोगों को प्रतिबोधित किया। उनके उपदेश को प्राप्त कर लोगों ने पशुओं से दूर रहना प्रारम्भ किया।

इनकी आयु अटट वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना आठ सौ धनुष की थी।

४. क्षेमन्धर कुलकर ने दु स्वभाव वाले पशुओं को मानव समाज से अलग करके मानवों की रक्षा की। इनकी आयु त्रुटित वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना सात सौ पचहत्तर धनुष की थी।

५. सीमंकर कुलकर ने कल्पवृक्षों की कमी होने पर जो संघर्ष होने लगा था। संघर्ष का निवारण करने के लिये सीमंकर कुलकर ने क्षेत्रीय सीमायें स्थापित कर दी। इनकी आयु कमल वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना सात सौ पचास धनुष की थी।

६. सीमंधर कुलकर ने सीमंकर कुलकर के द्धारा निर्दिष्ट सीमाव्यवस्था को सुचारुरूप से चलाया। इनकी आयु नलिन वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना सात सौ पच्चीस धनुष की थी।

७. विमलवाहन कुलकर ने पशुओं पर सवारी करने की विद्या सिखायी। इनकी आयु पद्म वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना सात सौ धनुष की थी।

८. चक्षुष्मान कुलकर से पूर्व माता-पिता पुत्र का मुख नहीं देख सकते थे। उनके काल में आर्यजन सन्तान को देख कर अचम्भा करने लगे। कुलकर ने उनका डर दूर किया। इनकी आयु पद्मांग वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना छह सौ पचहत्तर धनुष की थी।

९. यशस्वान कुलकर ने पुत्र का मुख देखने पर उत्सव मनाने का उपदेश दिया। इनकी आयु कुमुद वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना छह सौ पचास धनुष की थी।

१०. अभिचन्द्र कुलकर ने बालकों के साथ क्रीड़ा करने व उनके नामकरण की विधि सिखायी। इनकी आयु कुमुदांग वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना छह सौ पच्चीस धनुष की थी।

११. चन्द्राभ कुलकर ने सन्तान के जीवित रहने पर उसके साथ पारिवारिक जीवन जीने की कला अवगत करायी। इनकी आयु नयुत वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना छह सौ धनुष की थी।

१२. मरुदेव ने आजीविका का चिन्तन करने व नौका आदि के द्धारा जलतरण की शिक्षा दी। उन्होंने पर्वत पर आरोहण करने की शिक्षा भी प्रदान की। उनकी आयु नयुतांग वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना पाँच सौ पचहत्तर धनुष की थी।

१३. प्रसेनजित ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का मार्ग सुझाया तथा शिशुओं के शरीर पर होने वाले जेररूपी मल के शोधन की बात बताई। इनकी आयु पूर्व वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना पाँच सौ पचास धनुष की थी।

१४. नाभिराज ने शिशुओं की नाभि का नाल काटने की विधि बताई। इनकी आयु पूर्वकोटि वर्षप्रमाण थी तथा उनकी अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष की थी।

श्रीपुराण में वर्णित आदिनाथभवावलि

श्रीपुराण में भगवान आदिनाथ के दस भवों का वर्णन हुआ है। उनका विवरण इसप्रकार है-

१. मेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में गन्धिल नामका देश है। उसके सिंहपुर नगर में राजा श्रीषेण व महारानी सुन्दरी के कुक्षी से उत्पन्न जयवर्मा स्वयं पात्र होते हुए भी अपने छोटे भाई श्रीवर्मा को राज्यश्री का लाभ हुआ देख कर विरक्त होकर स्वयम्प्रभ गुरु की सन्निधि में मुनि हो गया। उसने विद्याधर की विभूति देख कर विद्याधर बनने का निदान किया तथा सर्पदंश के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

२. मेरुपर्वत की पश्चिमदिशा में स्थित विदेह क्षेत्र में गन्धिल नामक देश है। उसके मध्यभाग में विजयार्द्ध पर्वत सुशोभित है। उस पर्वत की उत्तरश्रेणि में अलकापुर नामक नगरी है। उस नगरी पर अतिबल विद्याधर का शासन था। उसकी महारानी मनोहरा से महाबल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। स्वयम्बुद्ध मन्त्री के द्धारा प्रबोधित किये जाने पर राजा महाबल ने अष्टाह्निका पर्व में महापूजा की तथा बाईस दिनों तक सल्लेखनाविधि का अनुष्ठान किया। जीवनान्त में धर्मध्यानपूर्वक प्राणों का त्याग कर राजा महाबल स्वर्ग में देव हुआ।

३. महाबल राजा ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में उत्पन्न हुआ था। वहाँ उसकी आयु कुछ अधिक एक सागर की थी। उसके शरीर की कान्ति तपाये हुए सोने की तरह थी। वह एक हजार वर्ष के बाद आहार लेता था तथा पन्द्रह दिनों के बाद श्वासोच्छ्वास लेता था। वह कायप्रवीचार के द्वारा सुखों का अनुभव करता था।

४. जम्बूद्वीपस्थ सुमेरुपर्वत की पूर्व दिशासम्बन्धी विदेहक्षेत्र के पुष्कलावती देश की राजधानी उत्पलखेट नगरी के राजा वज्रबाहु और उनकी रानी वसुन्धरा के वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ। वज्रजंघ पराक्रमी और धैर्यवान था। वज्रजंघ का विवाह श्रीमती के साथ हुआ। दोनों ने चिरकाल तक सुखोपभोग किया। एकबार शयनकक्ष में सुगन्धित धूप के धूम से कण्ठावरुद्ध हो जाने के कारण वज्रजंघ और उसकी पत्नी श्रीमती का देहावसान हो जाता है। उन दोनों ने मुनिराज को आहारदान दिया था, उसके फलस्वरूप वे भोगभूमि में आर्यदम्पती हुए।

५. भोगभूमि में उत्पन्न हुए उस आर्यदम्पती ने अपने पूर्वकृत पुण्य का उपभोग किया। एकबार वे कल्पवृक्ष के नीचे बैठे थे। वहाँ उन्हें प्रीतिंकर नामक मुनिराज के दर्शन हुए। उन चारणऋद्धिधारक मुनिराज के उपदेश को श्रवण कर दोनों ने सम्यग्दर्शन को धारण किया। वहाँ से चय कर वह आर्य श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नामक देव हुआ। उनकी पत्नी आर्या भी स्त्रीलिंग का छेदन कर स्वयम्प्रभ विमान में स्वयम्प्रभ नामक देव हुई।

६. एकबार श्रीधर देव ने प्रीतिंकर मुनि से अपने पूर्वभव में उसके जो स्वयम्बुद्ध को छोड़ कर तीन मन्त्री थे उनके वर्तमान भव के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। दूसरे नरक में जाकर शतमति के जीव को उसने सम्यग्दर्शन धारण कराया।

७. सुसीमा नगर के राजा सुदृष्टि और उनकी रानी सुनन्दा के कुक्षी से श्रीधरदेव ने जन्म लिया। उसका नाम सुविधि रखा गया। सुविधि अभयघोष चक्रवर्ती का भानेज था। इसीलिये उसने चक्रवर्ती की पुत्री मनोरमा के साथ विवाह कर चिरकाल तक राज्यसुख का उपभोग

किया। अन्त में तप कर उसने अच्युत स्वर्ग में जन्म लिया।

८. अच्युतेन्द्रिय का बाईस सागर का समय आनन्दसहित व्यतीत हुआ। तदनन्तर वह वहाँ से चय कर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ।

९. जम्बूद्वीपस्थ पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन और उनकी रानी श्रीकान्ता का पुत्र वज्रनाभि था। यथासमय उसने चक्ररत्न को प्राप्त करके छहों खण्डों पर विजय पायी। किसी निमित्त को पाकर चक्रवर्ती को वैराग्य होता है। वह मुनिव्रत धारण कर उग्र तप करता है। सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन कर मुनिराज वज्रनाभि को तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है। आयु के अन्त में उत्कृष्ट सल्लेखना का अनुष्ठान कर वे मुनिराज सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त होते हैं।

१०. सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए वज्रनाभि की आयु तैंतीस सागर की थी। इतना लम्बा समय उसने तत्त्वचर्चा आदि धर्मकार्य में व्यतीत किया।

११. सर्वार्थसिद्धि से चय कर वह देव अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजा के घर माँ मरुदेवी की कुक्षी से आदिनाथ नामक तीर्थंकर के रूप में अवतीर्ण हुए। इस भव में उन्होंने असि, मषि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मों का उपदेश दिया। तदुपरान्त दीक्षा लेकर उन्होंने घोर तप किया। केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया।

श्रीपुराण में वर्णित चक्रवर्ती भरत के सोलह स्वप्न

एकदिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में चक्रवर्ती भरत ने सोलह स्वप्न देखे। वे कलियुग में होने वाली घटनाओं के सूचक थे। चक्रवर्ती भरत ने भगवान आदिनाथ से उन स्वप्नों का फल पूछा। भगवान आदिनाथ ने उन स्वप्नों का क्रम से यह फल बताया –

१. एकाकी विहाररत तेईस सिंह = भगवान महावीर से पूर्व होने वाले तेईस तीर्थंकरों के काल में दुर्नयों की उत्पत्ति नहीं होगी।

२. सिंहशावक के पीछे चलने वाला मृगसमूह = भगवान महावीर के तीर्थ में सपरिग्रही अनेक प्रकार के कुलिंगी होंगे।

३. अत्यधिक भार से झूकी हुई कमर वाले घोड़े = दुःषमा काल में साधुगण तपोगुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।

४. शुष्क पत्रभक्षी बकरों का समूह = पंचमकाल में मनुष्य सदाचार को छोड़ कर दुराचारी हो जायेंगे।

५. हाथी के कन्धे पर बन्दर = मनुष्य सद्धर्म को प्राप्त करने की इच्छा से जैनमुनियों को छोड़ कर अन्य मतावलम्बी साधुओं के पास जायेंगे।

६. नृत्यरत भूत = सामान्य जनता नामकर्म आदि के कारण से व्यन्तरों को देव समझ कर उनकी पूजा करने लगेगी।

७. कौओं के द्वारा पिड़ित उलुक = प्राचीन प्रसिद्ध क्षत्रियवंश नष्ट हो जायेंगे तथा नीचकुलीन लोग पृथ्वी पर राज्य करेंगे।

८. मध्यभाग शुष्क और प्रान्तभाग में पानी से भरा हुआ तालाब = आर्यखण्ड से धर्म हट कर प्रत्यन्तवासी म्लेच्छखण्डों में रह जायेगा।

९. धूली से मलिन हुई रत्नराशि = पंचमकाल में ऋद्धियों को धारण करने वाले मुनिराज नहीं होंगे।

१०. कुत्ते द्वारा नैवेद्य खाना = गुणी पात्रों के समान ही अव्रती लोग सत्कार को प्राप्त करेंगे।

११. नाद करता हुआ तरुण वृषभ = पंचमकाल में साधक युवावस्था में ही जिनदीक्षा धारण करेंगे।

१२. परिमण्डल से घिरा हुआ चन्द्रमा = पंचमकालीन मुनियों को अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा।

१३. साथ में गमन करने वाले दो वृषभ = पंचमकाल में मुनिगण परस्पर साहचर्य से विहार करेंगे, एकाकी नहीं।

१४. मेघों के आवरण से अवरुद्ध हुआ सूर्य = पंचमकाल में केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय नहीं होगा।

१५. सूखा हुआ वृक्ष= स्त्री-पुरुष चारित्र से च्युत हो जायेंगे।

१६. जीर्ण पत्ते = महा-औषधियों का रस न हो जायेगा।

श्रीपुराण में सूक्तियाँ

सूक्तियाँ मन को सम्बोधित करने वाली उत्कृष्ट माध्यम है। श्रीपुराण में सूक्तियों का प्रयोग अत्यधिक प्रमाण में हुआ है। उनमें से कुछ सूक्तियाँ यहाँ संकलित है।

विशुद्धपरिणामेन भक्तिः किं न फलिष्यति।।३/४१।।

अर्थात् - विशुद्ध परिणामों से युक्त होकर की गई भक्ति क्या फलवती नहीं होती है ? अर्थात् अवश्य ही फलती है।

विधिर्घटयतीार्थमानीयान्वीपतां गतः।।४/१०५।।

अर्थात् - अनुकूलता को प्राप्त हुआ दैव अभिलषित वस्तु की प्राप्ति कर देता है।

पुण्यैः किन्नु दुरासदम्।।६/३७।।

अर्थात् - पुण्य से क्या दुर्लभ है ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

वपुरारोग्यमैश्वर्यं यौवनं सुखसम्पदः।
वस्तुवाहनमन्यच्च सुरचापवदस्थिरम्।।५/१७।।

अर्थात् - शरीर, आरोग्य, ऐश्वर्य, यौवन, सुखसम्पदा, घर और वाहन आदि सब इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं।

तपो हि फलतीप्सितम्।।६/११।।

अर्थात् - तप सब के अभीष्ट फलों को फलता ही है।

पुण्यैः किन्नु दुरासदम्।।६/३७।।

अर्थात् - पुण्य से क्या दुर्लभ है ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

पुत्रमात्रं च सम्प्रीत्यै किमुतेऽष्टाङ्गनाचरः।।६/६१।।

अर्थात् - जब पुत्रमात्र प्रीति के लिये होता है, तब वह स्त्री का जीव हो तो फिर क्या कहना।

भुक्त्वापि सुचिरं कालं यैर्न तृप्तिः क्लमः परम्।
विषयैस्तैरलं भुक्तैर्विषमिश्रैरिवाशनैः।।९/८३।।

अर्थात् - चिरकाल तक भोगने पर भी जिनसे तृप्ति नहीं होती, प्रत्युत अतिशय परिश्रम ही होता है - ऐसे विषमिश्रित भोजन के समान इन विषयों का सेवन करना व्यर्थ है।।८३।।

इत विदितसमर्थाः किं परं प्रार्थयन्ते।।१०/९५।।

अर्थात् - पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को समझने वाले पुरुष (संयम के सिवाय) अन्य

किसी पदार्थ की प्रार्थना नहीं करते।

श्रीपुराण मे वर्णित व्रतों की विधि

श्रीपुराण प्रथमानुयोग का ग्रन्थ है। कथानक के पात्रों में कुछ तपस्वी भी हैं। उन तपस्वियों ने जिन व्रतों का आचरण किया था, इस ग्रन्थ में उनका नाममात्र दिया गया है।

आगमान्तर में इनकी विधि इसप्रकार लिखी हुई है -

१ - जिनगुणसम्पत्ति व्रत

कल्याणातिविशेषैः प्रतिकार्यैः प्रातिहार्यकारणगः।
जिनगुणसम्पत्तिस्तैः पञ्चचतुस्त्रिंशदष्टषोडशभिः।।

(हरिवंशपुराण = ३४/१२२)

अर्थात् - जिसमें पाँच कल्याणकों के पाँच, चौतीस अतिशयों के चौतीस, आठ प्रातिहार्यों के आठ और सोलहकारण भावनाओं के सोलह इसप्रकार त्रेसठ उपवास किये जाते हैं उसे जिनगुणसम्पत्ति व्रत कहते हैं।

२ - श्रुतज्ञान व्रत

अष्टाविंशतिरिसाधनमतौ चैकादशाङ्गेषु ते।
द्वावौ परिकर्मणोऽसहिताशीतिस्तु सूत्रस्य हि।।
एकौ चाद्यनुयोगकेवलकृतौ द्विःसप्तपूर्वेष्वमी।
षट्पञ्चावधिचूलिके श्रुतविधौ द्वौ तौ मनःपर्यये।।

(हरिवंशपुराण = ३४/९७)

अर्थात् - श्रुतविधि उपवास में मतिज्ञान के अट्ठाईस, ग्यारह अंगों के ग्यारह, परिकर्म के दो, सूत्र के अठासी, प्रथमानुयोग और केवलज्ञान का एक-एक, चौदह पूर्वों के चौदह, अवधिज्ञान के छह, चूलिका के पाँच और मनःपर्ययज्ञान के दो इसप्रकार एक सौ अट्ठावन उपवास करने पड़ते हैं।

३ - सर्वतोभद्र व्रत =

एकादिषूपवासेषु पञ्चान्तेषु यथाक्रमम्।
अन्तयोः कृतयोरादौ शेषभङ्गसमुद्भवे।।

कल्पितश्चतुरस्रोऽयं प्रस्तारः पञ्चभङ्गकः।
सर्वतोऽप्युपवासाश्च गण्याः पञ्चदशात्र हि।।
पञ्चभिर्गुणितास्ते स्युः संख्यया पञ्चविंशतिः।
ताडिताः पञ्चभिः पञ्च पारणाः पञ्चविंशतिः।।
सर्वतोभद्रनामायमुपवासविधिः कृतः।
विधत्ते सर्वतोभद्रं निर्वाणाभ्युदयोदयम्।।

(हरिवंशपुराण = ३४/५२ से ५५)

अर्थात् - पाँच भंग का एक चौकोर प्रस्तार बनावे और एक से लेकर पाँच तक के अंक उसमें इसतरह भरे कि सब ओर से गिनने पर पन्द्रह-पन्द्रह उपवासों की संख्या निकल आवे। इन पन्द्रह उपवासों में पाँच भंगों का गुणा करने से उपवासों की संख्या पचहत्तर और पाँच पारणाओं में पाँच भंगों का गुणा करने से पारणाओं की संख्या पच्चीस निकलती है। यह सर्वतोभद्र व्रत की विधि है।

इसका तात्पर्य यह है कि एक उपवास एक पारणा, दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास एक पारणा और पाँच उपवास एक पारणा इस क्रम से यह व्रत सौ दिन में पूर्ण होता है। सौ दिनों में पचहत्तर उपवास और पच्चीस पारणायें होती हैं। यह व्रत निर्वाण के सुख और स्वर्ग के अभ्युदय को प्रदान करने वाला है।

४ - सिंहनिष्क्रीडित व्रत =

द्वौ द्वौ चैकादयः शस्ताः पञ्चपर्यवसानकाः।
हीने ह्युभयतः षष्टिः सिंहनिष्क्रीडिते विधौ।।
त एक चापर्यन्ता नवं च शिखराः पुनः।
मध्यमेऽप्युपवासाः स्युस्त्रिपञ्चाशं शतं स्फुटम्।।
पूर्वे पञ्चदशान्तास्तु शिखरे षोडशाधिकाः।
उत्कृष्टे तत्र ते वेद्याः षण्णवत्या चतुःशती।।

(हरिवंशपुराण = ३४/७८ से ८०)

अर्थात् - जघन्य सिंहनिष्क्रीडित व्रत में एक से पाँच तक के अंकों को दो-दो की संख्या में लिखें और उसके बाद उलटे क्रम से पाँच से एक

तक के अंक दो-दो की संख्या में लिखें। दोनों ओर के सब अंकों के जोड़ देने पर साठ उपवास और बीस पारणायें होती हैं।

मध्यम सिंहनिष्क्रीडित व्रत में एक से लेकर आठ तक के अंक को दो-दो की संख्या में लिखें और उनके ऊपर शिखरस्थान पर नौ का अंक लिखें। पुनः विपरीत क्रम से आठ से एक तक के अंकों को दो-दो की संख्या में लिखें। सब अंकों का जोड़ करने पर एक सौ त्रेपन उपवास और तैंतीस पारणायें होती हैं।

उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित व्रत में एक से लेकर पन्द्रह तक के अंक को दो-दो की संख्या में लिखें और उनके ऊपर शिखरस्थान पर सोलह का अंक लिखें। पुनः विपरीत क्रम से पन्द्रह से एक तक के अंकों को दो-दो की संख्या में लिखें। सब अंकों का जोड़ करने पर चार सौ छियानवें उपवास और इकसठ पारणायें होती हैं।

५ - कनकावली व्रत =

एको द्वौ च नव त्रिकाण्यपि ततश्चैकादिभिः षोडश,
प्राज्ञैस्ते गणिताश्चतुस्त्रिकयुतं त्रिंशत्त्रिकाण्येव तु।
रूपान्तान्यपि षोडशप्रभृतयो रन्ध्रं त्रिकं द्व्येककं,
यत्रैषा कनकावली प्रकुरुते लौकान्तिकत्वं फलम्।।
द्विघ्ने सङ्कलिते हि षोडशगते त्रिघ्नात्मकोच्चेश्चतुः,
पञ्चाशत् त्रिकयोज्ययोजितचतुःशत्याश्चतुस्त्रिंशता।
द्विघ्नैकादश षोडशान्वितचतुस्त्रिंशद्दिनैः साशनै-
र्वर्षं द्वादशवासरैरभिहताः पञ्चैह मासा विधौ।।

(हरिवंशपुराण = ३४/७४ से ७५)

अर्थात् - जिसमें एक का अंक, दो का अंक, नौ बार तीन का अंक, फिर एक से लेकर सोलह तक के अंक, नौ बार तीन के अंक फिर चौतीस बार तीन के अंक, सोलह से लेकर एक तक के अंक, नौ बार तीन के अंक तथा दो और एक का अंक लिखना चाहिये। इस क्रम से चार सौ चौंतीस उपवास और अठासी पारणायें की जावें वह कनकावली व्रत है। लौकान्तिक देव के पद की प्राप्ति होना अथवा संसार का अन्त कर

मोक्ष प्राप्त करना इस उपवास का फल है।

इस व्रत के उपवासों की गणना निकालने की दूसरी विधि यह है कि एक से लेकर सोलह तक की संख्या को दो बार लिखें। उसे आपसे में जोड़ देने पर जितनी संख्या हो उसमें चौवन के तिगुने (एक सौ बासठ) मिला दें। ऐसा करने से चार सौ चौंतीस उपवास निकलते हैं और अठासी स्थान होने से अठासी पारणायें हो जाती हैं। इस विधि को पूर्ण करने में एक वर्ष, पाँच माह और बारह दिन लगते हैं।

६ - आचाम्लवर्द्धन व्रत =

आचाम्लवर्द्धमाने भवन्ति सौवीरभुक्तयस्त्वेकाद्याः।
सोपोषिता दशान्ता दशादयश्चापि रूपान्ताः।।
निर्विकृतिं पूर्वार्द्धः सैकस्थानस्तु पश्चिमार्द्धश्च।
आचाम्लवर्द्धमानाः क्रमेण विधयो विधेयास्ते।।

(हरिवंशपुराण = ३४/९५ से ९६)

अर्थात् - आचाम्लवर्द्धन नामक व्रत में पहले दिन उपवास करना चाहिये। दूसरे दिन एक बेर के बराबर भोजन करना चाहिये। तीसरे दिन दो बेर के बराबर, चौथे दिन तीन बेर के बराबर इसप्रकार एक-एक बेर बराबर भोजन बढ़ाते हुए ग्यारहवें दिन दस बेर के बराबर भोजन करना चाहिये। फिर दस को आदि करके एक-एक बेर बराबर भोजन को कम करते हुए एक बेर बराबर भोजन तक ले आना चाहिये और अन्तिम दिन उपवास करना चाहिये।

इस व्रत के पूर्वार्द्ध के दस दिनों में नीरस भोजन लेना चाहिये। उत्तरार्द्ध के दस दिनों में एक बार परोसा हुआ भोजन करना चाहिये।

७ - रत्नावली व्रत =

रूपान्तराः पञ्चदशावसाना रूपान्तराः षोडश यत्र चाग्रे।
रूपोनकास्तत्परमन्तरूपाः मुक्तावलीयं खलु रत्नपूर्वा।।
द्विशत्यशीतिश्चतुरुत्तराः स्युरत्रोपवासाः परिगण्यमानाः।
एकोनषष्टिश्च हि भुक्तकालाः फलं तु रत्नत्रयसारलब्धिः।।

(हरिवंशपुराण = ३४/७२-७३)

अर्थात् – एक ऐसा प्रस्तार बनाया जावें कि जिसमें एक-एक का अन्तर देते हुए एक से लेकर पन्द्रह तक के अंक लिखें। उसके आगे एक-एक का अन्तर देते हुए सोलह लिखे जावें। उसके आगे एक-एक का अन्तर देकर एक-एक कम कर अन्त में एक आ जावे वहाँ तक लिखें। इसमें प्रारम्भ में प्रथम अंक से दूसरा अंक लिखते समय बीच में पुनरुक्त होने के कारण एक का अन्तर नहीं देवें। इस व्रत में सब अंकों के जोड़ने पर दो सौ चौरासी उपवास और उनसठ पारणायें होती हैं। इस उपवास में तीन सौ तैंतालीस दिन लगते हैं। इसका फल रत्नत्रय की प्राप्ति है।

इसकी दूसरे प्रकार से विधि निम्नांकित है-

एकद्वित्रिचतुर्द्विकानि सहितैस्ते षोडशैकादिभि-
विज्ञेयानि सितं चतुर्द्विकयुतं त्रिंशद्द्विकान्यादरात्।
एकान्ता खलु षोडशादय इह ह्यष्टौ द्विकान्येव तु।
त्रिद्व्येकोऽपि च यत्र ते प्रकथिता रत्नावलीयं परा।।
षट्पञ्चाशद्द्विकोत्थे द्विकपरिगुणिते मिश्रिते षोडशोत्थ-
द्वासप्तत्या द्विशत्याशनिरसनगणो गण्यते मिश्रितेऽस्मिन्।
अष्टाशीत्या समाहैरिह भवति विधाकालसंख्याप्यहोभि-
र्द्वाविंशत्या त्रिरत्नद्युतिकृतिसुकृते वर्षमेकं त्रिमास्या।।

(हरिवंशपुराण = ३४/७६-७७)

अर्थात् – रत्नों के हार के समान एक प्रस्तार बना कर बायीं ओर पहले बेला का सूचक दो बिन्दुओं का एक द्विक लिखें। फिर दो बेलाओं का सूचक दो बिन्दु लिखें। फिर तीन बेलाओं का सूचक तीन बिन्दु लिखें। फिर चार बेलाओं का सूचक चार बिन्दु लिखें। उसके बाद एक उपवास का सूचक एक बिन्दु लिखें। फिर दो उपवासों के सूचक दो बिन्दुयें बराबरी पर लिखें। तदनन्तर तीन आदि उपवासों की सूचक सोलह तक बिन्दुयें रखें। फिर वे बायीं ओर से दाहिनी ओर गोलाकार बढ़ते हुए बत्तीस बेलाओं के बत्तीस द्विक लिखें और उनके नीचे चार बेलाओं के सूचक चार द्विक लिखें। तीस द्विक के ऊपर सोलह आदि उपवासों

के सूचक सोलह से लेकर एक तक बराबरी पर सोलह-पन्द्रह आदि बिन्दुयें रखें। उसके आगे आठ बेलाओं के सूचक आठ द्विक, तीन बेलाओं के सूचक तीन द्विक, दो बेलाओं के सूचक दो द्विक और एक बेला का सूचक एक द्विक लिखें।

इस व्रत में छप्पन द्विक के द्विगुणित एक सौ बारह और दोनों ओर की षोडशियों के दो सौ बहत्तर इसप्रकार कुल मिला कर तीन सौ चौरासी उपवास तथा अठासी स्थानों के अठासी भुक्तिकाल होते हैं। यह व्रत एक वर्ष तीन माह और बाईस दिनों में पूर्ण होता है। यह व्रत रत्नत्रय के तेज को बढ़ाने वाला है।

८ - मुक्तावली व्रत =

एकाद्या यत्र पञ्चान्ता एकान्ताश्चतुरादिकाः।
मुक्तावलीयमाख्याताः ख्याता मुक्तावली यथा।।
नान्तरीयकमेतस्या लोकालङ्करणं फलम्।
मुक्तावलीपरिप्राप्तिरन्ते चात्यन्तिकं फलम्।।

(हरिवंशपुराण = ३४/६९ से ७०)

अर्थात् – जिसमें एक से लेकर पाँच तक और चार से लेकर एक तक बिन्दुयें हों वह मुक्तावली विधि है। यह मोतियों की माला के समान प्रसिद्ध है। इसमें जितनी बिन्दुयें हैं उतने उपवास और जितने स्थान होते हैं, उतनी पारणायें होती हैं। इसप्रकार इस व्रत में पच्चीस उपवास और नौ पारणायें होती हैं। इसका साक्षात् फल यह है कि इस व्रत को करते ही मनुष्य समस्त लोगों का अलंकारस्वरूप हो जाता है और अन्त में सिद्धालय की प्राप्तिस्वरूप आत्यन्तिक फल की प्राप्ति होती है।

९ - सुदर्शन व्रत = इस व्रत का नाम हरिवंशपुराण में दर्शनविशुद्धि व्रत पाया जाता है।

प्रत्येकमावुपवासभेदा,
निःशङ्किताद्यगुणध्यपेक्षाः।
त्रिदर्शनानामपि ते विधेया-
स्तपोविधौदर्शनशुद्धिसञ्ज्ञे।।

(हरिवंशपुराण = ३४/९८)

अर्थात् – दर्शनविशुद्धि नामक तप की विधि में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन सम्यग्दर्शनों के निःशंकितादि आठ-आठ अंगों की अपेक्षा चौबीस उपवास होते हैं। एक-एक उपवास के बाद एक-एक पारणा होती है। इसतरह यह व्रत अड़तालीस दिन में पूर्ण होता है।

इस कृति के सम्पादन की विधि

हमने प्रत्येक पृष्ठ के तीन हिस्से किये हैं। सबसे ऊपर ग्रन्थ का मूल अंश प्रकाशित है। मध्यभाग में हिन्दी अनुवाद को स्थान दिया है और अन्त में आदिपुराण ग्रन्थ का पर्वांक व श्लोकांक उद्धृत किया है।

इस कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ आर्यिका श्री सुविधिमती माताजी, आर्यिका श्री सुहृदयमती माताजी ने तथा आर्यिका श्री सुनिधिमती

माताजी ने अपूर्व सहयोग प्रदान किया। उन्हीं के कारण से यह कृति प्रकाशन के योग्य बनी। अतः उन दोनों को श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिये बहुत-बहुत आशीर्वाद।

यह कार्य केवल शास्त्रभक्ति से प्रेरित होकर सम्पन्न किया गया है। गुरुओं का आशीर्वाद और मन की धृष्टता इस अनुवाद का कारण बनी। अनुभव की कमी के कारण इस कृति में यत्र-तत्र अनेक कमियाँ हो सकती हैं। सुधी पाठक हमें उन कमियों से परिचित कराने का कष्ट करेंगे – ऐसा मुझे विश्वास है। उनका यह प्रयत्न जिनवचनों की सुरक्षा का माध्यम भी बनेगा और ज्ञान के प्रसार का भी।

जिन महानुभावों ने अपनी चंचला लक्ष्मी का उपयोग कर इस कृति का प्रकाशन कराया है उन सभी को मेरा मंगलमयी आशीर्वाद।

- आचार्य सुविधिसागर

प्रशस्ति

(छन्द = अनुष्टुप्)

विज्ञानं विमलं यस्य, भासते विश्वगोचरम्।
नमस्तस्मै श्री वीराय, पञ्चसंसारभेदिने।।

वन्देऽहं शारदा माता, जगद्ध्वान्तविनाशिनीम्।
भासिनीं विश्वतत्त्वानां, भानुभामिव निर्मलाम्।।

वन्दित्वा च गणाधीशं, गौतमं श्रुतपारगम्।
कुन्दकुन्दादि सूरीणां, वन्दे भक्त्या पुनः पुनः।।

(छन्द = उपजाति)

चारित्रचक्री सूरिरादिसिन्धु-,
स्तत्पट्टशिष्यो महावीरकीर्तिः।
तत्पट्टवारान्निधिपूर्णचन्द्रः,
श्री सन्मतिं हि प्रणमामि नित्यम्।।

(छन्द = अनुष्टुप्)

सन्मतेर्लघुशिष्योऽहं, सुविधिसिन्धुसञ्ज्ञकः।
अनुवादमकुर्वेऽहं, विशदा देशभाषया।।

यावच्छशिरवी भौमे, यावत् सलिलराशयः।
तावदयं पुराणोऽपि, तिष्ठतु क्षितिमण्डले।।

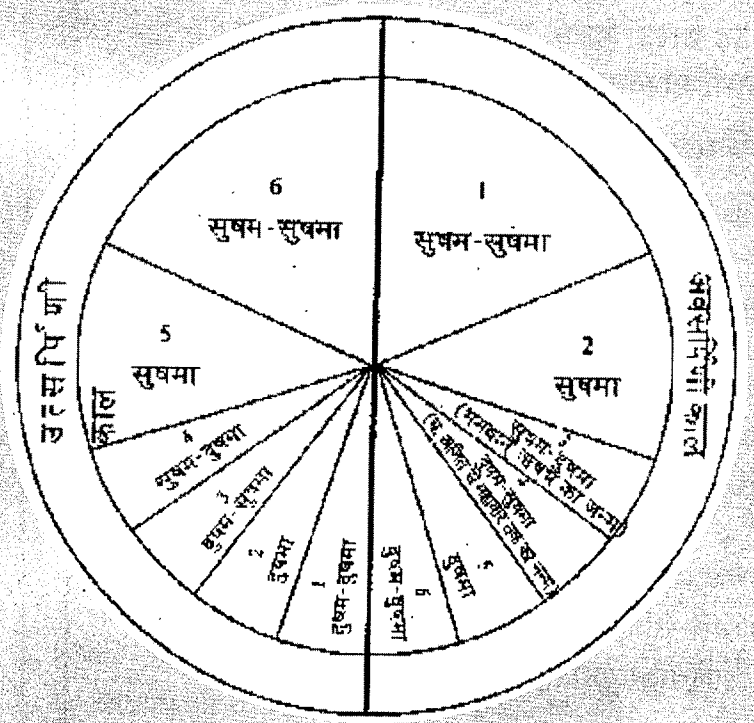

काल चक्र

प्रथम पर्व

(काल चक्र)

- अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी
- कुलकरों की स्थिति
- आदिनाथ के पूर्वभव की कथा का आरम्भ

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

प्रथमं पर्व

श्रीमते सकलज्ञानसाम्राज्यपदमीयुषे।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारभीमुषे।।१।।
पुराणं मुनिमानम्य जिनं वृषभमच्युतम्।
महतस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते।।२।।
अनादिनिधनः कालो वर्त्तनालक्षणो मतः।
लोकमात्रः सुसूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः।।३।।
वर्त्तितो द्रव्यकालेन वर्त्तनालक्षणेन यः।
कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्प्यते।।४।।

श्रीपुराणम्

प्रथम अधिकार

जो श्री (अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी) के स्वामी हैं, सम्पूर्ण ज्ञानरूपी साम्राज्य का पद जिन्होंने प्राप्त कर लिया है, जो धर्मचक्र को धारण करने वाले हैं, जो तीन लोक के भर्त्ता (नाथ) हैं और जो संसारभय को नष्ट करने वाले हैं - ऐसे जिनेन्द्रदेव को हमारा नमस्कार हो।।१।।

इस अवसर्पिणी काल के सबसे पहले मुनि, कर्मरूपी शत्रुओं के विजेता, अविनश्वर ऐसे श्री वृषभनाथ भगवान को नमस्कार करके मैं महापुराण की पीठिका का व्याख्यान करता हूँ।।२।।

कालद्रव्य अनादिनिधन है। उसका लक्षण वर्त्तना है। यह द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु के बराबर है और सम्पूर्ण लोक में भरा हुआ है।।३।।

यह व्यवहारकाल वर्त्तना लक्षण है जिसका ऐसे निश्चयकाल के द्वारा ही प्रवर्त्तित होता है। वही काल (व्यवहारकाल) भूत, वर्तमान और भविष्य-काल के रूप में कल्पित किया जाता है।।४।।

१ = १/१ २ = ३/१ ३ = ३/२ ४ = ३/११

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ द्वौ भेदौ तस्य कीर्तितौ।
उत्सर्पादवसर्पाच्च बलायुर्देहवर्ष्मणाम्।।५।।
कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसंख्यया।
शेषस्याप्येवमेवेष्टा तावुभौ कल्प इष्यते।।६।।
द्विरुक्तसुषमाद्यासीद् द्वितीया सुषमा मता।
सुषमा-दुःषमान्तान्या सुषमान्ता च दुःषमा।।७।।
पञ्चमी दुःषमा ज्ञेया समा षष्ठ्यतिदुःषमा।
भेदा इमेऽवसर्पिण्या उत्सर्पिण्या विपर्ययाः।।८।।
पुरास्यामवसर्पिण्यां क्षेत्रेऽस्मिन्भरताह्वये।
मध्यमं रवण्डमाश्रित्य ववृधे प्रथमा समा।।९।।
सागरोपमकोटीनां कोटी स्याच्चतुराहता।
तस्य कालस्य परिमा तदा स्थितिरियं मता।।१०।।
तदा स्थितिर्मनुष्याणां त्रिपल्योपमसम्मिता।

व्यवहारकाल के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो भेद हैं। बल, आयु और शरीर के बढ़ने और घटने से ये भेद किये गये हैं।।५।।

दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी काल है। इतना ही काल अवसर्पिणी का भी है। इन दोनों को मिलाने पर एक कल्पकाल होता है।।६।।

पहला सुषमा-सुषमा, दूसरा सुषमा, तीसरा सुषमा-दुषमा, चौथा दुषमा-सुषमा, पाँचवाँ दुषमा और छठा अति-दुषमा ये अवसर्पिणी काल के छह भेद हैं। इनसे विपरीत उत्सर्पिणी के भेद होते हैं।।७,८।।

पहले इस भरतक्षेत्र के मध्यवर्ती आर्यखण्ड में प्रथम काल चल रहा था।।९।।

वह चार कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण था तथा उसकी स्थिति निम्नांकित थी।।१०।।

उससमय मनुष्यों की आयु तीन पल्य की थी और शरीर छह हजार धनुष प्रमाण ऊँचा था।।११।।

५ = ३/१४ ६ = ३/१५ ७ = ३/१७ ८ = ३/१८
९ = ३/२२ १० = ३/२३ ११ = ३/२५

षट् सहस्राणि चापानामुत्सेधो वपुषः स्मृतः।।११।।
वज्रास्थिबन्धनाः सौम्याः सुन्दराकारचारवः।
निष्टप्तकनकच्छाया दीप्यन्ते ते नरोत्तमाः।।१२।।
तेषामाहारसम्प्रीतिर्जायते दिवसैस्त्रिभिः।
कुवलीफलमात्रं च दिव्यान्नं विष्वणन्ति ते।।१३।।
रुच्याहार गृहातोद्य माल्यभूषाम्बरादिकम्।
भोगसाधनमेतेषां सर्वं कल्पतरूद्भवम्।।१४।।
मध्यतूर्यविभूषास्रग्ज्योतिर्दीपगृहाङ्गकाः।
भोजनामत्रवस्त्राङ्गा दशधा कल्पशाखिनः।।१५।।
जृम्भिकारम्भमात्रेण तत्कालोत्थक्षुतेन वा।
जीवितान्ते तनुं त्यक्त्वा ते दिवं यान्त्यनेनसः।।१६।।
इत्याद्यः कालभेदोऽवसर्पिण्यां वर्णितो मनाक्।

उस समय मनुष्यों के शरीर के हड्डियों के बन्धन वज्र के समान थे। वे मनुष्य अत्यन्त सौम्य व सुन्दर आकार के धारक थे। उनका शरीर तपाये हुए सोने के समान दैदीप्यमान था।।१२।।

उन्हें तीन दिन के बाद भोजन की इच्छा होती है। वे बेर के बराबर प्रमाण से युक्त दिव्य (कल्पवृक्ष से प्राप्त) भोजन करते हैं।।१३।।

इच्छानुसार सुन्दर आहार, घर, बाजे, माला, आभूषण और वस्त्र आदि समस्त कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोग्यसामग्री उन्हें प्राप्त होती थी।।१४।।

मद्यांग, तूर्यांग, विभूषांग, माल्यांग, ज्योतिरंग, दीपांग, गृहांग, भोजनांग, पात्रांग और वस्त्रांग ये दसप्रकार के कल्पवृक्ष हैं।।१५।।

आयु के अन्त में पुरुष को जम्हाई और स्त्री को छींक आती है। उससे वे पुण्यात्मा जीव अपना शरीर छोड़ कर स्वर्ग चले जाते हैं।।१६।।

इसप्रकार अवसर्पिणी काल के प्रथम काल का कुछ वर्णन किया गया है। यहाँ समस्त विधि उत्तरकुरुक्षेत्र के समान होती है।।१७।।

१२ = ३/२६ १३ = ३/३० १४ = ३/३५
१५ = ३/३९ १६ = ३/४२ १७ = ३/४४

उदक्कुरु समः शेषो विधिरत्रावधार्यताम्।।१७।।
ततो यथाक्रमं तस्मिन् काले गलति मन्दताम्।
यातासु वृक्षवीर्यायुः शरीरोत्सेधवृत्तिषु।।१८।।
सुषमालक्षणः कालो द्वितीयः समवर्त्तत।
सागरोपमकोटीनां तिस्रः कोट्योऽस्यसम्मितिः।।१९।।
तदा मर्त्याह्यमर्त्याभा द्विपल्योपमजीविताः।
चतुः सहस्रचापोच्चविग्रहाः शुभचेष्टिताः।।२०।।
कलाधरकलास्पर्द्धिदेहज्योत्स्नास्मितोज्ज्वलाः।
दिनद्वयेन तेऽश्नन्ति वार्क्षमन्धोऽक्षमात्रकम्।।२१।।
शेषो विधिस्तु निःशेषो हरिवर्षसमो मतः।
ततः क्रमेण कालेऽस्मिन्नवसर्पत्यनुक्रमात्।।२२।।
प्रहीणा वृक्षवीर्यादिविशेषाः प्राक्तना यदा।

उसके बाद क्रम-क्रम से प्रथम काल पूर्ण हुआ और कल्पवृक्ष, मनुष्यों का बल, आयु तथा शरीर की ऊँचाई आदि कम होने लगी।।१८।।

तब सुषमा नामक दूसरा काल प्रवृत्त हुआ। इस काल का प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागर का था।।१९।।

उस समय मनुष्य देवों के समान कान्ति के धारक थे। उनकी आयु दो पल्यप्रमाण थी। उनका शरीर चार हजार धनुष ऊँचा था तथा उनकी समस्त चेष्टायें शुभ थीं।।२०।।

उनके शरीर की कान्ति चन्द्रकलाओं के साथ स्पर्धा करती थी, उनका हास्य मधुर था। वे दो दिन के बाद कल्पवृक्ष से प्राप्त हुए बहेड़े के बराबर अन्न खाते थे।।२१।।

वहाँ की शेष सम्पूर्ण व्यवस्था हरिक्षेत्र के समान थी। फिर क्रम से दूसरा काल भी व्यतीत हो गया।।२२।।

कल्पवृक्ष तथा मनुष्यों का बल हीन होने लगा तब जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था प्रकट हुई।।२३।।

१८ = ३/४५ १९ = ३/४६ २० = ३/४८
२१ = ३/४९ २२ = ३/५० २३ = ३/५१

जघन्यभोगभूमीनां मर्यादाविरभूत्तदा ।।२३।।
यथावसरसम्प्राप्तस्तृतीय:कालपर्यय:।
प्रावर्त्तत सुराजेव स्वां मर्यादादालमङ्घयन् ।।२४।।
सागरोपमकोटीनां कोटयो द्वे लब्धसंस्थितौ।
कालेऽस्मिन्भारते वर्षे मर्त्या: पल्योपमायुष:।।२५।।
गव्यूतिप्रमितोच्छ्राया: प्रियङ्गुश्यामविग्रहा:।
दिनान्तरेण सम्प्राप्तधात्रीफलमिताशना:।।२६।।
ततस्तृतीयकालेऽस्मिन् व्यतिक्रामत्यनुक्रमात्।
पल्योपमाष्टभागस्तु यदास्मिन्परिशिष्यते।।२७।।
कल्पानोकहवीर्याणां क्रमादेव परिच्युतौ।
ज्योतिरङ्गास्तदा वृक्षा याता मन्दप्रकाशताम।।२८।।
पुष्पवन्तावथाषाढचां पौर्णमास्यां स्फुरत्प्रभौ।
सायाह्ने प्रादुरास्तां तौ गगनोभयभागयो:।।२९।।

उससमय न्यायवान राजा की तरह अपनी मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए तीसरा काल यथासमय प्रवर्त्तित हुआ।।२४।।

उस काल की स्थिति दो कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण थी। उस समय भरतवर्षीय मनुष्यों की आयु एक पल्य प्रमाण थी।।२५।।

उनके शरीर एक कोस ऊँचे थे। वे प्रियंगु के समान काले रंग वाले थे। वे एकदिन के अन्तराल में आँवले के बराबर अल्प भोजन ग्रहण करते थे।।२६।।

जब क्रमपूर्वक तृतीय काल व्यतीत होते हुए मात्र पल्य का आठवाँ भाग शेष रह गया तब कल्पवृक्षों की सामर्थ्य घट गयी और ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों का प्रकाश अत्यन्त मन्द हो गया।।२७, २८।।

तदनन्तर किसी समय आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन आकाश के दोनों भागों में पूर्व दिशा में उदित होता हुआ चन्द्रमा और पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ सूर्य दिखलायी दिया।।२९।।

२४ = ३/५२ २५ = ३/५३ २६ = ३/५४
२७ = ३/५५ २८ = ३/५६ २९ = ३/५७

प्रतिश्रुतिरिति ख्यातस्तदा कुलधरोऽग्रिमः।
विभ्रल्लोकातिगं तेजः प्रजानां नेत्रवद् बभौ।।३०।।
पल्यस्य दशमो भागस्तस्यायुर्जिनदेशितम्।
धनुः सहस्रमुत्सेधः शतैरधिकमष्टभिः।।३१।।
अदृष्टपूर्वौ तौ दृष्ट्वा सभीतान् भोगभूमिजान्।
भीतेर्निवर्त्तयामास तत्स्वरूपमिति ब्रुवन्।।३२।।
एतौ तौ प्रतिदृश्येते सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहौ।
ज्योतिरङ्गप्रभापायात् कालहासवशोद्भवात्।।३३।।
सदाप्यधिनभोभागं भ्राम्यतोऽभू महाद्युती।
न वस्ताभ्यां भयं किञ्चिदतो मा भैष्ट भद्रकाः।।३४।।
इति तद्वचनात्तेषां प्रत्याश्वासो महानभूत्।
मनौ याति दिवं तस्मिन् काले गलति च क्रमात्।।३५।।

उस समय प्रतिश्रुति नामक प्रसिद्ध प्रथम कुलकर विद्यमान थे। वे अत्यन्त तेजस्वी थे तथा वे अपनी प्रजा के नेत्र के समान सुशोभित हो रहे थे।।३०।।

उनकी आयु पल्य का दसवाँ भाग थी – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उनकी उँचाई एक हजार आठ सौ धनुष थी।।३१।।

पहले कभी नहीं देखे गये सूर्य और चन्द्रमा को देख कर भयभीत हुए भोगभूमि के मनुष्यों को उन्होंने उनका स्वरूप बता कर भीती से निवृत्त किया।।३२।।

हे भद्र पुरुषो ! तुम्हें ये जो दिख रहे हैं, वे सूर्य और चन्द्र नामक ग्रह हैं। ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों के प्रभाव से इनका प्रकाश छिपा हुआ था। काल के दोष से ज्योतिरंगों का प्रभाव क्षीण हो जाने से वे दिखने लगे हैं। इनसे तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। इसीलिये तुम इनसे भय मत करो।।३३,३४।।

उनके इन वचनों को सुन कर लोगों को बड़ा आश्वासन मिला। प्रतिश्रुति कुलकर के स्वर्ग जाने के उपरान्त बहुत दिन व्यतीत हुए।।३५।।

३० = ३/६३ ३१ = ३/६४ ३२ = ३/६९
३३ = ३/७० ३४ = ३/७१ ३५ = ३/७२, ७६

मन्वन्तरमसङ्ख्येया वर्षकोटीर्व्यतीत्य च।
सन्मतिः सन्मतिर्नाम्ना द्वितीयोऽभून्मनुस्तदा।।३६।।
तस्यायुरममप्रख्यमासीत्सङ्ख्येयहायनम्।
सहस्रं त्रिशतीयुक्तमुत्सेधो धनुषां मतः।।३७।।
नभोऽङ्गणमथापूर्यं तारकाः प्रचकाशिरे।
नात्यन्धकारकलुषां वेलां प्राप्य तमीमुखे।।३८।।
अकस्मात्तारका दृष्ट्वा सम्भ्रान्तान् भोगभूभुवः।
भीतिर्विचलयामास प्राणिहत्येव योगिनः।।३९।।
स सन्मतिरनुध्याय क्षणं प्रावोचतार्यकान्।
नोत्पातः कोऽप्ययं भद्रास्तन्मागात भियो वशम्।।४०।।
ज्योतिश्चक्रमिदं शश्वद् व्योममार्गे कृतस्थितिः।

कुलकर ने ज्योतिष विषयक ज्ञान दिया

जब असंख्यात करोड़ वर्षों का मन्वन्तर व्यतीत हुआ तब सन्मति के धारक सन्मति नामक दूसरे मनु हुए।।३६।।

विशेष :- एक कुलकर से दूसरे कुलकर के मध्य की आयु को मन्वन्तर कहते हैं।

उनकी आयु अमम के बराबर संख्यात वर्षों की थी और उनके शरीर की ऊँचाई एक हजार तीन सौ धनुष-प्रमाण थी।।३७।।

एक दिन रात्रि के आरम्भ में जब थोड़ा-थोड़ा अन्धकार अवशिष्ट रह गया था तब तारागण आकाशरूपी आँगन को व्याप कर सब ओर से प्रकाशित होने लगे।।३८।।

उस समय अकस्मात् तारों को देख कर भोगभूमिज मनुष्य अत्यन्त सम्भ्रम में पड़ गये अर्थात् व्याकुल हो गये। उन्हें भय ने इतना कम्पित कर दिया, जितना प्राणियों की हिंसा मुनियों को कम्पित कर देती है।।३९।।

क्षणभर विचार करके सन्मति कुलकर ने कहा - हे भद्रो ! यह कोई उत्पात नहीं है। आप भय के वशीभूत मत होओ।।४०।।

३६ = ३/७६, ७७ ३७ = ३/७९ ३८ = ३/८१
३९ = ३/८२ ४० = ३/८३ ४१ = ३/८५

स्पष्टतामधुनायातं ज्योतिरङ्गप्रभाक्षयात्।।४१।।
ज्योतिर्ज्ञानस्य बीजानि सोन्ववोचद्धिदांवरः।
अथ तद्धचनादार्या जाताः सपदि निर्भयाः।।४२।।
ततोऽन्तरमसंख्येयाः कोटीरुलङ्घ्यवत्सरान्।
तृतीयो मनुरत्रासीत् क्षेमङ्करसमाह्वयः।।४३।।
अटटप्रमितं तस्य बभूवायुर्महौजसः।
देहोत्सेधश्च चापानाममुष्यासीच्छताष्टकम्।।४४।।
पुरा किल मृगा भद्राः प्रजानां हस्तलालिताः।
तदा तु विकृतिं भेजुर्व्यात्तास्याः भीषणस्वनाः।।४५।।
तेषां विक्रियया सान्तर्गर्ज्जया तत्रसु प्रजाः।
इमे भद्रमृगाः पूर्वं संवसन्तोऽनुपद्रवाः।।४६।।
इदानीं तु विना हेतोः शृङ्गैरभिभवन्ति नः।

ये ज्योतिषियों का चक्र है, जो आकाशमार्ग में शाश्वत स्थिति रखते हैं। ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों की प्रभा क्षय होने से ये आज स्पष्ट दिख रहे हैं।।४१।।

उन कुलकर ने ज्योतिष विषयक ज्ञान के बीजों से लोगों को अवगत कराया। उनके वचनों को सुन कर आर्य (भोगभूमिज जीव) निर्भय हो गये।।४२।।

तदनन्तर असंख्य कोटि वर्ष व्यतीत होने के बाद क्षेमंकर नामक तृतीय कुलकर हुए।।४३।।

इन महातेजस्वी मनु की आयु एक अटट प्रमाण थी और शरीर आठ सौ धनुष ऊँचा था।।४४।।

पहले जो सिंहादि पशु भद्रवृत्ति के थे तथा प्रजा जिनका पालन अपने हाथों से करती थी, वे अब विकार को प्राप्त होने लगे तथा भयंकर गर्जना करने लगे।।४५।।

उनकी भयंकर गर्जना और विकारों को देख कर प्रजाजन डरने लगे तथा वे बिना किसी भय के निश्चल मनु के पास जाकर पूछने लगे।।४६।।

४२ = ३/८७-८८ ४३ = ३/९० ४४ = ३/९२
४५ = ३/९३ ४६ = ३/९४-९५-९६

इति तद्वचनाज्जात सौहार्द्रो मनुरब्रवीत्।।४७।।
कर्त्तव्यो नैषु विश्वासो बाधाः कुर्वन्त्युपेक्षिताः।
इत्याकर्ण वचस्तस्य परिजहुस्तदा मृगान्।।४८।।
मन्वन्तरमसङ्ख्येयाः समाः कोटीर्विलङ्घ्य च।
अग्रेसरः सतामासीन्मनुः क्षेमङ्कराह्वयः।।४९।।
तुटिकाब्दमितं तस्य बभूवायुर्महात्मनः।
शतानि सप्तचापानां सप्ततिः पञ्चचोच्छ्रितिः।।५०।।
यदा प्रबलतां याताः पाकसत्वा महाक्रुधः।
तदा लकुटयष्ट्याद्यैः स रक्षाविधिमन्वशात्।।५१।।
पुनर्मन्वन्तरं तत्र सञ्जातं पूर्ववत्क्रमात्।
मनुः सीमङ्करो जज्ञे प्रजानां पुण्यपाकतः।।५२।।

पशुगण बिना कारण के हमें सींगों से मारते हैं - इसप्रकार के वचनों को सुन कर उनसे मित्रभाव उत्पन्न हुआ है जिसे ऐसे मनु ने कहा कि अब आपको इन पशुओं का विश्वास नहीं करना चाहिये। यदि आप इनकी उपेक्षा करेंगे तो वे आपको बाधा पहुँचायेंगे। उनके वचनों को सुन कर लोगों ने पशुओं को छोड़ दिया।।४७-४८।।

उसके बाद असंख्यात करोड़ वर्षों का मन्वन्तर व्यतीत होने पर सज्जनों में अग्रसर क्षेमंधर नामक मनु हुए।।४९।।

उस महात्मा की आयु तुटिक प्रमाण थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष थी।।५०।।

जब पशु अतिशय प्रबलता को प्राप्त होकर क्रोधी हो गये तब उन्होंने लकड़ी, यष्टि आदि उपायों द्वारा उन पशुओं से बचने का उपदेश दिया।।५१।।

पुनः पूर्ववत् एक मन्वन्तर व्यतीत हुआ। उससमय प्रजा के पुण्य का उदय होने से सीमंकर नामक मनु हुए।।५२।।

४७ = ३/९७-९९	४८ = ३/१००-१०१	४९ = ३/१०२-१०३
५० = ३/१०४	५१ = ३/१०५	५२ = ३/१०७

कमलप्रमितं तस्य प्राहुरायुर्महाधियः।
शतानि सप्तपञ्चाशदुच्छ्रायो धनुषां मतः।।५३।।
कल्पाङ्घ्रिपा यदा जाता विरला मन्दकाः फलैः।
तदा तेषु विसंवादो बभूवैषां परस्परम्।।५४।।
ततो मनुरसौ मत्वा वाचा सीमविधिं व्यधात्।
अतः सीमङ्कराख्यान्तैर्लम्भितोऽन्वर्थतां गताम्।।५५।।
पुनर्मन्वन्तरं प्राग्वदतिलङ्घ्य महोदयः।
मनुः सीमन्धरो नाम्ना समजायत पुण्यधीः।।५६।।
नलिनप्रमितायुष्को नलिनास्ये क्षणद्युतिः।
धनुषां पञ्चवर्गाग्रमुच्छ्रितः शतसप्तकम्।।५७।।
अत्यन्त विरला जाताः क्ष्माजा मन्दफला यदा।

महाबुद्धिमान आचार्यों ने उनकी आयु एक कमल तथा ऊँचाई सात सौ पचास धनुष प्रमाण बतलाई है।।५३।।

जब कल्पवृक्ष विरल हो गये तथा अल्पफल देने लगे और उन लोगों में पारस्परिक कलह बढ़ने लगा।।५४।।

तब विचार करके मनु ने कल्पवृक्षों की सीमा नियत कर बतलायी। उक्त व्यवस्था से ही लोगों ने उनका सीमंकर ये सार्थक नाम रख दिया।।५५।।

पुनः एक मन्वन्तर व्यतीत हुआ। कल्पवृक्षों की शक्ति प्रत्येक उत्तम वस्तुओं में क्रम से घटने लगी। तब पवित्र बुद्धि के धारक सीमन्धर नामक मनु हुए।।५६।।

वे एक नलिन प्रमाण आयु के धारक थे। उनके नेत्रों की कान्ति कमलों के समान थी तथा ऊँचाई सात सौ पच्चीस धनुष थी।।५७।।

इनके काल में कल्पवृक्ष अत्यन्त कम रह गये तथा कम फल देने लगे। इस कारण से लोगों में अत्यन्त कलह होने लगा तथा वे आपस में बाल

५३ = ३/१०९	५४ = ३/११०	५५ = ३/१११
५६ = ३/११२	५७ = ३/११३	५८ = ३/११४

नृणां महान्विसंवाद केशाकेशि तदावृधत्।।७८।।
क्षेमवृत्तिं ततस्तेषां मन्वानः स मनुस्तदा।
सीमानि तरुगुल्मादि चिह्नितान्यकरोत्कृती।।७९।।
ततोऽन्तरमभूद् भूयोऽप्यसंख्या वर्षकोट्यः।
तदन्तरव्यतिक्रान्तावभूद्विमलवाहनः।।८०।।
पद्मप्रमितमस्यायुः पद्माश्लिष्टतनोरभूत्।
धनुःशतानि सप्तैव तनुत्सेधोऽस्य वर्णितः।।८१।।
तदुपज्ञं गजादीनां बभूवारोहणक्रमः।
कुथाराङ्कुशपर्याणमुखभाण्डाद्युपक्रमैः।।८२।।
पुनरन्तरमत्राभूदसङ्ख्येयाब्दकोट्यः।
ततोऽष्टमो मनुर्जातश्चक्षुष्मानिति शब्दितः।।८३।।
पद्माङ्गप्रमितायुष्कश्चापानां पञ्चसप्ततिः।

पकड़-पकड़ कर मारने लगे तब कल्याण की स्थापना हो इस हेतु से मनु ने अनेक वृक्ष तथा छोटी-छोटी झाड़ियों से कल्पवृक्षों को चिह्नित कर दिया।।७८,७९।।

इसके असंख्यात करोड़ वर्ष का अन्तर व्यतीत होने पर विमलवाहन नामक कुलकर हुए।।८०।।

उनकी आयु एक पद्मप्रमाण थी। उनका शरीर लक्ष्मी से आलिंगित था तथा उनकी ऊँचाई सात सौ धनुष थी - ऐसा वर्णित है।।८१।।

उन्होंने गजादि सवारी के योग्य पशुओं पर कुथार, अंकुश, पर्याय और मुखभाण्ड लगा कर सवारी करने का उपक्रम बतलाया था।।८२।।

इनके बाद पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल व्यतीत हुआ। फिर चक्षुष्मान नामक आठवें मनु उत्पन्न हुए।।८३।।

वे पद्मांग प्रमाण आयु के धारक थे। उनकी ऊँचाई छह सौ पचहत्तर धनुष थी। उनके शरीर की शोभा अत्यन्त सुन्दर थी।।८४।।

७९ = ३/११५ ८० = ३/११६-११७ ८१ = ३/११८
८२ = ३/११९ ८३ = ३/१२० ८४ = ३/१२१

षट्छतान्यप्युदग्रश्रीरुच्छ्रिताङ्गो बभूव सः।।८४।।
तस्य कालेऽभवेत्तेषां क्षणं पुत्रमुखेक्षणम्।
अदृष्टपूर्वमार्याणां महदुत्रासकारणम्।।८५।।
ततः सपदि सञ्जात साध्वसानार्यकांस्तदा।
तद्याथात्म्योपदेशेन स सन्त्रासमथौज्झयत्।।८६।।
पुनरप्यन्तरं तावद्वर्षकोटीर्विलङ्घ्य सः।
यशस्वानित्यभून्नाम्ना यशस्वी नवमो मनुः।।८७।।
कुमुदप्रमितं तस्य परमायुर्महीयसः।
षट्छतानि च पञ्चाशद् धनूंषि वपुरुच्छ्रितिः।।८८।।
तस्य काले प्रजाजन्यमुखालोक पुरस्सरम्।
कृताशिषः क्षणं स्थित्वा लोकान्तरमुपागमन्।।८९।।
ततोऽन्तरमतिक्रम्य तत्प्रायोग्याब्दसम्मितम्।

उस काल में पुत्र का क्षणभर मुख देख कर लोग मरने लगे। यह बात नयी थी। इसीलिये वह लोगों के लिये भय का कारण बन गयी।।८५।।

उससमय भीति से युक्त आर्यजनों को चक्षुष्मान ने यथार्थ उपदेश देकर भयमुक्त किया था।।८६।।

पुनः करोड़ों वर्षों का अन्तराल व्यतीत करके यशस्वान नामक नवें मनु हुए, जो अत्यन्त यशस्वी थे।।८७।।

उस महापुरुष की आयु का प्रमाण एक कुमुद वर्ष था और शरीर की ऊँचाई का प्रमाण छह सौ पचास धनुष था।।८८।।

इनके समय में प्रजा अपनी सन्तति का मुख देखने के साथ-साथ उनको आशीर्वाद देकर तथा क्षण भर ठहर कर परलोक गमन करती थी।।८९।।

इनके करोड़ों वर्षों के बाद अभिचन्द्र नामक मनु हुए। उनका मुख चन्द्रमा के समान अतिशय सुन्दर था।।९०।।

८५ = ३/१२२ ८६ = ३/१२३ ८७ = ३/१२५
८८ = ३/१२६ ८९ = ३/१२७ ९० = ३/१२९

अभिचन्द्रोऽभवन्नाम्ना चन्द्रसौम्याननो मनुः।।७०।।
कुमुदाङ्गमितायुष्को ज्वलन्मुकुटकुण्डलः।
पञ्चवर्गाग्रषट्चापशतोत्सेधः स्फुरत्तनुः।।७१।।
तस्य काले प्रजास्तोक मुखं वीक्ष्य सकौतुकम्।
आशास्याक्रीडनं चक्रुर्निशि चन्द्राभिदर्शनैः।।७२।।
पुनरन्तरमुल्लङ्घ्य तत्प्रायोग्यसमाशतैः।
चन्द्राभ इत्यभूत् ख्यातश्चन्द्रास्यः कालविन्मनुः।।७३।।
नयुतप्रमितायुष्को विलसल्लक्षणोज्ज्वलः।
धनुषां षट्छतान्युच्चैः प्रोद्यदर्कसमद्युतिः।।७४।।
तस्य कालेऽति सम्प्रीताः पुत्राशासनदर्शनैः।
तुग्भिःसह स्म जीवन्ति दिनानि कतिचित्प्रजाः।।७५।।
मरुद्देवोऽभवत्कान्तः कुलधृत्तदनन्तरम्।
स्वोचितान्तरमुल्लङ्घ्य प्रजानामुत्सवो दृशाम्।।७६।।

उनकी आयु का प्रमाण एक कुमुदांग है। उनके मुकुट और कुण्डल अतिशय देदीप्यमान थे। वे छह सौ धनुष उँचे थे तथा तेज से संयुक्त शरीर के धारक थे।।७१।।

उनके समय में प्रजा अपनी सन्तानों का मुख देखने लगी तथा उन्हें रात्रि में कौतुक के साथ चन्द्रमा को दिखला कर उनके साथ कुछ क्रीड़ा भी करने लगी।।७२।।

फिर कितना ही काल व्यतीत होने पर चन्द्राभ नामक मनु हुए। उनका मुख चन्द्रमा के समान था तथा वे काल के ज्ञाता थे।।७३।।

उनकी आयु एक नयुत प्रमाण थी। वे अत्यन्त शोभायमान लक्षणों से उज्ज्वल थे। उनकी उँचाई छह सौ धनुष थी और शरीर की द्युति सूर्य के समान थी।।७४।।

इनके समय में प्रजाजन पुत्र के दर्शन से हर्षित होते थे तथा पुत्र के साथ कुछ दिनों तक जीवित भी रहते थे।।७५।।

तदुपरान्त योग्य अन्तर व्यतीत हो जाने से प्रजा के नेत्रों को आनन्दित करने वाले मरुद्देव नामक कुलकर हुए।।७६।।

७१ = ३/१३० ७२ = ३/१३१-१३२ ७३ = ३/१३४
७४ = ३/१३५ ७५ = ३/१३७ ७६ = ३/१३९

शतानि पञ्च पञ्चाग्रां सप्ततिं च समुच्छ्रितः।
धनूंषि नयुताङ्गायुर्विवस्वानिव भास्वरः।।७७।।
तस्य काले प्रजा दीर्घं प्रजाभिः स्वाभिरन्विताः।
प्राणिषुस्तन्मुखालोकतदङ्गस्पर्शनोत्सवैः।।७८।।
नौद्रोणीसंक्रमादीनि जलदुर्गेष्वकारयत्।
गिरिदुर्गेषु सोपानपद्धतीः सोऽधिरोहणे।।७९।।
ततः प्रसेनजिज्जज्ञे प्रभविष्णुर्मनुर्महान्।
कर्मभूमिस्थितावेवमभ्यर्णायां शनैः शनैः।।८०।।
पर्वप्रमितमाम्नातं मनोरस्यायुरञ्जसा।
शतानि पञ्चचापानां शतार्धं च तदुच्छ्रितिः।।८१।।
तदाभूदर्भकोत्पत्तिर्जरायुपटलावृता।

उनके शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पचहत्तर धनुष थी। उनकी आयु एक नयुतांग प्रमाण और शरीर की कान्ति सूर्य के समान थी।।७७।।

इनके काल में प्रजा अपने पुत्र का मुख देख कर तथा उनके शरीर का स्पर्श करके उत्सव किया करती थी।।७८।।

इन्हीं मनु ने जलरूप दुर्गमस्थान पर गमन करने के लिये छोटी-छोटी नौकाओं को चलाने का उपदेश दिया था और पर्वतारोहण करने के लिये सीढ़ियाँ बनवायी थीं।।७९।।

इसके बाद जब कर्मभूमि की स्थिति धीरे-धीरे समीप आती जा रही थी तब प्रभावशाली प्रसेनजित नामक मनु हुए।।८०।।

उनकी आयु एक पूर्व प्रमाण थी तथा शरीर पाँच सौ पचास धनुष ऊँचा था।।८१।।

उनके समय में बालकों की उत्पत्ति जरायु से लिपटी हुई होने लगी। उन्होंने अपनी प्रजा को उस जरायु को अलग करने का उपदेश दिया।।८२।।

७७ = ३/१४० ७८ = ३/१४२ ७९ = ३/१४४
८० = ३/१४६ ८१ = ३/१४७ ८२ = ३/१४९

नाभिराय कुलकर

ततस्तत्कर्षणोपायं स प्रजानामुपादिशत्।।८२।।
तदनन्तरमेवाभून्नाभिः कुलकरः सुधीः।
युगादिपुरुषैः पूर्वैरुढूढां धुरमुद्वहन्।।८३।।
पूर्वकोटिमितं तस्य परमायुस्तदुच्छ्रितिः।
शतानि पञ्चचापानां पञ्चवर्गाधिकानि वै।।८४।।
तस्य काले सुतोत्पत्तौ नाभिनालमदृश्यत।
स तन्निकर्तनोपायमादिशन्नाभिरित्यभूत्।।८५।।
तस्यैव काले जलदाः कालिकाकर्बुरत्विषः।
प्रादुरासन्नभोभागे सान्द्राः सेन्द्रशरासनाः।।८६।।
शनैश्शनैर्विवृद्धानि क्षेत्रेष्वविरलं तदा।
सस्यान्यकृष्टपच्यानि नानाभेदानि सर्वतः।।८७।।
अथाद्यस्य पुराणस्य महतः पीठिकामिमाम्।

पूर्वपीठिका समाप्त

इसके बाद नाभिराय नामक कुलकर हुए। वे महाबुद्धिमान थे। पूर्ववर्ती कुलकरों के समान वे लोक व्यवस्था के धारक थे।।८३।।

उनकी आयु एक पूर्वकोटि वर्ष थी और उनके शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष थी।।८४।।

उनके समय में उत्पन्न होते समय बालक की नाभि में नाल दिखायी देने लगी। नाभिराय ने उस समय नाल काटने की आज्ञा दी।।८५।।

उन्हीं के समय आकाश में कुछ सफेदी लिये हुए काले रंग के अत्यन्त घने मेघ प्रकट हुए थे, वे मेघ इन्द्रधनुष सहित थे।।८६।।

खेतों में कहीं-कहीं बिना बोये ही अनेक प्रकार के धान स्वयमेव उत्पन्न होने लगे।।८७।।

इसप्रकार महापुराण की पीठिका को कह कर अब मैं श्री वृषभस्वामी का चरित कहूँगा।।८८।।

८३ = ३/१५२ ८४ = ३/१५३ ८५ = ३/१६४
८६ = ३/१६५ ८७ = ३/१८२ ८८ = ४/२

प्रतिष्ठाप्य ततो वक्ष्ये चरितं वृषभेशिनः।।८८।।
इह जम्बूमति द्वीपे मेरोः प्रत्यग्दिशाश्रितः।
विषयो गन्धिलाभिख्यो भाति स्वर्गैकखण्डवत्।।८९।।
विषयस्यास्य मध्येऽस्ति विजयार्द्धो महाचलः।
तस्यास्त्युत्तरतः श्रेण्यामलकेति परा पुरी।।९०।।
तस्याः पतिरभूत् खेन्द्रमुकुटारूढशासनः।
खगेन्द्रोऽतिबलो नाम्ना प्रतिपक्षबलक्षयः।।९१।।
मनोहराङ्गी तस्याभूत् प्रिया नाम्ना मनोहरा।
तयोर्महाबलख्यातिरभूत्सूनुर्महोदयः।।९२।।
अथान्येद्युरसौ राजा प्रव्रज्यायै कृतोद्यमः।
सूनवे राज्यसर्वस्वमदितातिबलस्तदा।।९३।।
ततो गज इवापेतबन्धनो निःसृतो गृहात्।

आदिनाथ के पूर्वभव में महाबल पर्याय

इसी जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत के पश्चिम दिशा की ओर विदेह क्षेत्र में गन्धिल नामक एक देश है, जो कि स्वर्ग के एक खण्ड की तरह शोभायमान है।।८९।।

उस देश के मध्य भाग में विजयार्द्ध नामक एक बड़ा भारी पर्वत है। उसकी उत्तरश्रेणि में अलका नामक एक श्रेष्ठ नगर है।।९०।।

उस अलकापुर नगर का राजा अतिबल नामक विद्याधर था, जो शत्रुओं के कुल का विनाश करने वाला था तथा जिसकी आज्ञा सारे विद्याधर राजाओं के द्वारा स्वीकार की जाती थी।।९१।।

उसकी मनोहर अंगों को धारण करने वाली मनोहरा नामक रानी थी। उन दोनों के महाबल नामक पुत्र हुआ। वह पुत्र अत्यन्त भाग्यवान था।।९२।।

इसके अनन्तर किसी दिन राजा दीक्षाग्रहण करने के लिये उद्यम करने लगे। उन्होंने अपने पुत्र को अपना राज्य दे दिया।।९३।।

८९ = ४/५१ ९० = ३/८१-१०४ ९१ = ४/१२२
९२ = ४/१३१-१३३ ९३ = ४/१४१-१५१ ९४ = ४/१५२

बहुभिः खेचरैः सार्द्धं दीक्षां स समुपाददे।।९४।।
ततः कृताभिषेकोऽसौ बलशाली महाबलः।
राज्यभारं दधे नम्रखेचराभ्यर्चितक्रमः।।९५।।
तस्याभूवन्महाप्राज्ञश्चत्वारो मन्त्रिपुङ्गवाः।
बहिश्चरा इव प्राणाः सुस्निग्धा दीर्घदर्शिनः।।९६।।
महामतिश्च सम्भिन्नमतिः शतमतिस्तथा।
स्वयम्बुद्धश्च राज्यस्य मूलस्तम्भा इव स्थिराः।।९७।।
स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धधीः।
शेषा मिथ्यादृशस्तेऽमी सर्वे स्वामिहितोद्यताः।।९८।।
न्यस्तराजभरस्तेषु स स्त्रीभिः खचरोचितान्।
बुभुजे सुचिरं भोगान् नभोगानामधीश्वरः।।९९।।

(छन्द = मालिनी)

स्वयं बन्धनों से मुक्त हो चुके हाथी की तरह घर से निकल कर अनेक विद्याधरों के साथ राजा अतिबल ने जिनदीक्षा ग्रहण की।।९४।।

पिता के दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अत्यन्त बलवान महाबल ने राज्य का भार धारण किया। अनेक विद्याधर नम्र होकर उसकी सेवा किया करते थे।।९५।।

उसके चार मन्त्री थे। वे चारों ही मन्त्री महाबुद्धिमान, स्नेही और दीर्घदर्शी थे। वे तो जैसे राजा के बाह्य प्राण ही थे।।९६।।

महामति, सम्भिन्नमति, शतमति और स्वयम्बुद्ध नामक चारों मन्त्री अलकापुर राज्य के स्थिर मूलस्तम्भ के समान ही थे।।९७।।

उन चारों में स्वयम्बुद्ध नामक मन्त्री सम्यग्दर्शन से शुद्ध था। शेष तीनों मिथ्यादृष्टि थे। चारों ही मन्त्री स्वामी का हित करने में तत्पर रहते थे।।९८।।

अपने राज्य का भार उन मन्त्रियों को सौंप कर वह राजा अपनी स्त्रियों के साथ नन्दनवन के समान अनेक उपवनों में बार-बार विहार किया करता था।।९९।।

९५ = ४/१५९ ९६ = ४/१९० ९७ = ४/१९१
९८ = ४/१९२ ९९ = ४/१९६

इति सुकृतविपाकादानमत्खेचरोद्यन्।
मुकुटमकरिकाभिः स्पृष्टपादारविन्दः।।
चिरमरमत तस्मिन् खेचराद्रौ सुराद्रौ।
सुरपतिरिव सोऽयं भाविभास्वज्जिनश्रीः।।१००।।

इति श्रीपुराण समाम्नाये प्रथमं पर्व।

इसप्रकार पुण्य के उदय से नमस्कार करने वाले विद्याधरों के उज्ज्वलित मुकुटों में लगे हुए मगर आदि चिह्नों से जिसके चरणकमल बार-बार स्पर्शित किये जा रहे थे, जिसे आगे तीर्थंकर की महान विभूति प्राप्त होने वाली थी, ऐसा महाबल राजा विजयार्द्धपर्वत पर चिरकाल तक ठीक उसीप्रकार रमण करता रहा, जिसप्रकार इन्द्र मेरुपर्वत पर रमण करता है।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण का प्रथम पर्व समाप्त हुआ।

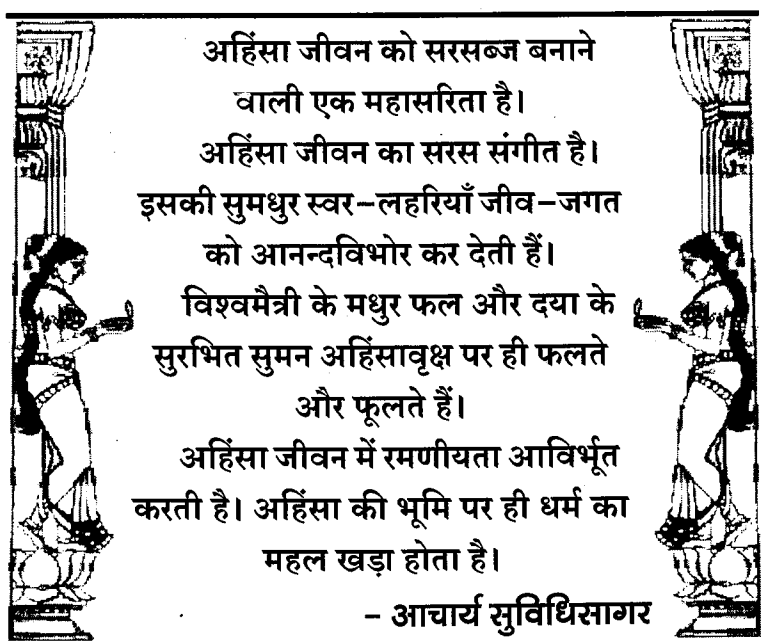

१०० = ४/१९८

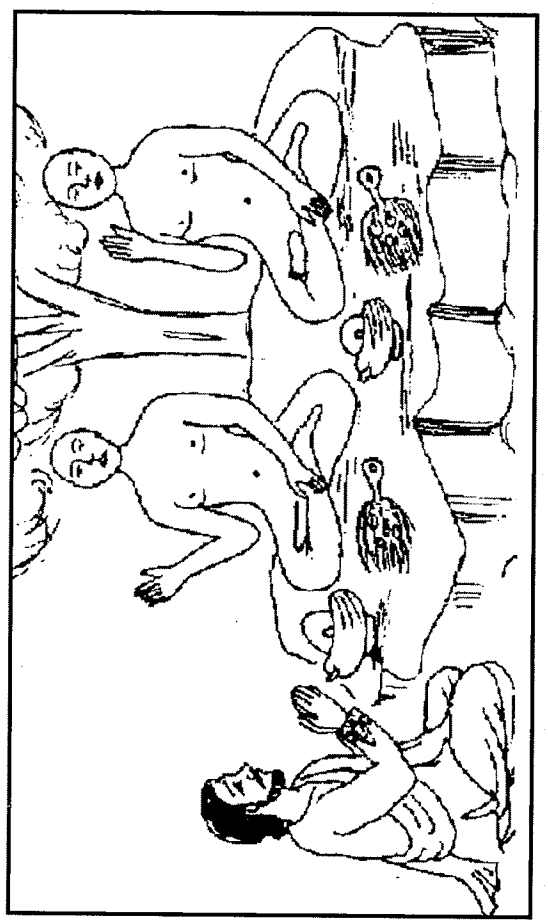

मंत्री स्वयम्बुद्ध आदित्यगति व अरिंजय नामक दो मुनियों के दर्शन करते हुए

द्वितीय पर्व

(आदिनाथ का पूर्वभव–महाबल की कथा)

- महाबल का जन्मोत्सव
- मंत्री स्वयम्बुद्ध को मुनियों के दर्शन
- महाबल का स्वर्गगमन

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

द्वितीयं पर्व

कदाचिदथ तस्यासीद्धर्षवृद्धिदिनोत्सवः।
मङ्गलैर्गीतवादित्रनृत्यारम्भैश्च सम्भृतः।।१।।
मन्त्रिणश्च तदामात्यसेनापतिपुरोहिताः।
श्रेष्ठिनोऽधिकृताश्चान्ये तं परीत्यावतस्थिरे।।२।।
तं तदा प्रतिमालोक्य स्वयम्बुद्धः समिद्धधीः।
स्वामिने हितमित्युच्चैरभाषिष्टेष्ट मृष्टवाक्।।३।।
धीमन्निमां चलां लक्ष्मीं शाश्वतीं कर्त्तुमिच्छता।
त्वया धर्मोऽनुमन्तव्यः सोऽनुष्ठेयश्च शक्तितः।।४।।

श्रीपुराणम्

दूसरा अधिकार

किसी दिन राजा महाबल का जन्मोत्सव हो रहा था। वह उत्सव मंगल गीत, वादित्र और नृत्य आदि आरम्भों से भरा हुआ था।।१।।

उस समय मन्त्री, अमात्य, सेनापति, पुरोहित, सेठ और राज्य के अन्य अधिकारीगण राजा को घेर कर बैठे हुए थे।।२।।

उस समय तीक्ष्णबुद्धि के धारक, इष्ट और मनोहर वचनों को बोलने वाले स्वयम्बुद्ध नामक मन्त्री ने राजा को प्रीति से युक्त देख कर स्वामी का हित करने वाले निम्नलिखित वचन कहे।।३।।

हे धीमन् ! यदि इस चंचला लक्ष्मी को आप स्थिर रखना चाहते हैं तो आपको धर्म स्वीकार करना चाहिये तथा उसका यथाशक्ति आचरण करना चाहिये।।४।।

१ = ५/१ २ = ५/७ ३ = ५/१३ ४ = ५/२५

जात्यनुस्मरणाज्जीवगतागतविनिश्चयात्।
आप्तोक्तिसम्भवाच्चैव जीवास्तित्वविनिश्चयः।।७।।
इति तद्वचनाज्जाता परिषत्सकलैव सा।
निरारेकात्मसद्भावे सम्प्रीतश्च सभापतिः।।६।।
परवादिनगास्तेऽपि स्वयम्बुद्धवचोऽशनेः।
निष्ठुरापातमासाद्य सद्यः प्रम्लानिमागताः।।७।।
पुनः प्रशान्त गम्भीरे स्थिते तस्मिन् सदस्यसौ।
दृष्टश्रुतानुभूतार्थ सम्बन्धीदमभाषत।।८।।
श्रुणु भोस्त्वं महाराज वृत्तमाख्यानकं पुरा।
खेन्द्रोऽभूदरविन्दाख्यो भवद्वंशशिखामणिः।।९।।
स इमां पुण्यपाकेन शास्ति स्म परमां पुरीम्।
उद्दृप्तप्रतिसामन्त दोर्दर्पानवसर्पयन्।।१०।।

जातिस्मरण से, जीवों के आवागमन से तथा आप्त के द्वारा कहे गये आगम से जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है।।७।।

मन्त्री के इन वचनों से सम्पूर्ण सभा आत्मा के सद्भाव के विषय में संशयरहित हो गयी। राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ।।६।।

परवादीरूपी वृक्ष भी स्वयम्बुद्ध के वचनरूपी वज्रप्रहार से तत्काल म्लान हो गये।।७।।

पुनः जब सभा शान्तभाव से स्थित हो गयी तब मन्त्री दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाली कथा को कहने लगा।।८।।

हे राजन् ! मैं एक कथा सुनाता हूँ, आप सुनिये। पूर्व में आपके वंश में चूड़ामणि के समान अरविन्द नामक विद्याधर राजा हुआ था।।९।।

वह राजा अपने पुण्यकर्म के उदय से घमण्डी शत्रुओं के बाहुओं का दर्प दूर करता हुआ इस परमपुरी का शासन करता था।।१०।।

मंत्री द्वारा दृष्ट, श्रुत और अनुभूत प्रदार्थो से सम्बद्ध कथा सुनाना

५ = ५/७० ६ = ५/८६ ७ = ५/८७
८ = ५/८८ ९ = ५/८९ १० = ५/९०

विषयानन्वभूद्दिव्यानसौ खेचरगोचरान्।
अभूतां हरिचन्द्रश्च कुरुविन्दश्च तत्सुतौ।।११।।
स बह्वारम्भसंरम्भरौद्रध्यानाभिसन्धिना।
बबन्ध नरकायुष्यं तीव्रासातफलोदयम्।।१२।।
प्रत्यासन्नमृतेस्तस्य दाहज्वरविजृम्भितः।
ववृधे तनुसन्तापः कदाचिदतिदुःसहः।।१३।।
विद्यासु विमुखीभावं स्वासु यातासु दुर्मदी।
पुण्यक्षयात् परिक्षीणमदशक्तिरिवेभराट्।।१४।।
दाहज्वरपरिताङ्गः सन्तापो सोढुमक्षमः।
हरिचन्द्रमथाहूय सुतमित्यादिशद्वचः।।१५।।
अङ्ग पुत्र ममाङ्गेषु सन्तापो वर्द्धतेतराम्।
पश्य ! कल्हारहाराणां परिम्लानिं तदर्पणात्।।१६।।

वह राजा विद्याधरों के अनुकूल अनेक दिव्य भोगों का उपभोग किया करता था। उसके हरिचन्द्र और कुरुविन्द नामक दो पुत्र थे।।११।।

उस राजा ने बहुत आरम्भ को बढ़ाने वाले रौद्रध्यान के चिन्तन से तीव्र दुःख को देने वाली नरकायु का बन्ध किया।।१२।।

उसकी मृत्यु निकट आने पर उसके शरीर में दाहज्वर हो गया। दाहज्वर के अत्यन्त दुःसह सन्ताप वृद्धिगत होने लगा।।१३।।

पुण्य का क्षय हो जाने के कारण उसकी विद्यायें उससे विमुख हो गयीं थी। वह मदशक्ति से हीन हाथी की तरह अशक्त हो गया।।१४।।

दाहज्वर के कारण सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होने वाले सन्ताप को सहन करने में वह असमर्थ हो गया।।१५।।

उसने अपने हरिचन्द्र नामक पुत्र को बुला कर कहा - हे पुत्र ! मेरे सर्वांग में सन्ताप की वृद्धि होती जा रही है।

देखो, लाल कमलों के ये हार कैसे म्लान हो गये हैं।।१६।।

११ = ५/९१ १२ = ५/९२ १३ = ५/९३
१४ = ५/९५ १५ =५/९६ १६ = ५/९७

तन्मामुदक्कुरून्पुत्र प्रापयाशु स्वविद्यया।
तांश्च शीतान्वनोद्देशान् सीतानद्यास्तटाश्रितान्।।१७।।
तत्र कल्पतरून् धुन्वन् सीतावीचिचयोत्थितः।
दाहान्मां मातरिश्वास्मादुपशान्तिं स नेष्यति।।१८।।
इति तद्धचनाद्विद्यां प्रैषिषद्व्योमगामिनीम्।
स सूनुः साप्यपुण्यस्य नाभूत्तस्योपकारिणी।।१९।।
विद्यावैमुख्यतो ज्ञात्वा पितुर्व्याधेरसाध्यताम्।
सुतः कर्तव्यतामूढः सोऽभूदुद्विग्नमानसः।।२०।।
अथान्येद्युरमुष्याङ्गे पेतुः शोणितबिन्दवः।
मिथः कलहविश्लिष्ट गृहकोकिल बालधेः।।२१।।
तैश्च तस्य किलाङ्गानि निर्ववुः पापदोषतः।
सोऽतुषच्चेति दिष्ट्याद्य परं लब्धं मयौषधम्।।२२।।

अतः तुम मुझे अपनी विद्या के द्वारा शीघ्र ही उत्तरकुरु भेज दो। मुझे वहाँ भेजना, जहाँ सीतोदा नदी का तट है।।१७।।

वहाँ कल्पवृक्ष की वायु और सीतोदा नदी की तरंगों से उत्थित वायु मेरे इस दाह का उपशमन कर सकती है।।१८।।

पिता के वचनों को सुन कर पुत्र ने अपनी आकाशगामिनी विद्या भेजी, परन्तु राजा का पुण्य क्षीण हो जाने के कारण वह राजा का उपकार न कर सकी।।१९।।

विद्या विमुख हो गयी है, इससे पिता की व्याधि असाध्य है - ऐसा जान कर हरिचन्द्र अत्यन्त उदास एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।।२०।।

किसी दिन दो छिपकलियाँ परस्पर लड़ रही थीं। लड़ते-लड़ते एक पूँछ टूट गयी। छिपकली के खून की बून्दें राजा के शरीर पर आकर पड़ीं।।२१।।

उससे राजा को कुछ सन्तुष्टि मिली। पाप के उदय से राजा विचार करने लगा कि मैंने आज दैवयोग से उत्तम औषधी प्राप्त कर ली है।।२२।।

१७ = ५/९८ १८ = ५/९९ १९ = ५/१००
२० = ५/१०१ २१ = ५/१०२ २२ = ५/१०३

ततोऽन्यं कुरुविन्दाख्यं सूनुमाहूय सोऽवदत्।
पुत्र ! मे रुधिरापूर्णा वाप्येका क्रियतामिति।।२३।।
पुनरप्यवदल्लब्धविभङ्गोऽस्मिन् वनान्तरे।
मृगा बहुविधाः सन्ति तैस्त्वं प्रकृतमाचरः।।२४।।
स तद्वचनमाकर्ण्य पापभीरुर्विचिन्त्य च।
तत्कर्मापारयन्कर्तुं मूकीभूतः क्षणं स्थितः।।२५।।
प्रत्यासन्नमृतिं बुद्ध्वा तं बद्धनरकायुषम्।
दिव्यज्ञानादृशः साधोस्तत्कार्येऽभूत् स शीतकः।।२६।।
अनुलङ्घ्यं पितुर्वाक्यं मन्यमानस्तथाप्यसौ।
कृत्रिमैः क्षतजैः पूर्णां वापीमेकामकारयत्।।२७।।
तत्रानीतश्च तन्मध्ये यथेष्टं शयितोऽमुतः।
चिक्रीड कृतगण्डूषः कृतकं तदबुद्ध च।।२८।।

उसने अपने कुरुविन्द नामक पुत्र को बुला कर कहा - हे पुत्र ! तुम मेरे लिये रुधिर से भरी हुई एक बावड़ी बनवा दो।।२३।।

राजा ने कु-अवधिज्ञान से जान कर कहा - इस नगर के समीपवर्ती वन में अनेक प्रकार के मृग रहते हैं। तुम उन्हीं से अपना काम करो।।२४।।

कुरुविन्द पाप से डरता था। इसीलिये पिता के वचनों को सुन कर तथा कुछ देर विचार करके उस कर्म को न कर पाने से चुपचाप खड़ा रहा।।२५।।

तत्पश्चात् वह वन में गया। वहाँ अवधिज्ञानी मुनि से उसने ज्ञात कर लिया कि राजा को नरकायु का बन्ध हो चुका है और उसकी मृत्यु सन्निकट है तो वह अपने कार्यों से विरक्त हो गया।।२६।।

पिता के वाक्य अनुलंघ्य होते हैं - ऐसा मान कर उसने कृत्रिम रक्त से भरी हुई बावड़ी बनायी।।२७।।

जब राजा को बावड़ी के पास लाया गया तो वह उसके बीच सो गया। यथेच्छ क्रीड़ा करते हुए जब उसने कुल्ला किया तब उसे यथार्थता का ज्ञान हुआ।।२८।।

२३ = ५/१०४ २४ = ५/१०५ २५ = ५/१०६
२६ = ५/१०७ २७ = ५/१०८ २८ = ५/१११

स रुष्टः पुत्रमाहन्तुमाधावन् पतितोऽन्तरे।
स्वासिधेनुकया दीर्णहृदयो मृतिमासदत्।।२९।।
स तथा दुर्मृतिं प्राप्य गतः श्वाभ्रीमधर्मतः।
कथेयमधुनाप्यस्यां नगर्यां स्मर्यते जनैः।।३०।।
तथात्रैव भवद्वंशे विस्तीर्णे जलधाविव।
दण्डो नाम्नाभवत्खेन्द्रो दण्डितारातिमण्डलः।।३१।।
मणिमालीत्यभूत्तस्मात्सूनुर्मणिरिवाम्बुधेः।
नियोज्य यौवराज्ये तं स्वेष्टान् भोगानभुङ्क्त सः।।३२।।
सोऽत्यन्तविषयासक्तिकृतकौटिल्यचेष्टितः।
बबन्ध तीव्रसंक्लेशात् तिरश्चामायुरार्त्तधीः।।३३।।
जीवितान्ते स दुर्ध्यानमार्त्तमापूर्य दुर्मृतेः।
भाण्डागारे निजे मोहान्महानजगरोऽजनि।।३४।।

रुष्ट होकर वह पुत्र को मारने के लिये दौड़ा, परन्तु मध्य में ही वह ऐसे गिर गया कि उसकी तलवार से उसका हृदय विदीर्ण हुआ और वह मर गया।।२९।।

वह कु-मरण से मर कर अधर्म के योग से नरक में गया। आज भी यह कथा इस नगरी के लोगों को याद है।।३०।।

इसीप्रकार जलधि के समान विस्तार को धारण करने वाले आपके वंश में दण्ड नामक विद्याधर हुआ था, जो निरन्तर अरिमण्डल को दण्डित किया करता था।।३१।।

जिसप्रकार अम्बुधि से मणि उत्पन्न होता है, उसीप्रकार उस राजा से मणिमाली नामक पुत्र हुआ था। उसे युवराज पद पर प्रतिष्ठापित करके राजा यथेष्ट भोगों को भोगने लगा।।३२।।

अत्यन्त विषयासक्ति से तथा मायाचारयुक्त चेष्टाओं के कारण उस राजा ने तीव्र संक्लेश परिणामों के द्वारा तिर्यंचायु का बन्ध कर लिया।।३३।।

जीवनान्त में दुर्ध्यानपूर्वक मर कर वह राजा अपने ही भण्डार में बड़ा अजगर हुआ।।३४।।

२९ = ५/११३ ३० = ५/११४ ३१ = ५/११७
३२ = ५/११८ ३३ = ५/१२० ३४ = ५/१२१

स जातिस्मरतां गत्वा भाण्डागारिकवद्भृशम्।
तत्प्रवेशे निजं सूनुमन्वमंस्त न चापरम्।।३५।।
अन्येद्युरवधिज्ञानलोचनान्मुनिपुङ्गवात्।
मणिमाली पितुर्ज्ञात्वा तं वृत्तान्तमशेषतः।।३६।।
पितृभक्त्या स तन्मूर्च्छामपहर्त्तुमनाः सुधीः।
शयोरग्र शनैः स्थित्वा स्नेहार्द्रां गिरमभ्यधात्।।३७।।
पितः पतितवानस्यां कुयोनावधुना त्वकम्।
विषयासङ्गदोषेण धृतमूर्च्छो धनर्द्धिषु।।३८।।
ततो धिगिदमत्यन्तकटुकं विषयामिषम्।
वमैतद्दुर्ज्जरं तात किम्पाकफलसन्निभम्।।३९।।
अथासौ पुत्रनिर्दिष्टधर्मवाक्यांशुमालिना।
गलिताशेषमोहान्धतमसः समजायत।।४०।

वहाँ उसे जातिस्मरण हुआ। वह भण्डारी की तरह मात्र अपने पुत्र को ही भण्डार में प्रवेश करने देता था, अन्य को नहीं।।३५।।

किसी एक दिन अवधिज्ञानरूपी नेत्रों से युक्त किसी मुनिपुंगव से मणिमाली को अपने पिता का अशेष वृत्तान्त ज्ञात हुआ।।३६।।

पिता की भक्ति से युक्त होकर उनकी मूर्च्छा को दूर करने के लिये वह बुद्धिमान उस अजगर के आगे खड़ा होकर स्नेहयुक्त वचन कहने लगा।।३७।।

हे पिता ! विषय और परिग्रह के दोष से तथा धन और ऋद्धियों की आसक्ति से तुम इस पतित अवस्था वाली कु-योनि को प्राप्त हुए हो।।३८।।

यह विषयरूपी विष अत्यन्त कटुक, दुर्जर और किम्पाकफल के समान होने से धिक्कारने योग्य है। अतः आप इसका परित्याग करो।।३९।।

अपने पुत्र द्वारा कथित धर्मवाक्यरूपी सूर्य के द्वारा उस अजगर का महा-मोहान्धकार नष्ट हो गया।।४०।।

३५ = ५/१२२ ३६ = ५/१२३ ३७ = ५/१२४
३८ = ५/१२५ ३९ = ५/१२६ ४० = ५/१३१

ततो धर्मौषधं प्राप्य स कृतानुशयः शयुः।
ववाम विषयौत्सुक्यं महाविषमिवोल्वणम्।।४१।।
स परित्यज्य संवेगादाहारं सशरीरकम्।
जीवितान्ते तनुं हित्वा दिविजोऽभून्महर्द्धिकः।।४२।।
ज्ञात्वा च भवमागत्य सम्पूज्य मणिमालिने।
मणिहारमदत्तासावुन्मिषन्मणिदीधितिम्।।४३।।
स एष भवतः कण्ठे हारो रत्नांशुभासुरः।
लक्ष्यतेऽद्यापि यो लक्ष्म्याः प्रहास इव निर्मलः।।४४।।
तथैवमपरं राजन् यथावृत्तं निगद्यते।
सन्ति यद्दर्शिनोऽद्यापि वृद्धाः केचन खेचराः।।४५।।
आसीच्छतबलो नाम्ना भवदीयः पितामहः।

उस अजगर ने धर्मरूपी औषधी को प्राप्त करके विगत जीवन का पश्चाताप किया तथा उसने महाविष के समान भयंकर विषयासक्ति को छोड़ दिया।।४१।।

संसार से भयभीत होकर उसने आहार और शारीरिक ममत्व छोड़ दिया। जीवन के अन्त में उसने अपने शरीर को भी छोड़ा और वह महान ऋद्धियों से सम्पन्न देव हुआ।।४२।।

अवधिज्ञान के द्वारा अपने भवों को जान कर वह मणिमाली के पास आया। उसने मणिमाली का सत्कार करके प्रकाशमान मणियों से युक्त एक रत्नहार भेंट किया।।४३।।

रत्नों की किरणों से युक्त तथा लक्ष्मी का भी उपहास करने वाला वह हार आज भी आपके गले में सुशोभित हो रहा है।।४४।।

हे राजन् ! अब मैं एक और वृत्तान्त कहता हूँ। उसके प्रत्यक्षदर्शी कितने ही वृद्धविद्याधर आज भी विद्यमान हैं।।४५।।

४१ = ५/१३४ ४२ = ५/१३५ ४३ = ५/१३६
४४ = ५/१३७ ४५ = ५/१३८ ४६ = ५/१३९

प्रजा राजन्वतीः कुर्वन् स्वगुणैराभिगामिकैः।।४६।।
स राज्यं सुचिरं भुक्त्वा कदाचिद्भोगनिःस्पृहः।
भवत्पितरि निक्षिप्त राज्यभारो महोदयः।।४७।।
सम्यग्दर्शनपूतात्मा गृहीतोपासकव्रतः।
निबद्धसुरलोकायुर्विशुद्धपरिणामतः।।४८।।
कृत्वानशनसच्चर्यामवमोदर्यमप्यदः।
यथोचितनियोगेन योगेनान्तेऽत्यजत्तनुम्।।४९।।
माहेन्द्रकल्पेऽनल्पर्द्धिरभूदेष सुराग्रणीः।
अणिमादिगुणोपेतः सप्ताम्बुधिमितस्थितिः।।५०।।
स चान्यदा महामेरौ नन्दने त्वामुपागतम्।
क्रीडाहेतोर्मया सार्धं दृष्ट्वातिस्नेहनिर्भरः।।५१।।
कुमार परमो धर्मो जैनाभ्युदयसाधनः।

शतबल नामके आपके दादा थे, जो अपने मनोहर गुणों से प्रजा को हमेशा सुयोग्य राजा से युक्त करते थे।।४६।।

उन महोदय ने चिरकाल तक राज्य भोगा तत्पश्चात् आपके पिता को राज्य का भार सौंप कर स्वयं भोगों से निःस्पृह हो गये।।४७।।

सम्यग्दर्शन से पवित्र होकर उन्होंने श्रावक के व्रत ग्रहण किये और विशुद्ध परिणामों के द्वारा देवायु का बन्ध कर लिया।।४८।।

उन्होंने अनशन, अवमौदर्य आदि तप को ग्रहण करके आयु के अन्त में यथोचित विधि से समाधिमरणपूर्वक शरीर का त्याग किया।।४९।।

वे महेन्द्रकल्प में महाऋद्धियों से सम्पन्न देव हुए। वहाँ वे अणिमादि गुणों से युक्त थे तथा उनकी आयु सात सागर थी।।५०।।

किसी दिन महामेरु के नन्दनवन में आप क्रीड़ा करने के लिये मेरे साथ गये थे। वहाँ वह देव भी आया। उसने अतिशय स्नेहपूर्वक आपका

४७ = ५/१४०	४८ = ५/१४१	४९ = ५/१४२
५० = ५/१४३	५१ = ५/१४४	५२ = ५/१४५

न विस्मार्यस्त्वयेत्येवं त्वां तदान्वशिषत्तराम्।।५२।।
नमत्खचरराजेन्द्रमस्तकारूढशासनः।
सहस्रबल इत्यासीद्भवत्पितृपितामह।।५३।।
स देवदेवे निक्षिप्य लक्ष्मीं शतबले सुते।
जग्राह परमां दीक्षां जैनीं निर्वाणसाधनीम्।।५४।।
क्रमात् कैवल्यमुत्पाद्य पूजितो नृसुरासुरैः।
ततोऽनन्तमपारं च सम्प्रापच्छाश्वतं पदम्।।५५।।
तथा युष्मत्पितायुष्मन् राज्यभूरिभरं वशी।
त्वयि निक्षिप्य वैराग्यात्महाप्राव्राज्यमास्थितः।।५६।।
पुत्रनप्तृभिरन्यैश्च नभश्चरनराधिपैः।
सार्द्धं तपश्चरन्नेष मुक्तिलक्ष्मीं जिघृक्षति।।५७।

कहा- हे कुमार ! जैनधर्म उत्तम धर्म है। यही अभ्युदय का साधन है। इसे तुम कभी भूलना मत।।५१,५२।।

हे राजन् ! आपके पिता के दादा का नाम सहस्रबल था, जिन्हें अनेक विद्याधर राजा नमस्कार करते थे तथा उनकी आज्ञा को मस्तक पर धारण किया करते थे।।५३।।

उन्होंने अपने पुत्र शतबल को राज्यलक्ष्मी देकर निर्वाण को साधने वाली परम दीक्षा ग्रहण कर ली।।५४।।

क्रम से केवलज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य, देव और असुरों के द्वारा पूजित होकर उन्होंने अनन्त, अपार और शाश्वत मोक्षपद प्राप्त किया।।५५।।

हे आयुष्मन् ! इसीप्रकार आपके इन्द्रियविजयी पिता ने आपको राज्य का भार सौंप कर वैराग्य के कारण उत्कृष्ट जिनदीक्षा धारण कर ली।।५६।।

उनके अन्य पुत्र, पौत्र और अन्य विद्याधर राजागण भी तपश्चरण करते हुए मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त करना चाहते हैं।।५७।।

५३ = ५/१४६	५४ = ५/१४७	५५ = ५/१४९
५६ = ५/१५०	५७ = ५/१५१	

विद्धि ध्यानचतुष्कस्य फलमेतन्निदर्शितम्।
पूर्वं ध्यानद्वयं पापं शुभोदर्कं परं द्वयम्।।५८।।
इति प्रतीतमाहात्म्यो धर्मोऽयं जिनदेशितः।
त्वयापि शक्तितः सेव्यः फलं विपुलमिच्छता।।५९।।
श्रुत्वोदारं च गम्भीरं स्वयम्बुद्धोदितं वचः।
सभा समाजयामास परमास्तिक्यमास्थिता।।६०।।
प्रशस्य खचराधीशः प्रतिपद्य च तद्वचः।
प्रीतः सम्पूजयामास स्वयम्बुद्धं महाधियम्।।६१।।
अथान्यदा स्वयम्बुद्धो महामेरुगिरिं ययौ।
विवन्दिषुर्जिनेन्द्राणां चैत्यवेश्मनि भक्तितः।।६२।।
स सौमनसपौरस्त्यदिग्भागजिनवेश्मनि।
कृतार्चनविधिर्भक्त्या प्रणम्य क्षणमासितः।।६३।।

ये चारों दृष्टान्त ध्यानचतुष्क का फल है - ऐसा जानो। पहले दो ध्यान पापरूप हैं और बाद के दो ध्यान पुण्यरूप हैं।।५८।।

इसप्रकार जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित धर्म का माहात्म्य जान कर यदि आप निर्दोष फल चाहते हैं तो आपको यथाशक्ति धर्मसेवन करना चाहिये।।५९।।

इसप्रकार स्वयम्बुद्ध मन्त्री के उदार एवं गम्भीर वचनों को सुन कर सभा आनन्दित हुई तथा परम आस्तिक्य भाव में स्थित हो गई।।६०।।

विद्याधर नरेश ने भी महाबुद्धि को धारण करने वाले स्वयम्बुद्ध की प्रशंसा करके उसके वचनों को स्वीकार किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उसका सत्कार किया।।६१।।

इसके बाद किसी दिन स्वयम्बुद्ध मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालय में विराजित जिनप्रतिमाओं की भक्तिपूर्वक वन्दना करने के लिये मेरुपर्वत पर गया। वन्दना के उपरान्त उसने सौमनस वन की पूर्व दिशा से सम्बन्धित

५८ = ५/१५३ ५९ = ५/१५५ ६० = ५/१५६
६१ = ५/१६० ६२ = ५/१६१ ६३ = ५/१६२

प्राग्विदेहमहाकच्छविषयारिष्टसत्पुरात्।
आगतौ सहसौक्षिष्ट मुनी गगनचारिणौ।।६४।।
आदित्यगतिमग्रण्यं तथारिञ्जयशब्दनम्।
युगन्धरमहातीर्थसरसीहंसनायकौ।।६५।।
तावभ्येत्य समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः।
पप्रच्छेति सुखासीनौ मनीषी स्व-मनीषितम्।।६६।।
अस्मत् स्वामी खगाधीशः ख्योतोऽस्तीह महाबलः।
स भव्यसिद्धिराहोस्विदभव्यः संशयोऽत्र मे।।६७।।
जिनोपदिष्टसन्मार्गमस्मद्वाक्यात् प्रमाणयन्।
स किं श्रद्धास्यते नेति जिज्ञासे वामनुग्रहात्।।६८।।

चैत्यालय में पूजा की तथा भक्तिपूर्वक प्रणाम करके क्षणभर के लिये वह वहीं बैठ गया।।६२, ६३।।

उतने में उसने देखा - पूर्व विदेह के महाकच्छ विषयक अरिष्टपुर नामक नगर से गगनचारी दो मुनि आये हैं।।६४।।

उनमें से एक आदित्यगति और दूसरे अरिंजय नाम को धारण करने वाले थे। वे दोनों ही युगन्धर स्वामी के समवसरणरूपी सरोवर के मुख्य हंस थे।।६५।।

अतिशय बुद्धिमान स्वयम्बुद्ध ने मुनिराज के सम्मुख जाकर उनको बार-बार प्रणाम किया और उनकी पूजा की। जब मुनिराज सुखपूर्वक बैठ गये तब उसने मुनिराज से पूछा।।६६।।

हे मुने ! इस लोक में अतिप्रसिद्ध, विद्याधरों का अधिपति राजा महाबल हमारा स्वामी है। वह भव्य है कि अभव्य है ? ऐसा मेरे मन में संशय है।।६७।।

जिनोपदिष्ट सन्मार्ग को बताने वाले हमारे वचनों को वह जैसे प्रमाण मानता है, वैसे ही श्रद्धान करेगा अथवा नहीं ? इसे मैं आपके प्रसाद से जानना चाहता हूँ।।६८।।

६४ = ५/१६३ ६५ = ५/१६४ ६६ = ५/१६५
६७ = ५/१६७ ६८ = ५/१६८

इति प्रश्नमुपन्यस्य तस्मिन् विश्रान्तिमीयुषि।
तयोरादित्यगत्याख्यः समाख्यदवधीक्षणः।।६९।।
भो भव्य भव्य एवासौ प्रत्येष्वति च ते वचः।
दशमे जन्मनीतश्च तीर्थकृत्वमवाप्स्यति।।७०।।
द्वीपे जम्बूमतीहैव विषये भारताह्वये।
जनितैष्यद्युगारम्भे भगवानादितीर्थकृत्।।७१।।
इतोऽतीतभवं चास्य वक्ष्ये श्रृणु समासतः।
धर्मबीजमनेनोप्तं यत्र भोगेच्छयान्वितम्।।७२।।
इहैवापरतो मेरोर्विदेहे गन्धिलाभिधे।
पुरे सिंहपुराभिख्ये पुरन्दरपुरोपमे।।७३।।
श्रीषेण इत्यभूद्राजा राजेव प्रियदर्शनः।
देवी च सुन्दरी तस्य बभूवात्यन्तसुन्दरी।।७४।।

इसप्रकार प्रश्न उपस्थित करके जब मन्त्री चुप हो गया, तब उन दोनों मुनियों में से आदित्यगति नामक अवधिज्ञानी मुनिराज कहने लगे।।६९।।

हे भव्य ! तुम्हारा स्वामी भव्य ही है। वह तुम्हारे वचनों पर विश्वास करेगा तथा दसवें भव में तीर्थंकर पद को भी प्राप्त करेगा।।७०।।

वह इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में युग के आरम्भ में ऐश्वर्य से सम्पन्न प्रथम तीर्थंकर होगा।।७१।।

अब मैं तुम्हें संक्षेप में उसके उस पूर्वभव का वर्णन करता हूँ, जिस भव में उसने भोगेच्छा के साथ-साथ धर्म का बीज बोया था। तुम सुनो।।७२।।

इसी जम्बूद्वीप में मेरु से पश्चिम की ओर गन्धिला नामक देश में सिंहपुर नामक नगर है। वह नगर इन्द्र के नगर के समान सुन्दर है।।७३।।

उस नगर में श्रीषेण नामक एक राजा हुआ। वह राजा सभी को अतिशय प्रिय था। उसकी अत्यन्त लावण्यवती सुन्दरी नामक स्त्री थी।।७४।।

६९ = ५/१९९ ७० = ५/२०० ७१ = ५/२०१ ७२ = ५/२०२
७३ = ५/२०३ ७४ = ५/२०४

जयवर्माह्वयः सोऽयं तयोः सूनुरजायत।
श्रीवर्मेति च तस्याभूदनुजो जनताप्रियः।।७५।।
जनानुरागमुत्साहं पिता दृष्ट्वा कनीयसि।
राज्यपट्टं बबन्धास्य ज्यायांसमवधीरयन्।।७६।।
जयवर्माथ निर्वेदं परं प्राप्य तपोऽग्रहीत्।
स्वयम्प्रभगुरोः पार्श्वे स्वमपुण्यं विगर्हयन्।।७७।।
नवसंयत एवासौ यान्तवृद्ध्या महीधरम्।
खे खेचरेशमुच्चक्षुर्वीक्ष्यासीत् सनिदानकः।।७८।।
महाखेचर भोगाहि भूयासुर्मेऽन्य जन्मनि।
इति ध्यायन्नसौ दष्टौ वल्मीकाद्भीमभोगिना।।७९।।
भोगं काम्यन्विसृष्टासुरिह भूत्वा महाबलः।

उन्हें पहले जयवर्मा नामक एक पुत्र हुआ। तत्पश्चात् उसका छोटा भाई श्रीवर्मा हुआ। वह जनता को प्रिय था।।७५।।

श्रीषेण ने मनुष्यों का अनुराग और उत्साह देख कर श्रीवर्मा के मस्तक पर राज्य का पट्ट बाँध दिया। इससे जयवर्मा की उपेक्षा हो गई।।७६।।

इस उपेक्षा से जयवर्मा निर्वेग (वैराग्य) को प्राप्त हुआ। उसने अपने पापों की निन्दा करते हुए स्वयम्प्रभ गुरु के सन्निकट तप को ग्रहण कर लिया।।७७।।

जब वह नवीन संयमी ही था तब उसने विभूति के साथ आकाश में जाते हुए महीधर नामक विद्याधर को देखा।।७८।।

मुझे अन्य जन्म में विद्याधरों के यथेच्छ भोग प्राप्त हो - ऐसा उसने निदान कर लिया। उसीसमय बामी से निकल कर एक भयंकर सर्प ने उसे डस लिया।।७९।।

७५ = ५/२०५ ७६ = ५/२०७ ७७ = ५/२०८
७८ = ५/२०८ ७९ = ५/२१० ८० = ५/२११

सोऽनाशीतं भवान् भोगान् भुङ्क्तेऽद्य खचरोचितान्।।८०।।
सोऽद्य रात्रौ समैक्षिष्ट स्वप्ने दुर्मन्त्रिभिस्त्रिभिः।
निमज्यमानमात्मानं बलात्पङ्के दुरुत्तरे।।८१।।
ततो निर्भर्त्स्य तान् दुष्टान् दुःपङ्कादुद्धृतं त्वया।
अभिषिक्तं समैक्षिष्ट निविष्टं हरिविष्टरे।।८२।।
दीप्तामेकां च स ज्वालां क्षीयमाणामनुक्षणम्।
क्षणप्रभामिवालोलामपश्यत् क्षणदाक्षये।।८३।।
दृष्ट्वा स्वप्नावति स्पष्टं त्वामेव प्रतिपालयन्।
आस्ते तस्मात्त्वमाश्वेव गत्वैनं प्रतिबोधय।।८४।।
स्वप्नद्वयमदः पूर्वं त्वत्तः श्रुत्वातिविस्मितः।
प्रीतो भवद्वचः कृत्स्नं स करिष्यत्यसंशयम्।।८५।।

वह भोगेच्छा के साथ मरण को प्राप्त हो गया था। अतः महाबल होकर वह कभी तृप्ति को न देने वाले विद्याधरों के भोगों को भोग रहा है।।८०।।

आज रात्रि में उसने स्वप्न देखा है कि तुम्हारे अतिरिक्त तीनों दुष्ट मन्त्रियों ने उसे जबरदस्ती भारी कीचड़ में फँसा दिया है।।८१।।

तुमने उन तीनों ही मन्त्रियों की भर्त्सना करके उसे कीचड़ से निकाला तथा सिंहासन पर बिठा कर उसका अभिषेक किया है।।८२।।

उसने दूसरे स्वप्न में देखा है कि अग्नि की एक प्रदीप्त ज्वाला बिजली के समान चंचल और प्रतिक्षण क्षय हो रही है। ये स्वप्न उसने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखे हैं।।८३।।

इन स्वप्नों को स्पष्टरूप से देख कर वह तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हुआ है। अतः तुम शीघ्र ही जाकर उसे समझाओ।।८४।।

उसके पूछने से पहले ही तुम्हारे द्वारा दोनों स्वप्नों को सुन कर उसे आश्चर्य होगा और वह प्रसन्न होकर तुम्हारे वचनों को स्वीकार करेगा।।८५।।

८१ = ५/२१३ ८२ = ५/२१४ ८३ = ५/२१५
८४ = ५/२१६ ८५ = ५/२१७

विद्धि तद्भाविपुण्यर्द्धिं पिशुनं स्वप्नमादिमम्।
द्धितीयं च तदीयायुरतिह्रास निवेदकम्।।८६।।
मासमात्रावशिष्टं च जीवितं तस्य निश्चिनु।
तदस्य श्रेयसे भद्र घटेथास्त्वमशीतकः।।८७।।
इत्युदीर्य ततोऽन्तर्द्धिमगात्सोऽम्बरचारणः।
समं सधर्मणादित्यगतिराशास्य मन्त्रिणम्।।८८।।
सत्वरं च समासाद्य तं च दृष्ट्वा महाबलम्।
चारणर्षिवचोऽशेषमाख्यत्स्वप्नफलावधि।।८९।।
ततः स्वायुः क्षयं बुद्ध्वा स्वयम्बुद्धान्महाबलः।
तनुत्यागे मतिं धीमानधत्त विधिवत्तदा।।९०।।
कृत्वाष्टाह्निकमिद्धर्द्धिः महामहमहापयत्।

पहले स्वप्न का फल उसके आगामी भव में प्राप्त होने वाली निःसंशय विभूति का सूचक है और दूसरे स्वप्न का फल आयु के अतिशय ह्रास को बताता है - ऐसा तुम जानो।।८६।।

अब उसकी आयु निश्चित रूप से मात्र एक माह की शेष रह गयी है। अतः हे भद्र ! तुम प्रमाद मत करो। उसके कल्याणार्थ शीघ्र प्रयत्न करो।।८७।।

ऐसा कह कर और मन्त्री को आशीर्वाद देकर वे गगनगामी मुनिराज अपने साथी मुनि अरिंजय के साथ अन्तर्द्धान हो गये।।८८।।

मन्त्री ने तत्काल ही महाबल के पास जाकर तथा उसे अपनी प्रतीक्षा में बैठा हुआ देख कर स्वप्न के फलपर्यन्त विषयों को बताने वाले ऋषिराज के वचन सुनाये।।८९।।

स्वयम्बुद्ध से अपनी आयु के क्षय को जान कर बुद्धिमान महाबल ने विधिवत् शरीर का त्याग करने का मानस बनाया।।९०।।

८६ = ५/२२० ८७ = ५/२२१ ८८ = ५/२२२
८९ = ५/२२४ ९० = ५/२२६ ९१ = ५/२२७

दिवसान् स्वगृहोद्यानजिनवेश्मनि भक्तितः।।९१।।
सुतायातिबलाख्याय दत्वा राज्यं समृद्धिमत्।
द्वाविंशतिदिनान्येष कृतसल्लेखनाविधिः।।९२।।
भावितात्मासुखं प्राणानौज्झत्सन्मन्त्रिसाक्षिकम्।
प्रापत्स कल्पमैशानमनल्पसुखसन्निधिम्।।९३।।
तत्रोपपादशय्यायामुदपादि महोदयः।
विमाने श्रीप्रभे रम्ये ललिताङ्गः सुरोत्तमः।।९४।।
नवयौवनपूर्णो ना सर्वलक्षणसम्भृतः।
सुप्तोत्थितो यथाभाति तथा सोऽन्तर्मुहूर्त्ततः।।९५।।
निष्टप्तकनकच्छायः सप्तहस्तोच्च विग्रहः।
वस्त्राभरणमालाद्यैः सहजैरेव भूषितः।।९६।।

महाऋद्धियों से सम्पन्न राजा अपने घर के बगीचे के जिनालय में भक्तिपूर्वक अष्टाह्निका महापूजा करके वहीं अपना दिन व्यतीत करने लगा।।९१।।

उसने अपना समृद्ध राज्य अपने पुत्र अतिबल को सौंप दिया। वह बाईस दिनों तक सल्लेखना की विधि का आचरण करता रहा।।९२।।

अपने शुद्धात्मस्वरूप की भावना रखते हुए मन्त्री की साक्षी में उसने सुखपूर्वक प्राणों का त्याग किया और वह महासुख के भण्डाररूप ऐशान स्वर्ग को प्राप्त हुआ।।९३।।

वहाँ वह श्रीप्रभ नामक अतिशय रम्य विमान में उपपाद शय्या पर महा-ऋद्धियों का धारक ललितांग नामक उत्तम देव हुआ।।९४।।

वह देव अन्तर्मुहूर्त मात्र में ही नवयौवन से तथा सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो गया। वह ऐसा शोभित हुआ मानो अभी-अभी सोकर उठा हो।।९५।।

उसका वर्ण तपाये हुए सोने के समान कान्ति से युक्त था। वह सात हाथ ऊँचे शरीर को धारण करता था। वह वस्त्र, आभूषण और माला आदि से विभूषित था।।९६।।

९२ = ५/२२८-२४८ ९३ = ५/२५०-२५३ ९४ = ५/२५४
९५ = ५/२५६ ९६ = ५/२७८

भेजे वर्षसहस्रेण मानसीं स तनुस्थितिम्।
पक्षेणैकेन चोच्छ्वासं प्रवीचारोऽस्य कायिकः।।९७।।
पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टमायुर्यदास्य च।
तदोदपादि पुण्यैः स्वैः प्रेयस्यस्य स्वयम्प्रभा।।९८।।
स तया मन्दरेकान्तचन्द्रकान्तशिलातले।
भोगभूम्यादि देशेषु दिव्यं देवोऽवसत्सुखम्।।९९।।
(छन्द = मालिनी)
इति परममुदारं दिव्यभोगं महर्द्धिः,
सममसरवधूभिः सोऽन्वभूदद्भुतश्रीः।
स्मितहसितविलासस्पष्टचेष्टाभिरिष्टम्,
स्वकृत सुकृतपाकात् साधिकं वाब्धिमेकम्।।१००।।
इति श्रीपुराण समाम्नाये द्वितीयं पर्व।

वह एक हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करता था। पन्द्रह दिनों में एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था तथा कायप्रवीचार किया करता था।।९७।।

जब उसकी आयु पल्यपृथक्त्वप्रमाण अवशिष्ट रह गयी तब उसके पुण्योदय से उसे स्वयम्प्रभा नामक प्रिय पत्नी प्राप्त हुई।।९८।।

वह देव उस स्वयम्प्रभा देवी के साथ कभी चन्द्रकान्त की शिलाओं से युक्त मन्दर पर्वत पर और कभी भोगभूमि आदि प्रदेशों में दिव्य सुख भोगता हुआ निवास करता था।।९९।।

इसप्रकार महान ऋद्धियों का धारक, अतिशय शोभा से सम्पन्न वह देव पूर्वजन्म में अपने द्वारा उपार्जित किये गये पुण्यकर्म के उदय से स्मित हास्य और विलास आदि के द्वारा स्पष्ट चेष्टा करने वाली अनेक देवांगनाओं के साथ कुछ अधिक एक सागर पर्यन्त अपनी इच्छानुसार उदार और उत्कृष्ट भोग भोगता रहा।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण का दूसरा पर्व समाप्त हुआ।

९७ = ५/२८० ९८ = ५/२८६ ९९ = ५/२९०-२९२
१०० = ५/२९३

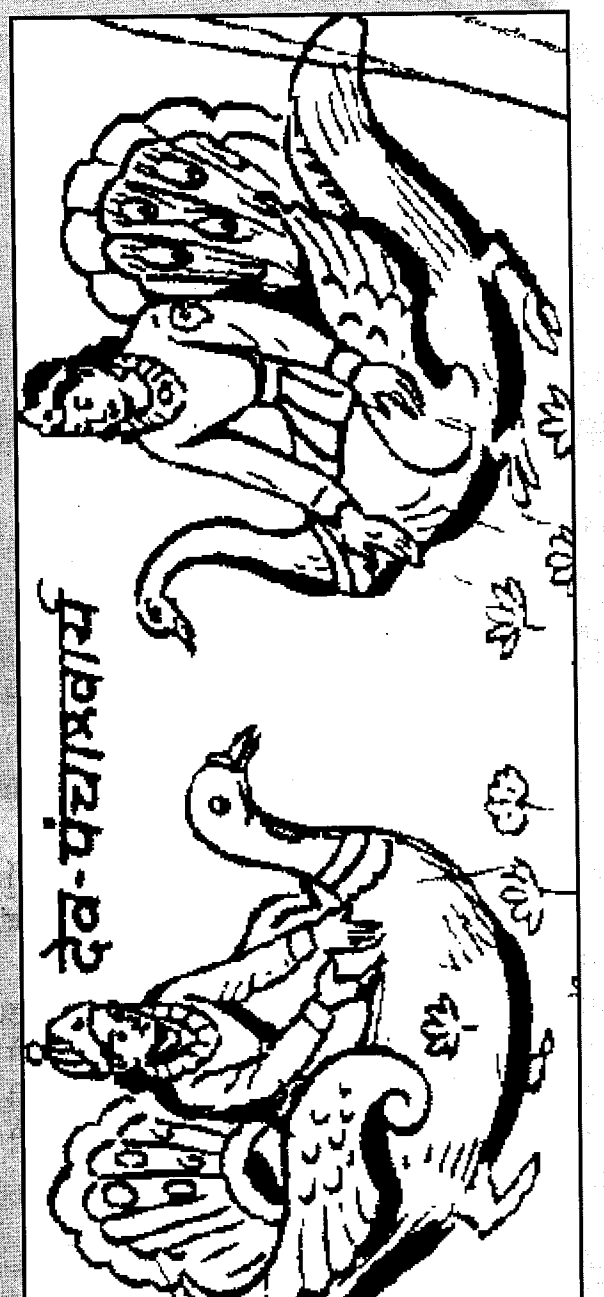

ललितांग देव एवं स्वयम्प्रभा

तृतीय पर्व

(आदिनाथ का पूर्वभव–ललितांग एवं स्वयम्प्रभा)

- ललितांग व स्वयम्प्रभा को स्वर्ग से च्युति
- वज्रजंघ एवं श्रीमती
- वज्रगदंत का दिग्विजय

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

तृतीयं पर्व

कदाचिदथ तस्यासन् भूषासम्बन्धिनोऽमलाः।
मणयस्तेजसा मन्दा निशापायप्रदीपवत्।।१।।
माला च सहजा तस्य महोरः स्थलसङ्गिनी।
म्लानिमागादमुष्येव लक्ष्मीर्विश्लेषभीलुका।।२।।
प्रचकम्पे तदावाससम्बन्धी कल्पपादपः।
तद्वियोगमहावातधूतः साध्वसमादधत्।।३।।
तनुच्छाया च तस्यासीत् सद्यो मन्दायिता तदा।
पुण्यातपत्रविश्लेषे तच्छाया क्वावतिष्ठताम्।।४।।

श्रीपुराणम्

तीसरा अधिकार

किसीदिन उस ललितांग के आभूषण विषयक निर्मलमणि अचानक प्रातःकालीन दीपक के समान निस्तेज हो गयी।।१।।

जन्मकाल से ही उसके विशाल वक्षस्थल पर पड़ी हुई माला ऐसी म्लान हो गयी मानो उसके वियोग के भय से भयभीत होकर उसकी लक्ष्मी ही म्लान हो गयी हो।।२।।

उसके विमान में स्थित कल्पवृक्ष भी ऐसे कम्पित होने लगे जैसे उसके वियोगरूपी महावायु से वे भयभीत हो गये हो।।३।।

उससमय उसकी शरीर की कान्ति भी मन्द हो गयी थी, सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यरूपी छत्र का अभाव होने पर उस छत्र की छाया कैसे रह सकती है ? अर्थात् नहीं रह सकती।।४।।

१ = ६/१ २ = ६/२ ३ = ६/३ ४ = ६/४

आजन्मनो यदेतेन निर्विष्टं सुखमामरम्।
तत्तदा पिण्डितं सर्वं दुःखभूयमिवागमत्।।७।।
अथ सामानिका देवास्तमुपेत्य तथोचितम्।
तद्विषादापनोदीदं पुष्कलं वचनं जगुः।।६।।
भो धीर ! धीरतामेव भावयाद्य शुचं त्यज।
जन्ममृत्युजरातङ्कभयानां को न गोचरः।।७।।
यथोदितस्य सूर्यस्य निश्चितोऽस्तमयः पुरा।
तथा पातोन्मुखः स्वर्गे जन्तोरभ्युदयोऽप्ययम्।।८।।
तस्मान्मा स्म गमः शोकं कुयोन्यावर्त्तपातिनम्।
धर्मे मतिं निधत्स्वार्य धर्मो हि शरणं परम्।।९।।
इति तद्वचनाद्धैर्यमवलम्ब्य स धर्मधीः।
मासार्द्धं भुवने कृत्स्ने जिनवेश्मान्यपूजयत्।।१०।।

उससमय ऐसा ज्ञात होने लगा कि उस देव ने आजीवन जो भोग भोगे हैं, वे सभी दुःख बन कर ही आये हों।।७।।

सामानिक देवों ने उसके समीप आकर यथोचित और दुःख को दूर करने वाले अनेक वचन कहे।।६।।

हे धीर ! आप धीरता को धारणा करो और शोक को छोड़ दो। ये जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा रोग और भय किसे प्राप्त नहीं होते ? अर्थात् सबको ही प्राप्त होते हैं।।७।।

जैसे उदित हुए सूर्य का अस्त होना निश्चित है, उसीप्रकार स्वर्ग में प्राप्त हुए अभ्युदय का पतन होना निश्चित है।।८।।

अतः आप कुयोनि के आवर्त्त में गिराने वाले शोक को प्राप्त मत होइये, धर्म में अपना मन लगाइये, क्योंकि धर्म ही परम शरण है।।९।।

इसप्रकार सामानिक देवों के वचनों को सुन कर ललितांग देव ने धर्म में बुद्धि लगायी तथा पन्द्रह दिनों तक लोक के समस्त जिनालयों की पूजन की।।१०।।

५ = ६/७ ६ = ६/९ ७ = ६/१०
८ = ६/१९ ९ = ६/२० १० = ६/२३

ततोऽच्युतस्य कल्पस्य जिनबिम्बानि पूजयन्।
तच्चैत्यद्रुममूलस्थः स्वायुरन्ते समाहितः।।११।।
नमस्कारपदान्युच्चैरनुध्यायन्नसाध्वसः।
साध्वसौ मुकुलीकृत्य करौ प्रायाददृश्यताम्।।१२।।
जम्बूद्वीपे महामेरोर्विदेहे पूर्वदिग्गते।
या पुष्कलावतीत्यासीत् जानभूमिर्मनोरमा।।१३।।
स्वर्गभूनिर्विशेषां तां पुरमुत्पलखेटकम्।
भूषयत्युत्पलच्छन्नशालिवप्रादिसम्पदा।।१४।।
वज्रबाहुः पतिस्तस्य वज्रीवज्ञापरोऽभवत्।
कान्ता वसुन्धरास्यासीद् द्वितीयेव वसुन्धरा।।१५।।
तयोः सूनुरभूद्देवो ललिताङ्गस्ततश्च्युतः।
वज्रजङ्घ इति ख्यातिं दधदन्वर्थतां गताम्।।१६।।

फिर अच्युत स्वर्गस्थ जिनप्रतिमाओं की पूजा करता हुआ आयु के अन्त में वह सावधान चित्त वाला होकर चैत्यवृक्ष के नीचे बैठ गया।।११।।

वही निर्भयतापूर्वक हाथ जोड़ कर उच्च स्वर से णमोकार मन्त्र का अच्छी तरह उच्चारण करता हुआ अदृश्य हो गया।।१२।।

इसी जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की पूर्व दिशा में स्थित विदेह नामक क्षेत्र में अत्यन्त मनोहर पुष्कलावती नामक देश है।।१३।।

वह देश स्वर्गभूमि के समान सुन्दर है। उसी देश में एक उत्पलखेट नामक नगर है, जो शक्ति आदि की शोभा से देश को भूषित करता है।।१४।।

वज्रबाहु उस नगर का राजा था, जो इन्द्र के समान आदेश चलाने में सदा तत्पर था। उसकी रानी का नाम वसुन्धरा था, वह ऐसी थी मानो स्वयं दूसरी वसुन्धरा ही हो।।१५।।

वह देव स्वर्ग से च्युत होकर वज्रबाहु और वसुन्धरा के वज्र के समान जंघाओं को धारण करने वाला वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ।।१६।।

११ = ६/२४ १२ = ६/२५ १३ = ६/२६
१४ = ६/२७ १५ = ६/२८ १६ = ६/२९

स तथापि कृतप्रज्ञो यौवनं परमापिवान्।
स्वयम्प्रभानुरागेण प्रायोऽभूत् स्त्रीषु निःस्पृहः।।१७।।
अथ स्वयम्प्रभादेवी तस्मिन् प्रच्युतिमीयुषि।
तद्वियोगाच्चिरं खिन्ना चक्राह्वेव विभर्त्तृका।।१८।।
ततोऽस्या दृढधर्माख्यो देवोऽन्तः परिषद्भवः।
शुचं व्यपोह्य सन्मार्गे मतिमासञ्जयत्तराम्।।१९।।
ततः सौमनसोद्यानपूर्वदिग्जिनमन्दिरे।
मूले चैत्यतरोः सम्यक् स्मरन्ति गुरुपञ्चकम्।।२०।।
समाधिना कृतप्राणत्यागा प्राच्योष्ट सा दिवः।
तारकेव निशापाये सहसादृश्यतां गता।।२१।।
प्राग्भाषिते विदेहेऽस्ति नगरी पुण्डरीकिणी।
तस्याः पतिरभून्नाम्ना वज्रदन्तो महीपतिः।।२२।।

यद्यपि वह बुद्धिमान वज्रजंघ श्रेष्ठ यौवन को प्राप्त हो चुका था, तथापि स्वयम्प्रभा के अनुराग से वह अन्य स्त्रियों में निःस्पृह ही रहता था।।१७।।

उधर ललितांग देव के स्वर्ग से च्युत हो जाने से वह स्वयम्प्रभा देवी उसके वियोग में चकवा के बिना चकवी की तरह अत्यन्त खेद से युक्त हुई।।१८।।

उसकी अन्तःपरिषद के सदस्य दृढ़धर्म नामक देव ने उसके शोक को दूर कर उसकी मति सन्मार्ग में लगायी।।१९।।

सौमनस वनविषयक पूर्वदिशावर्ती जिनमन्दिर में चैत्यवृक्ष के नीचे पंचगुरुओं का स्मरण करते हुए स्वयम्प्रभा समाधिपूर्वक प्राणों का परित्याग कर स्वर्ग से च्युत हो गयी। वह रात्रि का अन्त होने पर तारिका की तरह सहसा अदृशता को प्राप्त हुई।।२०,२१।।

पूर्वकथित विदेह क्षेत्र में एक पुण्डरीकिणी नगरी है। उस नगरी का राजा वज्रदन्त था।।२२।।

१७ = ६/४८ १८ = ६/५० १९ = ६/५३
२० = ६/५६ २१ = ६/५७ २२ =६/५८

लक्ष्मीरिवास्य कान्ताङ्गी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया।
स तया कल्पवल्ल्येव सुरागोलङ्कृतो नृपः।।२३।।
तयोः पुत्री बभूवासौ विश्रुता श्रीमतीति या।
पताकेव मनोजस्य रूपसौन्दर्यलीलया।।२४।।
अथान्येद्युरसौ सुप्ता हर्म्ये हंसांशुनिर्मले।
पराघ्र्यरत्नसंशोभे स्वर्विमानापहासिनि।।२५।।
तदैतदभवत्तस्याः संविधानकमीदृशम्।
यशोधरगुरोस्तस्मिन् पुरे कैवल्यसम्भवे।।२६।।
मनोहराख्यमुद्यानमध्यासीनं तमर्चितुम्।
देवाः सम्प्रापुरारूढविमानाः सहसम्पदा।।२७।।
दंध्वनद् दुन्दुभिध्वानैररुध्यन्त दिशो दश।
सुराणां प्रमदोद्भूतो महान् कलकलोऽप्यभूत्।।२८।।

उसकी लक्ष्मी के समान सुन्दर लक्ष्मीमती नामक रानी थी। वह राजा उस रानी के साथ ऐसा शोभित होता था, जैसे कल्पलता के साथ कल्पवृक्ष ही हो।।२३।।

स्वयम्प्रभा का जीव उस राजा और रानी के श्रीमती नाम से प्रसिद्ध पुत्री हुआ। वह श्रीमती कामदेव की पताका के समान रूप और सौन्दर्य की लीला से युक्त थी।।२४।।

एकबार श्रीमती सूर्य की किरणों के समान निर्मल, मूल्यवान रत्नों से शोभित तथा स्वर्गविमान को भी लजाने वाले राजभवन में सो रही थी।।२५।।

उसीसमय इससे सम्बन्ध रखने वाली एक घटना घटित हुई। उसी नगर के मनोहर उद्यान में विराजित यशोधर नामक मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। नवीन केवली की पूजा करने के लिये देव अपने वैभव के साथ विमान पर आरूढ़ होकर पूजा करने आये।।२६,२७।।

बजते हुए दुन्दुभि बाजों के शब्दों से दसों दिशाओं को व्याप कर रहता हुआ देवों के हर्ष से उत्पन्न होने वाला भारी कोलाहल हो रहा था।।२८।।

२३ = ६/५९ २४ = ६/६० २५ = ६/८४
२६ = ६/८५ २७ = ६/८६ २८ = ६/८९

सा तदा तद्ध्वनिं श्रुत्वा निशान्ते सहसोत्थिता।
भेजे हंसीव सन्त्रासं श्रुतर्पजन्यनिःस्वना।।२९।।
देवागमेक्षणात्तस्याः प्राग्जन्मस्मृतिराश्वभूत्।
सा स्मृत्वा ललिताङ्गं तं मुमूर्च्छोत्कण्डिका मुहुः।।३०।।
सखीभिरथ सोपायमाश्वास्य व्यजनानिलैः।
प्रत्यापत्तिं समानीता साभूद्भूयोऽप्यवाङ्मुखी।।३१।।
ततः पर्याकुलाः सत्यस्तमुदन्तमशेषतः।
गत्वा पितृभ्यामाचख्युः सख्यो वर्षधरैः समम्।।३२।।
तद्धार्तार्कर्णनात्तूर्णं तदभ्यर्णमुपागतौ।
पितरौ तदवस्थां च दृष्ट्वैनां शुचमीयतुः।।३३।।
अङ्कपुत्रिपरिष्वङ्गं विधेह्युत्सङ्गमेहि नौ।
इति निर्बध्यमानापि मोमुह्यैव यदास्त सा।।३४।।

प्रातःकाल में अकस्मात् उस कोलाहल को सुन कर वह (श्रीमती) उठी। तथा मेघों की गर्जना सुन कर भयभीत हुई हंसिनी के समान भय को प्राप्त हुई।।२९।।

उससमय देवों के आगमन को देख कर उसे जातिस्मरण हो गया। वह ललितांग देव का स्मरण करके बार-बार उत्कण्ठित होती हुई मूर्च्छित हो गयी।।३०।।

उसकी सखियों ने तत्काल पंखे की वायु से आश्वासन देकर उसे सचेत किया, फिर भी उसने उपना मुँह ऊपर नहीं उठाया।।३१।।

तदनन्तर आकुल हुई सखियों ने पहरेदारों के साथ जाकर माता-पिता से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।।३२।।

उस वार्त्ता को सुन कर माता-पिता शीघ्र ही श्रीमती के पास गये और उसकी अवस्था को देख कर दुःखित हुए।।३३।।

हे पुत्री ! हमारा आलिंगन कर, गोद में आ, इसप्रकार बार-बार समझाये जाने पर भी श्रीमती मूर्च्छित हो मौन से ही बैठी रही।।३४।।

२९ = ६/९० ३० = ६/९१ ३१ = ६/९२
३२ = ६/९५ ३३ = ६/९६ ३४ = ६/९७

लक्ष्मीमतिमथोवाच प्रभुरिङ्गित कोविदः।
प्राग्जन्मानुभवः कोऽपि नूनमस्या हृदिस्थितः।।३५।।
इति ब्रुवाण एवासावुत्तस्थौ सहकान्तया।
नियोज्य पण्डितां धात्रीं कन्याश्वासनसंविधौ।।३६।।
तदा कार्यद्वयं तस्य युगपत्समुपस्थितम्।
कैवल्यं स्वगुरोश्चक्रसम्भूतिश्चायुधालये।।३७।।
तत्कार्यद्वैतमासाद्य बभूव क्षणमाकुलः।
प्राग्विधेयं किमत्रेति स निश्चेतुमशक्नुवन्।।३८।।
ततः किमत्र कर्त्तव्यमित्यसौ सम्प्रधारयन्।
गुरोः कैवल्यसम्पूजामादौ निश्चितवान् सुधीः।।३९।।
ततः पृतनया सार्द्धमुपसृत्य जगद्गुरुम्।
पूजयामास सम्प्रीतिप्रोत्फुल्लमुखपङ्कजः।।४०।।

तब समस्त चेष्टाओं और मन के विकारों को जानने वाले राजा ने लक्ष्मीमती से कहा – निश्चय ही आज इसे किसी पूर्वभव का स्मरण हुआ है।।३५।।

यह कह कर राजा ने कन्या को आश्वासन देने के लिये पण्डिता नामा धाय को नियुक्त किया और अपनी कान्ता के साथ उठ खड़े हुए।।३६।।

उससमय राजा के सामने एक साथ दो कार्य उपस्थित हुए। अपने गुरु की कैवल्य पूजा करना और आयुधशाला में प्रकट हुए चक्र को लेकर दिग्विजय के लिये जाना।।३७।।

दोनों कार्यों का प्रसंग एकसाथ आने पर राजा क्षण भर पहले क्या करना चाहिये ? यह सोच कर आकुलित हुआ।।३८।।

इसमें पहले किसे करना चाहिये ? ऐसा विचार करते हुए उस बुद्धिमान ने आरम्भ में गुरु की कैवल्यपूजा को करने का निश्चय किया।।३९।।

तदनन्तर सेना के साथ जाकर उसने जगद्गुरु की पूजा की। पूजा करते समय उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया था।।४०।।

३५ = ६/९८-१०१	३६ = ६/१०२	३७ = ६/१०३
३८ = ६/१०४	३९ = ६/१०५	४० = ६/१०९

तत्पादौ प्रणमन्नेव सो लब्धावधिमिद्धधीः।
विशुद्धपरिणामेन भक्तिः किं न फलिष्यति।।४१।।
तेनावबुद्धाच्युतेन्द्रत्वमात्मनः प्राक्तने भवे।
ललिताङ्गप्रियायाश्च दुहितृत्वमिहाञ्जसा।।४२।।
चक्रपूजां ततः कृत्वा चक्री शक्रसमद्युतिः।
प्रास्थितासौ दिशो जेतुं ध्वजिन्या सषडङ्गया।।४३।।
अथ पण्डितिकान्येद्युर्निपुणा निपुणं वचः।
श्रीमत्याः प्रतिबोधाय रहस्येवमभाषत।।४४।।
अहं पण्डितिका सत्यं पण्डिताकार्ययुक्तिषु।
जननीनिर्विशेषास्मि तव प्राणसमा सखी।।४५।।
ततो ब्रूहि मिथः कन्ये धन्ये त्वन्मौनकारणम्।

महाबुद्धिमान राजा ने जिनेन्द्रदेव के चरणों में ज्यों ही प्रणाम किया, त्यों ही उसे अवधिज्ञान हो गया। विशुद्ध परिणामों से युक्त होकर की गई भक्ति क्या फलवती नहीं होती है ? अर्थात् अवश्य ही फलती है।।४१।।

उस अवधिज्ञान के द्वारा राजा ने जान लिया कि मैं पूर्वभव में अच्युतेन्द्र था। मेरी पुत्री श्रीमती ललितांग देव की स्वयम्प्रभा नामक प्रिया थी।।४२।।

शक्र के समान कान्ति वाला वह चक्रवर्ती चक्रपूजा करने के बाद अपनी षडंग सेना के साथ दिशाओं को जीतने के लिये चला गया।।४३।।

विशेष :- सेना के छह अंग होते हैं। उसके समूह को षडंगसेना कहते हैं। सेना के षडंग हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे, देव और विद्याधरों की सेना है।

उसके कुछ दिन व्यतीत होने पर एकदिन अतिशय चतुर पण्डिता धाय एकान्त में श्रीमती को समझाने के लिये चातुर्य से भरे हुए वचन कहने लगी।।४४।।

मैं समस्त कार्यों की योजना करने में पण्डिता ही हूँ। मैं तुम्हारी माता के समान हूँ और तुम्हारी प्राणसखी भी हूँ।।४५।।

४१ = ६/११०	४२ = ६/१११	४३ = ६/११३
४४ = ६/११४	४५ = ६/११७	४६ = ६/११८-१२१

इति पृष्टा तथा किञ्चिदानम्य मुखपङ्कजम्।।४६।।
जगाद श्रीमती सत्यं न शक्तास्मीदृशं वचः।
कस्यापि पुरतो वक्तुं लज्जाविवशमानसा।।४७।।
किन्तु तेऽद्य पुरो नाहं जिह्रेम्यार्त्तालपन्त्यलम्।
जननी निर्विशेषा त्वं चिरं परिचिता च मे।।४८।।
तद्वक्ष्ये शृणु सौम्याङ्गि महतीयं कथा मम।
मया प्राग्जन्मचरितं स्मृतं देवागमेक्षणात्।।४९।।
तत्कीदृशं कथा वेति सर्वं वक्ष्ये सविस्तरम्।
स्वप्नानुभूतमिव मे स्मृतौ तत्प्रतिभासते।।५०।।
अहं पूर्वभवेऽभूवं धातकीखण्डनामनि।
महाद्वीपे सरोजाक्षि स्वर्गभूम्यतिशायिनी।।५१।।

इसीलिये हे धन्ये ! तू मुझे अपने मौन का कारण बता। इसप्रकार पूछे जाने पर श्रीमती ने अपना मुख कुछ नीचे कर लिया।।४६।।

उसने कहा - यह सत्य है कि मैं ऐसे वचन किसी के समक्ष नहीं कह सकती हूँ, क्योंकि मेरा मन लज्जा के कारण पराधीन हो रहा है।।४७।।

किन्तु, तुम्हारे समक्ष कहने में मैं लज्जित नहीं हो रही हूँ, क्योंकि इससमय मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम मेरी माता के समान हो और मेरी चिरपरिचिता भी हो।।४८।।

हे सौम्यांगी ! मैं कहती हूँ, तुम सुनो। मेरी कथा बहुत बड़ी है। देवों का आगमन हुआ देख कर मुझे अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया है।।४९।।

पूर्वभव का चारित्र कैसा है ? अथवा वह कथा कैसी है ? उसे मैं विस्तार से कहती हूँ। वह सम्पूर्ण विषय मेरी स्मृति में अनुभव किये के समान प्रतिभासित हो रहा है।।५०।।

मध्यलोक में धातकीखण्ड नामक द्वीप है, जिसकी शोभा स्वर्गभूमि को भी तिरस्कृत करती है।।५१।।

४७ = ६/१२२ ४८ = ६/१२३ ४९ = ६/१२४
५० = ६/१२५ ५१ = ६/१२६

तत्रास्ति मन्दरात्पूर्वाद्धिदेहे प्रत्यगाश्रिते।
विषयो गन्धलाभिख्यो यः कुरूनपि निर्जयेत्।।५२।।
तत्रासीत् पाटलीग्रामे नागदत्तो वाणिक् सुतः।
सुमतिस्तस्यकान्ताभूत्तयोर्जाताः सुता इमे।।५३।।
नन्दश्च नन्दिमित्रश्च नन्दिषेणाह्वयः परः।
वरसेनो जयादिश्च सेनस्तत् सूनवः क्रमात्।।५४।।
पुत्रिके च तयोर्जाते मदनश्रीपदादिके।
कान्ते तयोरहं जाता निनमिति कनीयसी।।५५।।
कदाचित् कानने रम्ये चरिते चारणादिके।
गिरावम्बरपूर्वेऽहं तिलके पिहितास्रवम्।।५६।।
नानर्द्धिभूषणं दृष्ट्वा मुनिं सावधिबोधनम्।
इदमप्राक्षमानम्य सम्बोध्य भगवन्निति।।५७।।

उस द्वीप के पूर्वमेरु से पश्चिम में स्थित विदेह क्षेत्र में गन्धिला नामका एक देश है, जो अपनी शोभा के द्वारा देवकुरु और उत्तरकुरु की शोभा को भी जीत लेता है।।५२।।

उसमें पाटली नामका गाँव है। उस गाँव में नागदत्त नामक वणिक्पुत्र रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुमति था।।५३।।

नन्द, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, वरसेन और जयसेन ये उनके पुत्रों के क्रम से नाम थे।।५४।।

उनकी मदनकान्ता और श्रीकान्ता नामक दो पुत्रियाँ हुई। पूर्वभव में मैं उन्हीं के यहाँ निर्नामा नामक छोटी पुत्री हुई।।५५।।

किसीदिन मैंने चारणचरित नामक मनोहर वन में अम्बरतिलक नामक पर्वत पर पिहितास्रव नामक अवधिज्ञान से युक्त तथा अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न मुनिराज के दर्शन किये। दर्शन करने के बाद मैंने उनसे पूछा - हे भगवन् ! मैं पूर्वजन्म के किस कर्म के उदय से इस दरिद्र कुल में उत्पन्न

५२= ६/१२७ ५३ = ६/१२८ ५४ = ६/१२९
५५ = ६/१३० ५६ = ६/१३१ ५७ = ६/१३२

केनास्मि कर्मणा जाता कुले दौर्गत्यशालिनि।
ब्रूहीदमतिनिर्विण्णां दीनामनुगृहाण माम्।।५८।।
इति पृष्टो मुनीन्द्रोऽसौ जगौ मधुरया गिरा।
इहैव विषयेऽमुत्र पुत्रि जातासि कर्मणा।।५९।।
पलालपर्वतग्रामे देविलग्रामकूटकात्।
सुमतेरुदरे पुत्री धनश्रीरिति विश्रुता।।६०।।
अन्येद्युश्च त्वमज्ञानाच्छुनः पूतिकलेवरम्।
मुनेः समाधिगुप्तस्य पठतोऽन्ते न्यधा मुदा।।६१।।
मुनिस्तदवलोक्यासौ त्वामित्यन्वशिषत्तदा।
त्वयेदं बालिके कर्म विरूपकमनुष्ठितम्।।६२।।
फलिष्यति विपाके ते दुरन्तं कटुकं फलम्।

हुई हूँ ? आप इसका कारण कहिये और मुझ दीन और उद्विग्न स्त्री पर अनुग्रह कीजिये।।५६, ५७,५८।।

मेरे द्वारा ऐसा पूछा जाने पर मुनिराज ने मधुर वाणी में कहा - हे पुत्री ! अपने कर्मोदय के कारण ही तुम इसी देश के पलालपर्वत गाँव में देविल ग्राम पटेल की सुमति स्त्री की कुक्षी से धनश्री नामक प्रसिद्ध पुत्री हुई थी।।५९,६०।।

किसी दिन तुमने पाठ करते हुए समाधिगुप्त मुनिराज के समीप मरे हुए कुत्ते का दुर्गन्धित कलेवर डाल दिया। अज्ञान के कारण तुम्हें खुशी भी हुई थी।।६१।।

तेरे इस कार्य को देख कर मुनिराज ने तुझे उपदेश दिया - हे बाले ! तूने यह कार्य अत्यन्त विपरीत किया है।।६२।।

भविष्य में यह कर्म उदय के समय तुम्हें कटुक फल देगा, क्योंकि माननीय पुरुषों का किया हुआ अपमान अन्य पर्याय में बहुत सन्ताप देता है।।६३।।

५८ = ६/१३३ ५९ = ६/१३४ ६० = ६/१३५
६१ = ६/१३६ ६२ = ६/१३७ ६३ = ६/१३८

दहत्यधिकमन्यस्मिन् माननीयविमानता।।६३।।
इति ब्रुवन्तमभ्येत्य क्षमामग्राहयस्तदा।
भगवन्निदमज्ञानात् क्षमस्व कृतमित्यरम्।।६४।।
तेनोपशमभावेन जातात्पं पुण्यमाश्रिता।
मनुष्यजन्मनीहाद्य कुले परमदुर्गते।।६५।।
ततः कल्याणि कल्याणं गृहाणो पोषितं व्रतम्।
जिनेन्द्रगुणसम्पत्तिं श्रुतज्ञानमपि क्रमात्।।६६।।
इत्थं मुनिवचः पथ्यमनुमत्य यथाविधि।
उपोष्यतद्द्वयं स्वायुरन्ते स्वर्गमयासिषम्।।६७।।
ललिताङ्गस्य तत्रासं कान्ता देवी स्वयम्प्रभा।
सार्द्धं सपर्ययागत्य ततो गुरुमपूजयम्।।६८।।

मुनिराज के ऐसा कहने पर धनश्री ने उनसे अपने अपराध क्षमा कराते हुए कहा - हे भगवन् ! मैंने यह कार्य अज्ञानवश किया है। आप मुझे क्षमा कीजिये।।६४।।

उस उपशम भाव के द्वारा जो अल्प पुण्यार्जन हुआ था, उसी के फल से तुम मनुष्ययोनि में अतिशय दरिद्रकुल में उत्पन्न हुई हो।।६५।।

अतः हे कल्याणी ! कल्याणों को करने वाले जिनेन्द्रसम्पत्ति और श्रुतज्ञान इन दो व्रतों को तुम क्रम से ग्रहण करो।।६६।।

इसप्रकार मुनिराज के हितकर वचनों को मान कर यथाविधि से दोनों व्रतों को पूर्ण कर मैं आयु के अन्त में स्वर्ग गयी।।६७।।

मैं वहाँ ललितांग देव की स्वयम्प्रभा नामक प्रिया हुई। वहाँ से ललितांग के साथ मध्यलोक में आकर मैंने उन गुरुदेव (पिहितास्रव) की पूजा की।।६८।।

६४ = ६/१३९ ६५ = ६/१४० ६६ = ६/१४१
६७ = ६/१५७ ६८ = ६/१५८

ललिताङ्गच्युतौ तस्मात् षण्मासान् जिनपूजनम्।
कृत्वा प्रच्युत्य सम्भूतिमिहालप्सि तनूदरि।।६९।।
तमिदानीमनुस्मृत्य तदन्वेषणसंविधौ।
यतेऽहं प्रयता तेन वाचं यमविधिं दधे।।७०।।
ततो रक्ष मम प्राणान् प्राणेशस्य गवेषणात्।
स्त्रीणां विपत्प्रतिकारे स्त्रिय एवावलम्बनम्।।७१।।
तदुपायं च तेऽद्याहं ब्रुवे प्रस्तुतसिद्धये।
मया विलिखितं पूर्वभवसम्बन्धिपट्टकम्।।७२।।
क्वचित्किञ्चिन्निगूढान्तः प्रकृतं चित्तरञ्जनम्।
तद् व्रजादाय धूर्तानां मनः सम्मोहकारणम्।।७३।।
पतिब्रुवाश्च ये मिथ्या वैयात्योद्धतबुद्धयः।

हे तनूदरि ! ललितांग देव के स्वर्गच्युति के बाद मैं छह माह तक जिनपूजा करती रही। फिर वहाँ से चय कर यहाँ उत्पन्न हुई हूँ।।६९।।

इससमय मैं उसी का स्मरण करके उसके अन्वेषण का प्रयत्न कर रही हूँ। इसीलिये ही मैंने मौन धारण कर रखा है।।७०।।

इसीलिये मेरे प्राणेश की गवेषणा करके तू मेरे प्राणों की रक्षा कर, क्योंकि स्त्रियों की विपत्ति दूर करने के लिये स्त्री ही अवलम्बन होती है।।७१।।

इस कार्य की सिद्धि के लिये मैं तुझे आज एक उपाय बताती हूँ - मैंने अपने पूर्वभवविषयक चारित्र को बताने वाला चित्रपट बनाया है।।७२।।

इसमें कहीं-कहीं चित्त को प्रसन्न करने वाले गूढ़ विषय भी लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त वह धूर्तों के मन में भ्रान्ति डालने वाला है। तू उसे ले जा।।७३।।

६९ = ६/१६० ७० = ६/१६१ ७१ = ६/१६९
७२ = ६/११७० ७३ = ६/१७१ ७४ = ६/१७२

तान् स्मितांशुपटच्छन्नान् कुरु गूढार्थसङ्कटे।।७४।।
इत्युक्त्वा पण्डितावोचत् तच्चित्ताश्वासनं वचः।
मयि सत्यां मनस्तापो मा भूत्ते कलभाषिणि।।७५।।
इत्युक्त्वा पण्डिताश्वास्य तां तदर्पितपट्टकम्।
गृहीत्वागमदाश्वेव महापूत जिनालयम्।।७६।।
तत्र पट्टकशालायां पण्डिता कृतवन्दना।
प्रसार्य पट्टकं तस्थौ परीचिक्षिषुरागतान्।।७७।।
प्रैक्षतकेचिदागत्य सावधानं महाधियः।
केचित्किमेतदित्युच्चैर्जजल्पुर्वीक्ष्य पट्टकम्।।७८।।
अथ दिग्विजयाच्चक्री न्यवृतत्कृतदिग्जयः।

जो धृष्टता के कारण उद्धत बुद्धि वाले हैं तथा झूठ-मूट ही मेरा पति बनना चाहे, उन्हें तू गूढ़ प्रश्न करना और वे यदि उत्तर न दे पाये तो मन्द हास्य के द्धारा उनका उपहास करना।।७४।।

इसप्रकार श्रीमती के द्धारा कहे जाने पर पण्डिता उसे आश्वासन प्रदान करने वाले वचन कहने लगी। हे मधुरभाषिणी ! मेरे होते हुए तुम्हें मनस्ताप नहीं हो सकता।।७५।।

ऐसा कह कर पण्डिता श्रीमती के द्धारा अर्पित किये गये चित्रपट को लेकर महापूत नामक अत्यन्त पवित्र जिनालय में गयी।।७६।।

पण्डिता ने जिनदेव की वन्दना करके वहाँ की चित्रशाला में अपना चित्रपट फैला दिया तथा वह आने वाले लोगों की परीक्षा करने के लिये वहीं बैठ गयी।।७७।।

महाबुद्धि के धारक कितने ही पुरुष उस चित्र को बड़ी सावधानी से देखने लगे और कितने ही लोग उसे देख कर यह क्या है ? ऐसा उच्च स्वर में बोलने लगे।।७८।।

७५ = ६/१७३,१७४ ७६ = ६/१७९ ७७ = ६/१९१
७८ = ६/१९२ ७९ = ६/१९४

प्रणतीकृतानिःशेष नरविद्याधरामरः।।७९।।

(छन्द = मालिनी)

विहितनिखिलकृत्योथात्मपुत्रीविवाह,
व्यतिकरकरणीये किञ्चिदन्तः सचिन्तः।
पुरमविशदुदारश्रीपरार्ध्यं पुरुश्री-
मृदुपवनविधूत प्रोल्लसत्केतुमालम्।।८०।।

इति श्रीपुराण समाम्नाये तृतीयं पर्व।

इधर जिसने सम्पूर्ण दिशाओं पर विजय प्राप्त कर लिया है, जिसे समस्त मनुष्य, विद्याधर और देव नमस्कार कर रहे हैं - ऐसा चक्रवर्ती (वज्रदन्त) दिग्विजय करके वापिस लौटा।।७९।।

निखिल कार्य के समाप्त होने पर भी जिसके मन में पुत्री के विवाह की कुछ चिन्ता शेष है - ऐसे उत्कृष्ट शोभा के धारक वज्रदन्त चक्रवर्ती ने मन्द-मन्द वायु के द्वारा लहराती हुई पताकाओं से शोभायात्रा तथा अन्य अनेकानेक उत्तम शोभा से सम्पन्न अपने नगर में प्रवेश किया।।८०।।

इसप्रकार श्रीपुराण का तीसरा पर्व समाप्त हुआ।

साहित्य मानव जीवन की समग्रता का एक परिपूर्ण कोश है।

साहित्य जीवन के अनुभवों का उद्दीपन करता है। साहित्य आत्मा का साक्षात्कार कराता है।

साहित्य निराशा की घड़ी में अथवा आशा के समय में, विवाद में अथवा उत्फुल्लता में, सुख में अथवा दुःख में साथ देने वाला मित्र है।

साहित्य समाज का दर्पण है। आदित्य के बिना सृष्टि और साहित्य के बिना मानवता जीवित नहीं रह सकती।

- आचार्य सुविधिसागर

वज्रजंघ का राज्याभिषेक

चतुर्थ पर्व

(आदिनाथ का पूर्वभव–श्रीमती एवं वज्रजंघ)

- श्रीमती व वज्रजंघ का पूर्वभव
- श्रीमती का आश्वस्त होना
- वज्रजंघ एवं श्रीमती का विवाह

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

चतुर्थं पर्व

अथाहूय सुतां चक्री तामित्यन्वशिषत्कृती।
स्मितांशुसलिलैः सिञ्चन्निवैनामाधिबाधिताम्।।१।।
पुत्री मा स्म गमः शोकमुपसंहरमौनिताम्।
जानामि त्वत्पतेः सर्वं वृत्तान्तमवधित्विषा।।२।।
शृणु पुत्रि तवास्माकं त्वत्कान्तस्यापि वृत्तकम्।
जन्मान्तरनिबद्धं ते वक्ष्यामीदं तया पृथक्।।३।।
इतोऽहं पञ्चमेऽभूवं जन्मन्यस्यां महाद्युतौ।
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां स्वर्णगर्यामिवर्द्धिभिः।।४।।

चौथा अधिकार

तदनन्तर कार्य करने में कुशल चक्रवर्ती ने मानसिक पीड़ा से पीड़ित पुत्री को बुला कर मन्दहास्य की किरणरूपी जल से सिंचन करते हुए आदेश दिया।।१।।

हे पुत्री ! तुम शोक को प्राप्त मत होओ। अपने मौन का संकोच करो। मैं अवधिज्ञान के द्वारा तुम्हारे पति का समस्त वृत्तान्त जानता हूँ।।२।।

हे पुत्री ! तुम अपने, मेरे और अपने पति के पूर्वजन्मविषयक वृत्तान्त को सुनो। मैं उसे पृथक्-पृथक् कहता हूँ।।३।।

इस भव से पहले पाँचवें भव में मैं महाद्युतिमान और स्वर्ग की नगरी के समान शोभायमान इसी पुण्डरीकिणी नगरी में चन्द्रकीर्ति नामक अर्द्धचक्रवर्ती का पुत्र हुआ था। उससमय जयकीर्ति नामक मेरा एक मित्र था, जो मेरे ही साथ वृद्धि को प्राप्त हुआ था।।४,५।।

१ = ७/१ २ = ७/२ ३ = ७/६ ४ = ७/७

सुतोऽर्द्धचक्रिणश्चन्द्रकीर्तिरित्यात्तकीर्त्तनः।
जयकीर्तिर्वयस्यो मे तदासीत्सहवर्द्धितः।।५।।
पितुः क्रमागतां लक्ष्मीमासाद्य परमोदयाम्।
समं वयं वयस्येन चिरमत्रारभावहि।।६।।
गृहमेधी गृहीताणुव्रतः सोऽहं क्रमात्ततः।
कालान्ते चन्द्रसेनाख्यं गुरुं श्रित्वा समाधये।।७।।
त्यक्ताहार शरीरः सन्नुद्याने प्रीतिवर्द्धने।
संन्यासविधिनाजाये कल्पे माहेन्द्रसंज्ञिके।।८।।
सप्तसागरकालायुः स्थितिः सामानिकः सुरः।
जयकीर्तिश्च तत्रैव जातो मत्सदृशर्द्धिकः।।९।।
ततः प्रच्युत्यकालान्ते द्वीपे पुष्करसंज्ञके।
पूर्वमन्दरपौरस्त्य विदेहे प्राजनिष्वहि।।१०।।
विषये मङ्गलावत्यां नगरे रत्नसञ्चये।

पिता की कुल-परम्परा से प्राप्त परम लक्ष्मी को पाकर मैं मित्र के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा।।६।।

उससमय मैं अणुव्रतों को धारण करने वाला गृहस्थ था। आयु के अन्त में मैं चन्द्रसेन नामक गुरु के आश्रय में पहुँचा।।७।।

प्रीतिवर्द्धन नामक उद्यान में आहार और शरीर का त्याग करके मैं संन्यास विधि के प्रभाव से माहेन्द्रकल्प में उत्पन्न हुआ।।८।।

वहाँ मैं सात सागर की आयु वाला सामानिक देव हुआ था। जयकीर्ति भी वहीं मेरे समान ऋद्धियों का धारक देव हुआ।।९।।

आयु के अन्त में वहाँ से च्युत होकर हम दोनों पुष्कर संज्ञक द्वीप के पूर्व मेरु विषयक पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती देश के रत्नसंचय नगर में श्रीधर राजा के पुत्र हुए। मैं बलदेव था तथा वह नारायण। मैं मनोहरा रानी का पुत्र था और मेरा नाम श्रीवर्मा था। वह मनोरमा से उत्पन्न हुआ था।

५ = ७/८ ६ = ७/९ ७ = ७/१० ८ = ७/११
९ = ७/१२ १० = ७/१३ ११ = ७/१४

श्रीधरस्य महीभर्तुस्तनयौ बलकेशवौ।।११।।
मनोहरातद्भमयोः श्रीवर्मा च विभीषणः।
ततो राज्यपदं प्राप्य दीर्घं तत्रारमावहि।।१२।।
पिता तु मयि निक्षिप्त राज्यभारः सुधर्मतः।
दीक्षित्वोपोष्य सिद्धोऽभूदुपवास विधीन् बहून्।।१३।।
मनोहरा मयि स्नेहात् स्थितागारे शुचिव्रता।
सुधर्मगुरुनिर्दिष्टमाचरन्ती चिरं तपः।।१४।।
उपोष्यविधिवत्कर्मक्षपणं विधिमुत्तमम्।
जीवितान्ते समाराध्य ललिताङ्ग सुरोऽभवत्।।१५।।
ललिताङ्गस्ततोऽसौ मां विभीषणवियोगतः।
शुचमापन्नमासाद्य सोपायं प्रत्यबोधयत्।।१६।।
ततो युगन्धरस्यान्ते दीक्षां जैनेश्वरीमहम्।
नृपैर्दशसहसार्द्धमितैः सार्द्धमुपादिषि।।१७।।

उसका नाम विभीषण था। राज्य पाकर हम दोनों भाई दीर्घकाल पर्यन्त क्रीड़ा करते रहे।।१०, ११,१२।।

पिता ने मुझे राज्यभार सौंप कर सुधर्माचार्य से दीक्षा ले ली और अनेक प्रकार के उपवास करके सिद्धपद प्राप्त कर लिया।।१३।।

माता मनोहरा मेरे स्नेह के कारण घर में रहते हुए पवित्र व्रतों का पालन करने लगी। वह सुधर्माचार्य के द्वारा निर्दिष्ट तप का आचरण करती थी।।१४।।

उसने कर्मक्षपण नामक व्रत के विधिपूर्वक उपवास किये। जीवनान्त में समाधि की आराधना की और स्वर्ग में ललितांग देव हुई।।१५।।

विभीषण की मृत्यु के बाद जब मैं वियोग के कारण बहुत शोक कर रहा था तब ललितांग देव ने आकर मुझे सम्बोधित किया।।१६।।

मैंने युगन्धर मुनि के समीप पाँच हजार राजाओं के साथ जिनदीक्षा धारण की।।१७।।

१२ = ७/१५ १३ = ७/१६ १४ = ७/१७
१५ = ७/१८ १६ = ७/१९ १७ = ७/२२

यथाविधिस्तपस्तप्त्वा सिंहनिष्क्रीडितं तपः।
सुदुश्चरं महोदर्कं सर्वतोभद्रमप्यदः।।१८।।
त्रिज्ञानविमलालोकः कालान्ते प्रापमिन्द्रताम्।
कल्पेऽच्युते ह्यनल्पर्द्धौ द्वाविंशत्यब्धिजीवितः।।१९।।
दिव्याननुभवन् भोगान् तत्र कल्पे महाद्युतौ।
गत्वा च जननी स्नेहाल्ललिताङ्गमपूजयम्।।२०।।
प्रीतिवर्द्धनमारोप्य विमानमतिभास्वरम्।
नीत्वास्मत्कल्पमेवास्य कृतवानस्मि सत्क्रियाम्।।२१।।
ललिताङ्गस्ततश्च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य पूर्वके।
विदेहे मङ्गलावत्यां रौप्यस्याद्रेरुदक्तटे।।२२।।
गन्धर्वपुरनाथस्य वासवस्य खगेशिनः।

मैंने अत्यन्त कठिन किन्तु उत्तम फलदायक सिंहनिष्क्रीड़ित और सर्वतोभद्र तप को विधिवत् किया।।१८।।

तप के द्वारा मैंने तीन ज्ञान के विमल प्रकाश को प्राप्त किया। कालान्त में मर कर मैंने अच्युत स्वर्ग में इन्द्रपद की प्राप्ति की। मेरी आयु बाईस सागर थी।।१९।।

अत्यन्त कान्ति से युक्त उस अच्युत स्वर्ग में मैं दिव्यभोगों का भोग करता रहा। किसी दिन मैंने माता के स्नेह से ललितांग देव के पास जाकर उसकी पूजा की।।२०।।

मैं उसे चमकीले प्रीतिवर्द्धन नामक विमान में बिठा कर उपने स्वर्ग में ले आया और वहाँ उसका स्वागत किया।।२१।।

ललितांग देव वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में राजा वासव नामक

१२ = ७/१५ १३ = ७/१६ १४ = ७/१७
१५ = ७/१८ १६ = ७/१९ १७ = ७/२२

सूनुरासीत्प्रभावत्यां देव्यां नाम्ना महीधरः।।२३।।
महीधरे निजं राज्यभारं निक्षिप्यवासवः।
निकटेऽरिञ्जयाख्यस्य तप्त्वा मुक्तावलीं तपः।।२४।।
निर्वाणमगमत्पद्मावत्यार्या च प्रभावती।
समाश्रित्य तपस्तप्त्वा परं रत्नावलीमसौ।।२५।।
अच्युतं कल्पमासाद्य प्रतीन्द्रपदभागभूत्।
महीधरोऽपि संसिद्धविद्योऽभूदद्भुतोदयः।।२६।।
कदाचिदथ गत्वाहं पुष्करार्द्धस्य पश्चिमे।
भागे पूर्वविदेहे तं विषयं वत्सकावतीम्।।२७।।
तत्र प्रभाकरीपुर्यां विनयन्धरयोगिनः।
निर्वाणपूजां निष्ठाप्य महामेरुमथागमम्।।२८।।
तत्र नन्दनपूर्वाशाचैत्यालयमुपाश्रितम्।

विद्याधर के घर प्रभावती नामकी महादेवी से महीधर नामक पुत्र हुआ।।२२,२३।।

राजा वासव ने अपना राज्य महीधर को देकर अरिंजय नामक मुनिराज के समीप मुक्तावली तप करके निर्वाण को प्राप्त किया। रानी प्रभावती ने भी पद्मावती नामक आर्यिका के समीप दीक्षित होकर रत्नावली तप किया। वह अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई। महीधर भी अनेक विद्याओं को सिद्ध करके आश्चर्यकारी वैभव से सम्पन्न हो गया।।२४,२५,२६।।

किसी दिन मैं पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिमभाग के पूर्वविदेह सम्बन्धित वत्सलावती देश में गया।।२७।।

वहाँ प्रभाकरी नगरी मे मैंने विनयन्धर मुनिराज की निर्वाणकल्याण विषयक पूजा की। पूजा समाप्त करके मैं मेरुपर्वत पर गया।।२८।।

२४ = ७/३० २५ = ७/३१ २६ = ७/३२
२७ = ७/३३ २८ = ७/३४ २९ = ७/३५

महीधरं समालोक्य विद्यापूजोद्यतं तदा।।२९।।
प्रत्यबूबुधमित्युच्चैरहो खेन्द्रमहीधरम्।
विद्धि मामच्युताधीशं ललिताङ्गस्त्वमप्यसौ।।३०।।
त्वय्यसाधारणी प्रीतिर्ममास्ति जननीचरे।
तद्भद्रविषयासङ्गाद् दूरन्ताद्धिरमाधुना।।३१।।
इत्युक्तमात्र एवासौ निर्विण्णः कामभोगतः।
महीकम्पे सुते ज्येष्ठे राज्यभारं स्वमर्पयन्।।३२।।
बहुभिः खेचरैः सार्द्धं जगन्नन्दनशिष्यताम्।
प्रपद्य कनकावल्या प्राणतेन्द्रोऽभवद्धिभुः।।३३।।
विंशत्यब्धिस्थितिस्तत्र भोगान्निर्विश्य निश्च्युतः।
धातकीखण्डपूर्वाशापश्चिमोरुविदेहगे।।३४।।
गन्धिले विषयेऽयोध्यानगरे जयवर्मणः।
सुप्रभायाश्च पुत्रोऽभूदजितञ्जय इत्यसौ।।३५।।

नन्दनवन के पूर्वदिशा सम्बन्धी चैत्यालय में स्थित महीधर को विद्याओं की पूजा करते देख कर मैंने उच्च स्वर में कहा - अहो विद्याधरेन्द्र ! मैं अच्युत स्वर्ग का इन्द्र हूँ और तुम ललितांग हो।।२९,३०।।

तुम मेरी माता के जीव हो इसीलिये - मेरी तुम पर असाधारण प्रीति है। हे भद्र ! अत्यन्त दुःख देने वाले इस विषयासक्ति से तू विरक्त हो।।३१।।

जब मैंने उसे ऐसा कहा तो वह काम-भोगों से विरक्त हो गया और उसने महीकम्प नामक अपने बड़े पुत्र को राज्यभार सौंप दिया।।३२।।

अनेक विद्याधरों के साथ वह जगन्नन्दन नामक मुनिराज का शिष्य हो गया। कनकावली तप करके वह प्राणतेन्द्र हुआ।।३३।।

वहाँ उसकी आयु बीस सागर की थी। उसने अनेक भोगों को भोग कर धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व दिशासम्बन्धी पश्चिम विदेहक्षेत्र में स्थित गन्धिल देश के अयोध्या नामक नगर में जयवर्मा राजा के घर उसकी सुप्रभा रानी से अजितंजय नामक पुत्र हुआ।।३४,३५।।

३० = ७/३६ ३१ = ७/३७ ३२ = ७/३८
३३ = ७/३९ ३४ = ७/४० ३५ = ७/४१

जयवर्माथ निक्षिप्य स्वं राज्यमजितञ्जये।
पार्श्वेऽभिनन्दनस्याधात्तपः साचाम्लवर्द्धनम्।।३६।।
कर्मबन्धननिर्मुक्तो लेभेऽसौ परमं पदम्।
यत्रात्यन्तिकमक्षय्यमव्याबाधं परं सुखम्।।३७।।
सुप्रभा च समासाद्य गणिनीं तां सुदर्शनाम्।
रत्नावलीमुपोष्याभूदच्युतानुदिशाधिपः।।३८।।
ततोऽजितञ्जयश्चक्री भूत्वा भक्त्याभिनन्दनम्।
विवन्दिषुर्जिनं जातः पिहितास्रवनामभाक्।।३९।।
तदा पापास्रवद्वारपिधानान्नाम तादृशम्।
लब्ध्वासौ सुचिरं कालं साम्राज्यसुखमन्वभूत्।।४०।।
प्रबोधितश्च सोऽन्येद्युर्मयैव स्नेहनिर्भरम्।
भो भव्य मा भवान् साङ्क्षीद्विषयेष्वपहारिषु।।४१।।

कुछ समय बाद जयवर्मा ने अजितंजय को राज्य सौंप कर अभिनन्दन मुनिराज से दीक्षा ले ली और वे आचाम्लवर्द्धन तप करने लगे।।३६।।

उन्होंने कर्मबन्धन से निर्मुक्त होकर मोक्षरूपी उत्तम पद को प्राप्त किया। उस मोक्ष में आत्यन्तिक, अक्षय और अव्याबाध परम सुख प्राप्त होता है।।३७।।

रानी सुप्रभा ने भी गणिनी आर्यिका सुदर्शना से दीक्षा ली। उसने रत्नावली व्रत का उपवास किया तथा वह अच्युत स्वर्ग के अनुदिश विमान में देव हुई।।३८।।

तदुपरान्त अजितंजय चक्रवर्ती होकर भक्ति से अभिनन्दन स्वामी के दर्शनार्थ गया। वन्दना करते समय उसके पापास्रव के द्वार रुक गये थे अतः उसका पिहितास्रव नाम पड़ गया। उसी नाम को पाकर वह चिरकाल तक राज्य सुख भोगता रहा।।३९,४०।।

किसी दिन मैंने उसे स्नेहपूर्वक समझाया - तुम नष्ट हो जाने वाले इन विषयों में आसक्त मत होओ।।४१।।

३६ = ७/४२ ३७ = ७/४३ ३८ = ७/४४
३९ = ७/४५ ४० = ७/४६ ४१ = ७/४७

इत्यस्मद्वचनाज्जातवैराग्यः पिहितास्रवः।
सहस्रगुणविंशत्या समं पार्थिवकुञ्जरैः।।४२।।
मन्दरस्थविरस्यान्ते दीक्षामादाय सोऽवधिम्।
चारणर्द्धिं च सम्प्राप्य तिलकान्तेऽम्बरे गिरौ।।४३।।
तपो जिनगुणर्द्धिं च श्रुतज्ञानविधिं च ते।
तदादावादधानायै स्वर्गाग्रसुखसाधनम्।।४४।।
ततोऽस्मद्गुरुरेवासीत्तवाप्यभ्यर्हितो गुरुः।
द्वाविंशतिं गुरुस्नेहाल्ललिताङ्गानथार्चयम्।।४५।।
तेष्वन्त्यो भवतीभर्त्ता प्राग्भवेऽभून्महाबलः।
स्वयम्बुद्धोपदेशेन सोऽन्वभूदामरीं श्रियम्।।४६।।
ललिताङ्गश्चयुतः स्वर्गान्मर्त्यभावे स्थितोऽद्य नः।
प्रत्यासन्नतमो बन्धुः स ते भर्त्ता भविष्यति।।४७।।

मेरे इसप्रकार के वचनों से जिसे वैराग्य हो गया है - ऐसे पिहितास्रव राजा ने बीस हजार राजाओं के साथ मन्दिरस्थविर नामक मुनिराज से दीक्षा लेकर अवधिज्ञान और चारणऋद्धि प्राप्त की। उन्हीं मुनिराज ने तुम्हें अम्बरतिलक पर्वत पर स्वर्ग के सुख देने वाले जिनगुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामक व्रत दिये थे। इसीलिये जो पिहितास्रव पहले मेरे गुरु थे, वही तेरे पूज्य गुरु हुए। मैंने गुरु के स्नेह से ही अपने समय में होने वाले बाईस ललितांग देवों की पूजा की थी।।४२,४३,४४,४५।।

उनमें से अन्तिम ललितांग जो तेरा पति था, वह पूर्वभव में महाबल था। स्वयम्बुद्ध के उपदेश से वह अमरलक्ष्मी का भोक्ता हुआ था।।४६।।

वह ललितांग स्वर्ग से च्युत होकर इस समय मर्त्यलोक में स्थित है। वह हमारा निकट सम्बन्धी है और वही तेरा पति होगा।।४७।।

हे पद्मानने ! उस विषय को बताने वाली एक कथा और भी कहता हूँ, तू उसे भी सुन। जब मैं अच्युतेन्द्र था, तब मुझसे ब्रह्मेन्द्र और लान्तवेन्द्रों नें

४२ = ७/५१ ४३ = ७/५२ ४४ = ७/५३
४५ = ७/५४ ४६ = ७/५५ ४७ = ७/५६

तवाभिज्ञानमन्यच्च वक्ष्ये पद्मानने शृणु।
ब्रह्मेन्द्रलान्तवेशाभ्यां भवत्यापृष्टस्तदेत्यहम्।।४८।।
युगन्धरजिनेन्द्रस्य तीर्थेऽलप्स्वहि दर्शनम्।
ततस्तच्चरितं कृत्स्नं सम्बुभुत्सावहेऽधुना।।४९।।
ततोऽवोचमहं ताभ्यामिति तच्चरितं तदा।
दम्पतिभ्यां समेताभ्यां युवाभ्यां च यदृच्छया।।७०।।
जम्बूद्वीपस्य पूर्वस्मिन्विदेहे वत्सकाह्वये।
विषये भोगभूदेश्ये सीतादक्षिणदिग्गते।।७१।।
सुसीमानगरे नित्यं वास्तव्यौ ज्ञानवित्तकौ।
जातौ प्रहसिताख्यश्च तथा विकसिताह्वयः।।७२।।
तत्पुराधिपतेः श्रीमदजितञ्जयभूभृतः।
नाम्ना मृतमतिर्मन्त्री सत्यभामा प्रियास्य च।।७३।।

भक्तिपूर्वक पूछा था कि हम दोनों ने युगन्धर तीर्थंकर के तीर्थ में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है। अतः हम उनका चरित्र सुनना चाहते हैं।।४८,४९।।

उससमय मैंने दोनों इन्द्रों को तथा स्वेच्छापूर्वक साथ में आये हुए तुम दोनों को (ललितांग-स्वयम्प्रभा) को उस चरित्र को इसप्रकार बताया था।।७०।।

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में वत्सकावती देश है, जो भोगभूमि के समान है। उसी देश में सीता नदी के दक्षिणभाग में सुसीमा नामक एक नगर है। उसमें प्रहसित और विकसित नामक दो ब्राह्मण रहते थे। उनके पास ज्ञान ही धन था।।७१,७२।।

उस नगर का स्वामी राजा अजितंजय था। उसके मन्त्री का नाम अमृतमती था तथा मन्त्रीपत्नी सत्यभामा थी।।७३।।

४८ = ७/५७ ४९ = ७/५८ ५० = ७/५९
५१ = ७/६० ५२ = ७/६१ ५३ = ७/६२

तयोः प्रहसिताख्योऽयमभूत् सूनुर्विचक्षणः।
सखा विकसितोऽस्यासौ सदेमौ सहचारिणौ।।७४।।
कदाचिच्च नरेन्द्रेण समं गत्वा मुनीश्वरम्।
मतिसागरमद्राष्टाममृतस्रवणर्द्धिकम्।।७५।।
नृपप्रश्नवशात्तस्मिन् जीवतत्त्वनिरूपणम्।
कुर्वाणे चोद्य चुश्रुत्वादित्यब्रूतां प्रसह्य तौ।।७६।।
विनोपलब्ध्या सद्भावं प्रतीमः कथमात्मनः।
स नास्त्यतः कुतस्तस्य प्रेत्यभावफलादिकम्।।७७।।
तदुपालम्भमिच्युच्चैराकर्ण्य मुनिपुङ्गवः।
वचनं तत्प्रबोधीदं धीरधीः प्रत्यभाषत।।७८।।
भवता किन्तु दृष्टोऽसौ त्वत्पितुर्यः पितामहः।
तथापि सोऽस्ति चेदस्तु जीवस्याप्येवमस्तिता।।७९।।

उन दोनों का पुत्र प्रहसित था, जो बुद्धिमान था तथा विकसित इसका मित्र था। ये दोनों सदा साथ-साथ रहते थे।।७४।।

किसी दिन नरेन्द्र के साथ जाकर उन दोनों ने अमृतस्रावी ऋद्धियों के स्वामी मतिसागर नामक मुनिराज के दर्शन किये।।७५।।

राजा के द्वारा किये गये प्रश्न के कारण मुनिराज ने जीवतत्त्व का निरूपण किया। उसीसमय प्रश्नचतुर वे दोनों विद्वान बोले - उपलब्धि के बिना हम जीवतत्त्व पर विश्वास कैसे करें ? जब जीव नहीं है तब परलोक और कर्मफल कैसे हो सकता है।।७६,७७।।

उनके उपालम्भ को सुन कर वे धीर-वीर मुनिराज दोनों विद्वानों को समझाने वाले वचन कहने लगे।।७८।।

क्या आपने अपने पिता के पितामह को देखा है ? तथापि वे हैं। उसीप्रकार जीव का भी अस्तित्व होता है।।७९।।

७४ = ७/६३ ७५ = ७/६६ ७६ = ७/६७
७७ = ७/६८ ७८ = ७/६९ ७९ = ७/७२

वज्रदंत, वज्रजंघ व श्रीमती का पूर्वभव

इत्यादि युक्तिभिर्जीवं तत्त्वं स निरणीनयत्।
तावपि ज्ञानजं गर्वमुज्झित्वा नेमतुर्मुनिम्।।६०।।
गुरोस्तस्यैव पार्श्वे तौ गृहीत्वा परमं तपः।
सुदर्शनमथाचाम्लवर्द्धनं चाप्युपोषतुः।।६१।।
निदानं वासुदेवत्वे व्यधाद्विकसितोऽप्यभुत्।
कालान्ते तावजायेतां महाशुक्रसुरोत्तमौ।।६२।।
इन्द्रप्रतीन्द्रपदयोः षोडशाब्ध्युपमस्थिती।
तौ तत्र सुखसाद्भूतावन्वभूतां सुरश्रियम्।।६३।।
स्वायुरन्ते ततश्च्युत्वा धातकीखण्डगोचरे।
विदेहे पुष्कलावत्यां पश्चिमार्द्धपुरोगते।।६४।।
विषये पुण्डरीकिण्यां पुर्यां राज्ञो धनञ्जयात्।
जयसेनायशस्वत्योर्देव्योर्व्यत्यासितक्रमौ।।६५।।
जज्ञाते तनयौ रामकेशवस्थानभागिनौ।

सुदर्शन और आचाम्लवर्द्धन व्रत

इसप्रकार मुनिराज ने जीवतत्त्व का निर्णय किया, जिसे सुन कर उन दोनों ने अपने ज्ञान का अहंकार छोड़ कर मुनिराज को नमस्कार किया।।६०।।

उन्होंने गुरु के समीप उत्कृष्ट तप को धारण करके सुदर्शन और आचाम्लवर्द्धन नामक व्रतों के उपवास किये।।६१।।

विकसित ने नारायण पद प्राप्त होने का निदान किया। आयु के अन्त में दोनों शरीर छोड़ कर महाशुक्र स्वर्ग में इन्द्र और प्रतीन्द्र पद के धारक सोलह सागर की स्थिति वाले देव हुए। वे वहाँ सुख में तन्मय होकर स्वर्गलक्ष्मी का भोग करने लगे।।६२,६३।।

आयु के अन्त में वहाँ से चय कर वे दोनों धातकीखण्ड के पश्चिम भाग सम्बन्धी विदेहक्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा धनंजय की रानी जयसेना और यशस्वती से बलभद्र और नारायण पद को धारण करने वाले महाबल और अतिबल नामक पुत्र हुए।।६४,६५,६६।।

६० = ७/७६ ६१ = ७/७७ ६२ = ७/७८ ६३ = ७/७९
६४ = ७/८० ६५ = ७/८१ ६६ = ७/८२

ज्यायान्महाबलोऽन्यश्च ख्यातोऽतिबलसंज्ञया।।६६।।
राज्यान्ते केशवेऽतीते तपस्तप्त्वा महाबलः।
पार्श्वे समाधिगुप्तस्य प्राणतेन्द्रस्ततोऽभवत्।।६७।।
भुक्त्वामरीं श्रियं तत्र विंशत्यब्ध्युपमात्यये।
धातकीखण्ड पश्चार्द्ध पुरोवर्तिविदेहगे।।६८।।
विषये वत्सकावत्यां प्रभाकर्याः पुरः प्रभोः।
महासेनस्य भूभर्तुः प्रतापानतविद्विषः।।६९।।
देव्यां वसुन्धराख्यायां जयसेनाह्वयोऽजनि।
प्रजानां जनितानन्दश्चन्द्रमा इव नन्दनः।।७०।।
क्रमाच्चक्रधरो भूत्वा प्रजाः स चिरमन्वशात्।
विरक्तधीश्च भोगेषु प्रव्रज्यामार्हतीं श्रितः।।७१।।
सीमन्धरार्हत्पादाब्जमूले षोडशकारिणीं।

राज्य के अन्त में जब नारायण की मृत्यु हो गयी तब महाबल ने समाधिगुप्त मुनिराज के पास दीक्षा लेकर तप किया और वह प्राणत स्वर्ग में इन्द्र हुआ।।६७।।

वह स्वर्गलक्ष्मी का उपभोग बीस सागर पर्यन्त करता रहा। आयु के पूर्ण होने पर वह धातकीखण्ड के पश्चिम भाग सम्बन्धित पूर्वविदेह क्षेत्र में स्थित वत्सकावती देश की प्रभाकरी नगरी के स्वामी तथा अपने प्रताप से शत्रुसमुह को नम्र बनाने वाले महासेन राजा की वसुन्धरा नामक रानी से जयसेन नामक पुत्र हुआ। वह चन्द्रमा के समान प्रजा के लिये आनन्द उत्पन्न करता था।।६८,६९,७०।।

अनुक्रम से उसने चक्रवर्ती होकर चिरकाल तक प्रजा का शासन किया और फिर भोगों से विरक्त हो कर जिनदीक्षा धारण की।।७१।।

सीमन्धर स्वामी के चरण कमलों में षोडषकारण भावनाओं का चिन्तन करते हुए उसने बहुत समय तक निरतिचार तपश्चरण किया।।७२।।

६७ = ७/८३ ६८ = ७/८४ ६९ = ७/८५
७० = ७/८६ ७१ = ७/८७ ७२ = ७/८८

भावयन्सुचिरं तेपे तपो निरतिचारकम्।।७२।।
स्वायुरन्तेऽहमिन्द्रोऽभूद् ग्रैवेयेषूर्ध्वमध्यमे।
त्रिंशदब्ध्युपमं कालं दिव्यं तत्रान्वभूत् सुखम्।।७३।।
ततोऽवतीर्णः स्वर्गाग्रात् पुष्करार्द्धपुरोगते।
विदेहे मङ्गलावत्यां प्राक्पुरे रत्नसञ्चये।।७४।।
अजितञ्जयभूपालाद्धसुमत्याः सुतोऽभवत्।
युगन्धर इति ख्यातिमुद्धहन् नृसुरार्चितः।।७५।।
कल्याणत्रितये वर्यां स सपर्यामवापिवान्।
क्रमात् कैवल्यमुत्पाद्य महानेष महीयते।।७६।।
तदेति मद्वचः श्रुत्वा बहवो दर्शनं श्रिताः।
युवां च धर्मसंवेगं परमं समुपागतौ।।७७।।
पिहितास्रवभट्टारकैवल्योपजनक्षणे।

आयु के अन्त में वह उपरिम ग्रैवेयक के मध्यभाग में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ उसने तीस सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव किया।।७३।।

वहाँ से अवतीर्ण होकर पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती देश के रत्नसंचय नगर में अजितंजय राजा की वसुमती रानी से युगन्धर नामका सुविख्यात पुत्र हुआ, जो मनुष्य और देवों के द्वारा पूजित था।।७४,७५।।

वही पुत्र तीनों कल्याणों की पूजा को प्राप्त कर आज केवलज्ञानी होकर सबके द्वारा पूजित हो रहा है।।७६।।

उससमय मेरे इन वचनों को सुन कर अनेक जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए थे। आप दोनों भी धर्मसंवेग को प्राप्त हुए थे।।७७।।

हे पुत्री ! तुम्हें स्मरण तो होगा ही कि जब पिहितास्रव भट्टारक को केवलज्ञान हुआ था, उससमय हम दोनों ने साथ में जाकर उनकी पूजा की थी।।७८।।

७३ = ७/८९ ७४ = ७/९० ७५ = ७/९१
७६ = ७/९२ ७७ = ७/९५ ७८ = ७/९६

समं गत्वार्चयिष्यामस्तदा पुत्रि स्मरस्यदः।।७८।।
अभिजानासि तत्पुत्रि स्वयम्भूरमणोदधिम्।
क्रीडाहेतोर्व्रजिष्यामो गिरिं चाञ्जनसंज्ञकम्।।७९।।
श्रीमती गुरुणेत्युक्ता तात युष्मत्प्रसादतः।
अभिजानामि तत्सर्वमित्यसौ प्रतिभाषत।।८०।।
इति ब्रुवाणां तां भूयः प्रत्युवाच नराधिपः।
पुत्रि स्वर्गस्थयोरेव युवयोः प्राक् च्युतोऽच्युतात्।।८१।।
नगर्यामिह धुर्योऽहं यशोधरमहीपतेः।
देव्या वसुन्धरायाश्च वज्रदन्तः सुतोऽभवम्।।८२।।
युवां च परिशिष्टायुर्भुक्त्वान्ते त्रिदिवाच्च्युतौ।
जातौ यथास्वमत्रैव विषये राजदारकौ।।८३।।
जनितेतस्तृतीयेऽह्नि ललिताङ्गचरेण ते।

हे पुत्री ! तुम यह भी जानती होगी कि क्रीड़ा करने के लिये हम लोग स्वयम्भूरमण समुद्र और अंजनगिरी पर जाया करते थे।।७९।।

इसप्रकार राजा के कहने पर श्रीमती ने कहा - हे तात ! आपके प्रसाद से मैं सब कुछ जानती हूँ।।८०।।

इसप्रकार कहती हुई श्रीमती से वज्रदन्त पुनः कहने लगे - हे पुत्री ! जब तुम दोनों स्वर्ग में स्थित थे, तब मैं तुम्हारे च्युत होने से पूर्व ही अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर इसी नगरी में यशोधर महाराज और वसुन्धरा रानी का वज्रदन्त नामक श्रेष्ठ पुत्र हुआ हूँ।।८१,८२।।

आप दोनों अवशिष्ट आयु को भोग कर स्वर्ग से च्युत हो गये और इसी देश में राजपुत्र और राजपुत्री हुए हो।।८३।।

आज से तीसरे दिन तेरा ललितांग के जीव राजपुत्र के साथ समागम हो जायेगा। तेरी पण्डिता सखी आज ही उसके सब समाचार स्पष्टरूप से लायेगी।।८४।।

७९ = ७/९७ ८० = ७/९८ ८१ = ७/१०१
८२ = ७/१०२ ८३ = ७/१०४ ८४ = ७/१०५

श्रीमती को इष्ट प्राप्ति की सूचना

सङ्गमोऽद्यैव तद्धार्तां पण्डितानेष्यति स्फुटम्।।८४।।
मातुलान्यास्तवायान्त्या वयमप्यद्य पुत्रिके।
प्रयुद्गच्छाम इत्युक्त्वा राजोत्थाय ततोऽगमत्।।८५।।
पण्डिता तत्क्षणं प्राप्ता प्रफुल्लवदनाम्बुजा।
मुखरागेण संलक्ष्यकार्यसिद्धिरुवाच ताम्।।८६।।
त्वं दिष्ट्या वर्द्धसे कन्ये पूर्णस्तेऽद्य मनोरथः।
सप्रपञ्चं च तद्धच्मि सावधानमितः शृणु।।८७।।
यदा पट्टकमादाय गताहं त्वन्निदेशतः।
तदास्थां विपुलाश्चर्ये महापूतजिनालये।।८८।।
मया तत्र विचित्रस्य पट्टकस्य प्रसारणे।
बहवस्तदविज्ञाय गताः पण्डितमानिनः।।८९।।

हे पुत्री ! आज तेरी मामी आ रही है। इसीलिये उन्हें लेने के लिये हम लोग इनके सम्मुख जाते हैं – ऐसा कह कर राजा उठ कर वहाँ से बाहर चले गये।।८७।।

राजा के जाते ही पण्डिता सखी आ पहुँची। उससमय उसके मुख की प्रसन्न कान्ति कार्य की सफलता को सूचित कर रही थी। वह श्रीमती से बोली।।८६।।

हे कन्ये ! तू भाग्य से बढ़ रही। (तेरा भाग्य बलवान है) आज तेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है। मैं सारे समाचार विस्तार के साथ कहती हूँ, तू सावधान होकर सुन।।८७।।

तेरे निर्देशानुसार मैं यहाँ से गयी और अनेक आश्चर्यों से भरे हुए महापूत नामक जिनालय में जा ठहरी।।८८।।

मैंने वहाँ तेरा विचित्र चित्रपट फैला कर रख दिया। अपने आपको पण्डित समझने वाले कितने ही मूर्ख लोग उसका आशय नहीं समझ सके।।८९।।

८५ = ७/१०७ ८६ = ७/१०८ ८७ = ७/१०९
८८ = ७/११० ८९ = ७/१११

श्वशुर्यस्ते युवावज्रजङ्घस्तत्रागमत्ततः।
दिव्येन वपुषा कान्त्या दीप्त्या चानुपमो भुवि।।९०।।
अथ प्रदक्षिणीकृत्य भव्यस्तज्जिनमन्दिरम्।
स्तुत्वा प्रणम्य चाभ्यर्च्य पट्टशालामुपासदत्।।९१।।
निर्वर्ण्यपट्टकं तत्र श्रीमानिदमवोचत।
ज्ञातपूर्वमिवेदं मे चरितं पट्टकस्थितम्।।९२।।
अत्रास्मद्भवसम्बन्धः पूर्वोऽलेखि सविस्तरम्।
श्रीप्रभाधिपतां साक्षात्पश्यामीवेह मामिकाम्।।९३।।
अहो स्त्रीरूपमत्रेदं नितरामभिरोचते।
स्वयम्प्रभाङ्गसंवादि विचित्राभरणोज्ज्वलम्।।९४।।
किन्त्वत्र कतिचित्कस्माद् गूढानि प्रकृतानि भोः।

तत्पश्चात् तेरे श्वसुर का युवापुत्र वज्रजंघ वहाँ आया। वह अपने दिव्य शरीर, कान्ति और दीप्ति से अनुपम था।।९०।।

वज्रजंघ चित्रपट को देखकर शंकायें करता हैं

उस भव्य ने आकर सबसे पहले जिनमन्दिर की प्रदक्षिणा दी। फिर जिनदेव की स्तुति करके प्रणाम किया। फिर पूजा की। तदुपरान्त वह चित्रशाला में आया।।९१।।

पट्ट को देख कर वह श्रीमान बोला – ऐसा मालूम होता है जैसे इस चित्रपट में स्थित चारित्र मेरा पहले का जाना हुआ हो।।९२।।

इस चित्र में मेरा पूर्वभवविषयक सम्बन्ध सविस्तर लिखा गया है। ऐसा लग रहा है जैसे मैं अपने पूर्वभव में होने वाले श्रीप्रभविमान के अधिपति ललितांग देव के स्वामित्व को साक्षात् देख रहा हूँ।।९३।।

अहो ! यहाँ स्त्री का यह रूप अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। विचित्र आभरणों में उज्ज्वल यह मानो स्वयम्प्रभा का ही रूप हो।।९४।।

किन्तु इस चित्र में कितने ही गूढ़ विषय क्यों बताये गये हैं ? लगता है – अन्य लोगों को सम्मोहित करने के लिये यह चित्र बनाया गया है।।९५।।

९० = ७/११६ ९१ = ७/११७ ९२ = ७/११८
९३ = ७/१२१ ९४ = ७/१२२ ९५ = ७/१२३

श्रीमती का चित्रपट

मन्ये सम्मोहनायेदं जनानामिति चित्रितम्।।९५।।
ऐशानो लिखितः कल्पः श्रीप्रभं च प्रभास्वरम्।
श्रीप्रभाधिपतेः पार्श्वे दर्शितियं स्वयम्प्रभा।।९६।।
अच्युतेन्द्रसमायोग गुरुपूजादिविस्तरः।
दर्शितोऽत्र निगूढस्तु भावः प्रणयजो मिथः।।९७।।
नूनं स्वयम्प्रभाचर्याहस्तनैपुण्यमीदृशम्।
नान्यस्य स्त्रीजनस्येदृक् प्रावीण्यं स्यात्कलाविधौ।।९८।।
इति प्रतर्कयन्नेव पर्याकुल इव क्षणम्।
शून्यान्तःकरणोऽध्यासीत् किमप्यामीलितेक्षणः।।९९।।
उदश्रुलोचनश्चायं दशामन्त्यामिवोपयन्।
प्रत्याश्वासमथानीतः सोपायं परिचारिभिः।।१००।।
अचिराल्लब्धसंज्ञश्च पृष्टवानिति मामसौ।
भद्रकेनेदमालेख्ये लिखितं नः पुरेहितम्।।१०१।।

वज्रजंघ चित्रपट के विषय में विचार करता हुआ मूर्च्छित होता है

यह ऐशानस्वर्ग लिखा गया है। यह प्रभावान श्रीप्रभविमान है। यह श्रीप्रभ विमान का स्वामी है और यहाँ स्वयम्प्रभा को दिखाया गया है।।९६।।

इधर अच्युतेन्द्र का समायोग, गुरुपूजा आदि का विस्तार किया गया है। इस स्थान पर रति आदि भाव दिखलाया गया है।।९७।।

निश्चय से यह हस्तकला स्वयम्प्रभा के जीव की ही है, क्योंकि चित्रकला की विधि में ऐसा चातुर्य अन्य स्त्री में हो ही नहीं सकता।।९८।।

इसप्रकार तर्क करता हुआ वह राजपुत्र आकुल की तरह शून्य अन्तःकरण और निमीलित नयनों वाला होकर क्षण भर कुछ सोचता रहा।।९९।।

उससमय उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे, वह अन्त की मरण अवस्था को प्राप्त होने ही वाला था कि परिचारकों ने मिल कर उसे अनेक उपायों से सावधान किया।।१००।।

कुछ समय बाद जब वह होश में आया तो उसने मुझे पूछा - हे भद्रे ! इस चित्र में मेरे पूर्वभव की चेष्टाओं को किसने लिखा है।।१०१।।

९६ = ७/१२४ ९७ = ७/१३१ ९८ = ७/१३५
९९ = ७/१३६ १०० = ७/१३७,१३९ १०१ = ७/१४०

प्रत्युक्तश्च मयेत्यस्ति स्त्रीसर्गस्यैकनायिका।
दुहिता मातुलान्यास्ते श्रीमतीति पतिंवरा।।१०२।।
देवस्य वज्रदन्तस्य प्रियपुत्र्या तयादरात्।
कलाकौशलमात्मीयमिहालेख्ये प्रदर्शितम्।।१०३।।
लक्ष्मीरिवार्थिनां प्रार्थ्या सैषा कन्या घनस्तनी।
मृग्या मृगयते त्वाद्य नान्यस्त्वमिव पुण्यवान्।।१०४।।
इत्युक्तस्तु मया साधु पण्डिते साधु जल्पितम्।
विधिर्घटयतीष्टार्थमानीयान्वीपतां गतः।।१०५।।
इतीरयन्वचो भूयः प्रस्विद्यत्करपल्लवः।
तदस्मत्पट्टकं पाणौ कृतवान् स कुतूहली।।१०६।।

मैंने उत्तर दिया यह तुम्हारे मामी की पुत्री श्रीमती है। वह स्त्रियों की सृष्टि में एकमात्र नायिका है।।१०२।।

राजा वज्रदन्त की प्रियपुत्री ने ही इस चित्र में अपना कला-कौशल दिखलाया है।।१०३।।

जो लक्ष्मी के समान अनेक अर्थीजनों के द्वारा प्रार्थी है, जो कठोर स्तनों से सहित है तथा जो अच्छे-अच्छे मनुष्यों के द्वारा खोज करने के योग्य है, वह आज आपको खोज रही है। इसीलिये आपके समान कोई पुण्यवान नहीं है।।१०४।।

मेरे द्वारा इसप्रकार कहे जाने पर वह राजकुमार कहने लगा - हे पण्डिते ! तूने ठीक ही कहा है। अनुकूलता को प्राप्त हुआ दैव अभिलषित वस्तु की प्राप्ति कर देता है।।१०५।।

इसप्रकार जो अनेक वचन कह रहा था, जिसके करपल्लवों से पसीना निकल रहा था तथा जिसे कौतूहल उत्पन्न हो रहा था, उस वज्रजंघ ने

१०२ = ७/१४१ १०३ = ७/१४७ १०४ = ७/१४८
१०५ = ७/१५०,१५२ १०६ = ७/१५३

श्रीमती का चित्रपट

स्वपट्टकमिदं चान्यन्मम हस्ते समार्पिपत्।
यत्र त्वच्चित्रसंवादि सर्वमालक्ष्यते स्फुटम्।।१०७।।
गृहीत्वाहं च तद्धार्तामिहागामिति पण्डिता।
प्रसारितवती तस्याः पुरस्ताच्चित्रपट्टकम्।।१०८।।
तन्निर्वर्ण्य चिरं जातप्रत्यया सा समाश्वसीत्।
चिरोढप्रौढसन्तापा चातकीव घनाघनम्।।१०९।।
तावच्चचक्रिणा बन्धुप्रीतिमातन्वता पराम्।
गत्वार्धपथमानीतो वज्रबाहुर्महीपतिः।।११०।।
यत् किञ्चिद्रुचितं तुभ्यं वस्तुजालं ममालये।
तद्गृहाण यदि प्रीतिर्मयि तेऽस्त्यनियन्त्रणा।।१११।।

तुम्हारा चित्र अपने हाथों में लिख लिया और अपना चित्र हमें सौंप दिया। देख, इस चित्र में तेरे से मिलते-जुलते सारे विषय स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं।।१०६,१०७।।

श्रीमती का आश्वस्त होना

मैं उसके समाचार को ग्रहण करके यहाँ आई हूँ - ऐसा कह कर पण्डिता ने वज्रजंघ के द्धारा दिया गया चित्र श्रीमती के सामने फैला कर रख दिया।।१०८।।

उस चित्र को अच्छीतरह देख कर उसे जब अपने मनोरथ पूर्ण होने का विश्वास हो गया तब वह ऐसी आश्वस्त हो गयी, जैसे सन्तप्त हुई चातकी मेघ का आगमन देख कर हर्षित हुई हो।।१०९।।

तबतक वज्रदन्त महाराज भाई के विशाल प्रेम को विस्तृत करते हुए आधी दूर तक जाकर वज्रबाहु राजा को ले आये।।११०।।

मेरे प्रति आपकी असाधारण प्रीति हो तो मेरे घर में आपको जो वस्तु अच्छी लगती हो, उसे आप ग्रहण कीजिये।।१११।।

१०७ = ७/१५४ १०८ = ७/१५८ १०९ = ७/१५९
११० = ७/१७८ १११ = ७/१८३

प्रीतेरद्य परां कोटिमधिरोहति मे मनः।
त्वं सतुक्कः सदारश्च यन्ममाभ्यागतो गृहम्।।११२।।
इत्युक्तः प्रेमनिघ्नेन चक्रिणा प्रत्युवाच सः।
त्वत्प्रसादान्ममास्त्येव सर्वं किं प्रार्थ्यमद्य मे।।११३।।
प्रार्थयेऽहं तथाप्येतद्युष्मदाज्ञां प्रपूजयन्।
श्रीमती वज्रजङ्घाय देया कन्योत्तमा त्वया।।११४।।
इति विज्ञापितस्तेन चक्रभृत्प्रत्यपद्यत।
तथास्तु सङ्गमो यूनोरनुरूपोऽनयोरिति।।११५।।
ततो वधूवरं सिद्ध स्नानाम्भः पूतमस्तकम्।
निवेशितं महाभासि सच्चामीकरपट्टके।।११६।।
स्वयं स्म करकं धत्ते चक्रवर्ती महाकरः।

आज आप अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर मेरे घर पधारे हैं। अतः मेरा मन आज प्रीति की अन्तिम अवधि को प्राप्त कर रहा है।।११२।।

वज्रबाहु अपने पुत्र के लिए श्रीमती का हाथ मांगते हैं

चक्रवर्ती के प्रेमपूर्ण वचनों को सुन कर वज्रबाहु ने कहा - हे राजन् ! आपके प्रसाद से मेरे यहाँ सबकुछ है। मैं आपसे क्या प्रार्थना करूँ।।११३।।

तथापि आपकी आज्ञा को पूज्य मानता हुआ मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी उत्तम कन्या श्रीमती को वज्रजंघ के लिये देवें।।११४।।

वज्रबाहु ने जब प्रार्थना की तब राजा ने यह कह कर स्वीकार कर लिया कि आपने कहा वैसा ही हो। युवावस्था को प्राप्त हुए उन दोनों का समागम युक्त ही है।।११५।।

तदनन्तर जिनके मस्तक सिद्ध प्रतिमा के जल से पवित्र किये गये हैं - ऐसे वधू और वर अतिशय शोभावन्त स्वर्णमयी पाटे पर बिठाये गये।।११६।।

महाभुजाओं के धारक चक्रवर्ती ने स्वयं अपने हाथों में भृंगार धारण किया। वह सुवर्ण से बना हुआ था, महारत्नों से खचित था और मोतियों से अतिशय उज्ज्वल था।।११७।।

११२ = ७/१८४ ११३ = ७/१८७ ११४ = ७/१९४
११५ = ७/१९९ ११६ = ७/२४५ ११७ = ७/२४६

हिरण्मयं महारत्नखचितं मौक्तिकोज्ज्वलम्।।११७।।
ततो न्यपाति करकाद्धारा तत्करपल्लवे।
दूरमावर्जिता दीर्घं भवन्तौ जीवतामिति।।११८।।
ततः पाणौ महाबाहुर्वज्रजङ्घोऽग्रहीन्मुदा।
श्रीमती तन्मृदुस्पर्शसुखामीलितलोचनः।।११९।।
(छन्द = शार्दूलविक्रीड़ित)
लक्ष्मीमानभिषेकपूर्वकमसौ श्रीवज्रजङ्घो भुवि।
द्वात्रिंशन्मुकुटप्रबद्धमहित क्ष्माभृत्सहस्रैर्मुहुः।।
तां कल्याणपरम्परामनुभवन् भोगान्परान्निर्विशन्।
श्रीमत्या सह दीर्घकालमवसत्तस्मिन्पुरेऽर्चन् जिनान्।।१२०।।

इति श्रीपुराण समाम्नाये चतुर्थं पर्व।

आप दोनों दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रहे, मानो यह सूचित करने के लिये ही ऊँचे भृंगार से छोड़ी गयी जलधारा वज्रजंघ के हाथों पर पड़ी।।११८।।

तदुपरान्त बड़ी-बड़ी भुजाओं के धारक वज्रजंघ ने हर्ष के साथ श्रीमती का पाणिग्रहण किया। उससमय उसके कोमल स्पर्शसुख से वज्रजंघ के दोनों नेत्र बन्द हो गये थे।।११९।।

वहाँ भरतभूमि के बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं ने लक्ष्मी से सम्पन्न वज्रजंघ का राज्याभिषेकपूर्वक महान सम्मान किया। इसप्रकार जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हुए कल्याण परम्परा का अनुभवन करते हुए तथा श्रीमती के साथ अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोग भोगते हुए वज्रजंघ ने दीर्घकाल तक उसी नगरी में निवास किया।।१२०।।

इसप्रकार श्रीपुराण का चौथा पर्व समाप्त हुआ।

११८ = ७/२४८ ११९ = ७/२४९ १२० = ७/३१८

श्रीमती व वज्रजंघ ने दमधर व सागरसेन मुनि के दर्शन किये

पंचम पर्व

(आदिनाथ का पूर्वभव–वज्रजंघ का गृहस्थ जीवन)

- वज्रबाहु को वैराग्य एवं वज्रजंघ का राज्याभिषेक
- चक्रवर्ती की दीक्षा
- वज्रजंघ का पुण्डरीकिणी नगरी को निष्कण्टक करना

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

पञ्चमं पर्व

नित्य प्रसादलाभेन तयोर्नित्यमहोत्सवैः।
पुत्रोत्पत्त्यादिसर्गैश्च स कालोऽविदितोऽगमत्।।१।।
वज्रजङ्घानुजां कन्यामनुरूपामनुन्धरीम्।
वज्रबाहुर्विभूत्यासावदितामिततेजसे।।२।।
अथ चक्रधरः पूजासत्कारैरभिपूजितम्।
स्वपुरं प्रति यानाय व्युसृजत्तद्धधूवरम्।।३।।
ततः प्रस्थानगम्भीर भेरीध्वानैः शुभे दिने।
प्रयाणमकरोच्छ्रीमान् वज्रजङ्घः सहाङ्गनः।।४।।

पाँचवाँ अधिकार

नित्य ही उपहारों के लाभ से तथा पुत्रादि के उत्पत्ति के समय में नित्य महोत्सव मनाये जाते थे, जिससे उन दोनों का दीर्घकाल अनायास ही व्यतीत हो गया।।१।।

वज्रजंघ की अनुन्धरी नामक एक कन्या थी, जो उसी के समान सुन्दर थी। वज्रबाहु ने चक्रवर्ती के बड़े पुत्र अमिततेज के साथ उसका विवाह धूमधाम से कराया।।२।।

इसप्रकार जब सम्पूर्ण कार्य पूर्ण हो गये तब चक्रवर्ती ने अपने नगर को लौटने के लिये सत्कारादि सम्मान के द्धारा वर-वधू को विदाई दी।।३।।

अनन्तर किसी शुभ दिन वज्रजंघ ने अपनी पत्नी श्रीमती के साथ प्रस्थान किया। उससमय प्रस्थान की सूचना देने वाले नगाड़ों का गम्भीर शब्द हो रहा था।।४।।

१ = ८/३२ २ = ८/३३ ३ = ८/३५ ४ = ८/३८

वज्रबाहुमहाराजो देवी चास्य वसुन्धरा।
वज्रजङ्घं सपत्नीकं व्रजन्तमनुजग्मतुः।।७।।
हस्त्यश्वरथभूयिष्ठं साधनं सहपत्तिकम्।
संवाहयन् स सम्प्रापत्पुरमुत्पलखेटकम्।।६।।
तत्र श्रीभवने रम्ये सर्वर्तुसुखदायिनि।
श्रीमत्या सह सम्प्रीत्या वज्रजङ्घोवसत्सुखम्।।७।।
भोगैरनारतैरेवं काले गच्छत्यनुक्रमात्।
श्रीमती सुषुवे पुत्रान् व्येकपञ्चाशतं यमान्।।८।।
अथान्येद्युर्महाराजो वज्रबाहुर्महाद्युतिः।
शरदम्बुधरोत्थानं सौधाग्रस्थो निरूपयन्।।९।।
दृष्ट्वा तद्विलयं सद्यो निर्वेदं परमागतः।
अभिषिच्य सुतं राज्ये वज्रजङ्घमतिष्ठिपत्।।१०।।

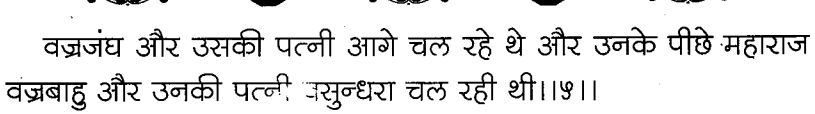

वज्रजंघ और उसकी पत्नी आगे चल रहे थे और उनके पीछे महाराज वज्रबाहु और उनकी पत्नी वसुन्धरा चल रही थी।।७।।

हाथी, अश्व, रथ और प्यादे आदि की विशाल सेना का संचालन करता हुआ वज्रजंघ अपने उत्पलखेट नगर में पहुँचा।।६।।

वहाँ रमणीय, सम्पूर्ण ऋतुओं में सुखदायक, लक्ष्मी से सम्पन्न, राजमहल में वज्रजंघ श्रीमती के साथ प्रेम और सुखपूर्वक निवास करता था।।७।।

इसप्रकार अनवरत भोगोपभोग के द्धारा समय व्यतीत करते हुए उन्हें अनुक्रम से उनचास युगल-युगल पुत्र (अट्ठानवे पुत्र) उत्पन्न हुए।।८।।

किसी एकदिन महाद्युतिमन्त महाराजा वज्रबाहु महल की छत पर बैठ कर शरद् ऋतु के बादलों का उठाव देख रहे थे।।९।।

उठते हुए बादल को तत्काल विलीन होते हुए देख कर उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होने अपने पुत्र वज्रजंघ का राज्याभिषेक कर दिया।।१०।।

५ = ८/३९ ६ = ८/४१ ७ = ८ /४६
८ = ८/४९ ९ = ८/५० १० = ८/५१,५६

स राज्यभोगनिर्विण्णस्तूर्णं यमधरान्तिके।
नृपैः सार्द्धं सहस्रार्द्धमितैर्दीक्षामुपाददे।।११।।
श्रीमतीतनयाश्चामी वीरबाहुपुरोगमाः।
समं राजर्षिणानेन तदा संयमिनोऽभवन्।।१२।।
यमैः सममुपारूढशुद्धिभिर्विहरन्नसौ।
क्रमादुत्पाद्यं कैवल्यं परं धाम समासदत्।।१३।।
अथान्यदा महाराजो वज्रदन्तो महर्द्धिकः।
सिंहासने सुखासीनो नरेन्द्रैः परिवेष्टितः।।१४।।
तथासीनस्य चोद्यानपाली विकसितं नवम्।
सुगन्धिपद्ममानीय तस्य हस्ते ददौ मुदा।।१५।।
तद्गन्धलोलुपं तत्र रुद्धं लोकान्तराश्रितम्।
दृष्ट्वालिं विषयासङ्गाद्विरराम सुधीरसौ।।१६।।
वपुरारोग्यमैश्वर्यं यौवनं सुखसम्पदः।

उन्होंने स्वयं राज्य और भोगों से विरक्त होकर शीघ्र ही यमधर मुनिराज के निकट पाँच सौ राजाओं के साथ दीक्षा ले ली।।११।।

उसीसमय श्रीमती के वीरबाहु आदि सम्पूर्ण पुत्रों ने राजर्षि वज्रबाहु के साथ दीक्षा धारण कर ली।।१२।।

उन सभी मुनिराजों ने साथ-साथ विहार किया फिर क्रम-क्रम से केवल-ज्ञान प्राप्त करके परमधाम प्राप्त किया।।१३।।

अन्य किसी समय महावैभव के धारक तथा अनेक राजाओं से घिरे हुए महाराज वज्रदन्त अपने सिंहासन पर सुख से विराजित थे।।१४।।

इतने में वनमाली ने एक नवीन खिला हुआ सुगन्धित कमल लाकर अपार हर्ष के साथ उनके हाथ में दिया।।१५।।

उस कमल में उसकी सुगन्धि का लोभी भौंरा मरा हुआ पड़ा था। उस बुद्धिमान राजा ने जैसे ही मरा हुआ भौंरा देखा, तत्काल वे विषयभोगों से विरक्त हो गये।।१६।।

११ = ८/७७ १२ = ८/७८ १३ = ८/७९ १४ = ८/८१
१५ = ८/८२ १६ = ८/८४ १७ = ८/७०

वस्तुवाहनमन्यच्च सुरचापवदस्थिरम्।।१७।।
इति निर्विद्य भोगेषु साम्राज्यभरमात्मनः।
सूनवेऽमित तेजोऽभिधानायस्म प्रदित्सति।।१८।।
प्रदित्सतामुना राज्यं भूयो भूयोऽनुबध्नता।
समादिष्टोऽप्यसौ नैच्छत्सानुजो राज्यसम्पदम्।।१९।।
ततस्तन्निश्चयं ज्ञात्वा राज्यं तत्सूनवे ददौ।
पुण्डरीकाय बालाय सन्तानस्थितिपालिने।।२०।।
स यशोधरयोगीन्द्रशिष्यं गुणधरं श्रितः।
सपुत्रदारोराजर्षिरदीक्षिष्ट नृपैः समम्।।२१।।
देव्यः षष्टिसहस्राणि तत्प्रयंशप्रमिता नृपाः।
प्रभुं तमन्वदीक्षन्त सहस्रं च सुतोत्तमाः।।२२।।
ततोऽभून्महती चिन्ता लक्ष्मीमत्या महाभरे।

शरीर, आरोग्य, ऐश्वर्य, यौवन, सुखसम्पदा, घर और वाहन आदि सब इन्द्रधनुष के समान अस्थिर हैं।।१७।।

इसप्रकार भोगों से विरक्त होकर चक्रवर्ती ने अपने साम्राज्य का भार अपने पुत्र अमिततेज को देना चाहा।।१८।।

उन्होंने राज्य देने की इच्छा से पुनः पुनः आग्रह भी किया, परन्तु उसने व उसके अनुजों ने राज्य ग्रहण करने से मना कर दिया।।१९।।

उनके निश्चय को जान कर उन्होंने अपना राज्य अमिततेज के पुत्र पुण्डरीक को सौंप दिया, जो अभी बालक और सन्तान परिपाटी का पालने वाला था।।२०।।

वे यशोधर योगीन्द्र के शिष्य गुणधर मुनिराज के समीप गये और वहाँ अपने पुत्र, स्त्री और अनेक राजाओं के साथ दीक्षित हो गये।।२१।।

वज्रदन्त के साथ साठ हजार रानियों ने, बीस हजार राजाओं ने तथा एक हजार पुत्रों ने दीक्षा ग्रहण की।।२२।।

१८ = ८/७९ १९ = ८/८० २० = ८/८३
२१ = ८/८४ २२ = ८/८५ २३ = ८/८९

वज्रजंघ को लक्ष्मीमती का संदेश प्राप्त होता है

राज्ये बालोऽयमव्यक्तः स्थापितो नप्तृभाण्डकम्।।२३।।
कथं नु पालयाम्येनं विना पक्ष बलादहम्।
वज्रजङ्घस्य तन्मूलं प्रहिणोम्यद्य धीमतः।।२४।।
निश्चित्येति समाहूय सुतौ मन्दरमालिनः।
चिन्तामनोगती स्निग्धौ शुची दक्षौ महान्वयौ।।२५।।
करण्डस्थिततत्कार्यपत्रौ सोपायनौ तदा।
प्रहिणोद्वज्रजङ्घस्य पार्श्वे सन्देशपूर्वकम्।।२६।।
क्रमादापततामेतौ पुरमुत्पलखेटकम्।
महानृपसभासीनं वज्रजङ्घमदर्शताम्।।२७।।
कृतप्रणामौ तौ तस्य पुरो रत्नकरण्डकम्।
निचिक्षिपतुरन्तस्थपत्रकं सदुपायनम्।।२८।।
तदुन्मुद्रय तदन्तस्थं गृहीत्वा कार्यपत्रकम्।

लक्ष्मीमती को बड़ी चिन्ता हो गयी कि इतने बड़े राज्य के भार पर एक छोटा-सा अप्रसिद्ध बालक स्थापित किया गया है।।२३।।

यह राज्य का पालन किसप्रकार कर सकेगा ? बिना किसी पक्ष के सहयोग के मैं इसकी रक्षा कैसे करूँगी ? मैं यह समाचार आज ही बुद्धिमान वज्रदन्त के पास भेजती हूँ।।२४।।

ऐसा निश्चय कर उसने गन्धर्वपुर के राजा मन्दरमाली के चिन्तागति और मनोगति नामक दो पुत्रों को बुलाया।।२५।।

उन दोनों को करण्डक में रखा हुआ समाचार पत्र दिया और नीचे लिखा हुआ सन्देश वज्रजंघ के पास भेज दिया।।२६।।

वे दोनों अनुक्रम से उत्पलखेल्ट नगर में पहुँचे। उन्होंने राजसभा में विराजित वज्रजंघ के दर्शन किये।।२७।।

उन दोनों ने राजा को प्रणाम किया और उनके सामने लायी हुई भेंट तथा जिसके भीतर पत्र रखा हुआ था, वह करण्डक सौंप दिया।।२८।।

२४ = ८/९०	२५ = ८/९२,९३	२६ = ८/९४
२७ = ८/१०४,१०५	२८ = ८/१०६	२९ = ८/१०७

निरूप्य विस्मितश्चक्रवर्त्तिप्राव्रज्यनिर्णयात्।।२९।।
स्वयं निर्णीतमर्थं तं श्रीमतीमप्यबोधयत्।
श्रीमतीं च समाश्वास्य तद्वार्त्ताकर्णनाकुलाम्।।३०।।
विसृज्य च पुरो दूतमुख्यौ तौ कृतसत्क्रियौ।
तस्मिन्नेवाह्नि सोऽह्नाय प्रस्थानमकरोत्कृती।।३१।।
हयहेषितमातङ्ग-बृहद्बृंहितनिस्वनैः।
मुखरं तद्बलं शष्पसरोवरमथासदत्।।३२।।
ततस्तस्मिन् सरस्यस्य न्यविक्षत बलं प्रभोः।
कायमाने महामाने राजा तत्रावसत्सुखम्।।३३।।
ततो दमधराभिख्यः श्रीमानम्बरचारणः।
समं सागरसेनेन तन्निवेशमुपाययौ।।३४।।
कान्तारचर्यां संङ्गीर्य पर्यटन्तौ यदृच्छया।

वज्रजंघ ने करण्डक खोल कर उसके भीतर रखा हुआ आवश्यक पत्र ले लिया। उसे देख कर उन्हें चक्रवर्ती के दीक्षा लेने का निर्णय हो गया और इस बात से वे बहुत ही विस्मित हुए।।२९।।

वज्रजंघ ने दमधर और सागरसेन मुनि को आहार दान दिया

राजा ने पत्र का अर्थ और अपना निर्णय श्रीमती को सुनाया। उस वार्त्ता को सुन कर श्रीमती को बड़ा दुःख हुआ।।३०।।

उन्होंने सत्कार करके दूत को विदा कर दिया और उसीदिन प्रस्थान भी कर दिया।।३१।।

घोड़ों के हिनहिनाने और हाथियों की गम्भीर गर्जना के शब्दों से अनुगुंजित वह सेना क्रम-क्रम से शष्प नामक सरोवर पर आ पहुँची।।३२।।

उस सरोवर के किनारे छोटे वृक्ष और लताओं से घिरे हुए थे। उस किनारे पर ऊँचे तम्बू में वज्रजंघ ने सुखपूर्वक निवास किया।।३३।।

तदनन्तर आकाश में गमन करने वाले श्रीमान दमधर नामक मुनिराज सागरसेन नामक मुनिराज के साथ-साथ वज्रजंघ के पड़ाव में पधारे।।३४।।

३० = ८/११२,११४	३१ = ८/११५,११८	३२ = ८/१५०
३३ = ८/१५४,१६६	३४ = ८/१६७	३५ = ८/१९८

वज्रजंघ का पुण्डरीकिणी के लिए प्रस्थान

वज्रजङ्घमहीभर्त्तुरावासं तावुपेयतुः।।३५।।
श्रद्धादिगुणसम्पत्या गुणवद्भ्यां विशुद्धिभाक्।
दत्त्वा विधिवदाहारं पञ्चाश्चर्याण्यवाप सः।।३६।।
ततोऽभिवन्द्य सम्पूज्य विसर्ज्य मुनिपुङ्गवौ।
काञ्चुकीयादबुद्धैनौ चरमावात्मनः सुतौ।।३७।।
श्रीमत्या सह संश्रित्य सम्प्रीत्या निकटं तयोः।
स धर्ममशृणोत्पुण्यकामः सद्गृहमेधिनाम्।।३८।।
श्रुत्वा धर्मं ततोऽपृच्छत् सकान्तः स्वां भवावलीम्।
मुनिर्दमवरः प्राख्यत्तस्य जन्मावलीमिति।।३९।।
नगर्यामलकाख्यायां व्योमगानामधीशिता।
महाबलोऽभूर्भोगांश्च यथाकामं त्वमन्वभूः।।४०।।
स्वयम्बुद्धात्प्रबुद्धात्मा ललिताङ्गः सुरोऽभवः।

वज्रजंघ ने धर्मश्रवण किया और इष्ट सम्बन्धियों के पूर्वभव पूछे

उन दोनों मुनिराजों ने वन में ही आहार ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की थी। इसीलिये वे इच्छानुसार विहार करते हुए वज्रजंघ के पड़ाव के समीप आये।।३५।।

राजा ने श्रद्धा आदि गुणों की सम्पत्ति से सहित होकर विशुद्ध परिणामों से उन गुणावानों को आहार दिया, जिससे पंचाश्चर्य हुए।।३६।।

जब वज्रजंघ ने दोनों मुनिराजों को प्रणाम और पूजा करके वापिस भेज दिया तब कंचुकी के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि ये दोनों मुनि हमारे ही अन्तिम पुत्र हैं।।३७।।

राजा श्रीमती को लेकर प्रीति के साथ मुनिराज के पास गया और पुण्यप्राप्ति की इच्छा से वह धर्मश्रवण करने लगा।।३८।।

धर्म को सुन कर राजा ने अपने और श्रीमती के पूर्वभव पूछे। तब दमधर मुनिराज ने उनके पूर्वभवों का वर्णन किया।।३९।।

अलका नामक नगरी में तुम विद्याधरों के महाबल नामक राजा हुए और तुमने इच्छित भोगों का अनुभव किया।।४०।।

३६ ८/१७३ ३७ = ८/१७६ ३८ = ८/१७७
[illegible] ८/१७३ [illegible] ८/१८५,१८७

ततश्च्युत्वाधुना भूस्त्वं वज्रजङ्घमहीपतिः।।४१।।
निर्नामिका वणिक्पुत्री तव देवी स्वयम्प्रभा।
श्रीप्रभेऽभूदिदानीं च श्रीमती वज्रदन्ततः।।४२।।
श्रुत्वेति स्वान् भवान् भूयो भूनाथः प्रियया समम्।
पृष्टवानिष्टवर्गस्य भवानतिकुतूहलात्।।४३।।
स्वबन्धुनिर्विशेषा मे स्निग्धा मतिवरादयः।
तत्प्रसीद भवानेषा ब्रूहीत्याख्यच्च तान्मुनिः।।४४।।
अयं मतिवरोऽत्रैव जम्बूद्वीपे पुरोगते।
विदेहो वत्सकावत्यां विषये त्रिदिवोपमे।।४५।।
तत्र पुर्यां प्रभाकर्यामतिगृध्नो नृपोऽभवत्।
विषयेषु विषक्तात्मा बह्वारम्भपरिग्रहैः।।४६।।
बद्ध्वायुर्नरकं जातः श्वभ्रे पङ्कप्रभाह्वये।

स्वयम्बुद्ध से प्रबुद्ध होकर तुम ललितांग देव हुए। वहाँ से चय कर अब तुम वज्रजंघ नामक राजा हुए हो।।४१।।

निर्नामिका नामक वणिक्पुत्री तुम्हारी स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई। अब वहाँ से चय कर वहाँ वज्रदन्त से श्रीमती नामक पुत्री हुई है।।४२।।

इसप्रकार अपने और श्रीमती के पूर्वभव को सुनने के बाद कौतूहल से अपने इष्ट सम्बन्धियों के पूर्वभव पूछे।।४३।।

ये मतिवरादि मुझे अपने भाई के समान अतिशय प्रिय हैं। अतः आप प्रसन्न होइये और इनके पूर्वभव कहिये। तब मुनिराज कहने लगे।।४४।।

यह मतिवर जम्बूद्वीप में पूर्वविदेह के वत्सकावती देश में स्वर्ग के समान सुन्दर प्रभाकरी नामक नगरी में अतिगृध्न नामक राजा हुआ। वह विषयों में संसक्त रहता था और बहुत आरम्भ और परिग्रह के कारण उसने नरकायु का बन्ध कर लिया और वह पंकप्रभा नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ वह दस सागर पर्यन्त वेदनाओं का अनुभवन करता रहा।।४५,४६,४७।।

४२ = ८/१८७,१८८ ४३ = ८/१८९ ४४ = ८/१९०
४५ = ८/१९१ ४६ = ८/१९२ ४७ = ८/१९३

दशाब्ध्युपमितं कालं नारकीं वेदनामगात्।।४७।।
ततो निष्पत्य पूर्वोक्तनगरस्य समीपगे।
व्याघ्रोऽभूत्प्राक्तनात्मीयधननिक्षेपपर्वते।।४८।।
अथान्यदा पुराधीशस्तत्रागत्य समावसत्।
निवर्त्य स्वानुजन्मानं व्युत्थितं विजिगीषया।।४९।।
स्वानुजन्मानमत्रस्थं नृपमाख्यत्पुरोहितः।
अत्रैव ते महाँल्लाभो भविता मुनिदानतः।।५०।।
स मुनिः कथमेवात्र लभ्यश्चेच्छृणु पार्थिव।
वक्ष्ये तदागमोपायं दिव्यज्ञानावलोकितम्।।५१।।
महानद्य नरेन्द्रस्य प्रमदस्तेन नागराः।
सर्वे यूयं स्वगेहेषु बद्ध्वा केतून् सतोरणान्।।५२।।
गृहाङ्गणानि रथ्याश्च कुरुताशुप्रसूनकैः।
सोपहाराणि नीरन्ध्रमिति दद्मः प्रघोषणाम्।।५३।।

वहाँ से निकल कर वह पूर्वोक्त नगर के समीप ही जहाँ धन गड़ा हुआ था, वहाँ व्याघ्र हुआ।।४८।।

एकबार उस नगरी का राजा अपने प्रतिकूल खड़े हुए छोटे भाई को जीत कर लौटा और उसी पर्वत पर रुका।।४९।।

वह छोटे भाई के साथ उसी पर्वत पर बैठा हुआ था कि पुरोहित ने उसे कहा - आज यहाँ मुनिदान के प्रभाव से आपको महान लाभ होने वाला है।।५०।।

हे राजन् ! वे मुनिराज यहाँ कैसे प्राप्त होंगे ? इसका उपाय मैं अपने दिव्यज्ञान से जान कर आपके लिये करता हूँ , आप सुनो।।५१।।

आज राजहर्ष का दिवस है। इसीलिये समस्त नगरवासी अपने घरों पर पताकाएँ फहराओ, तोरण बाँधो और अपने घर के आँगन में सुगन्धित जल सींच कर फूल बिखेर दो, जिसमें कहीं कोई छिद्र न रहे। ऐसी राज्य में घोषणा कर दी जावे।।५२,५३।।

४८ = ८/१९४ ४९ = ८/१९५ ५० = ८/१९६
५१ = ८/१९७ ५२ = ८/१९८ ५३ = ८/१९९

ततो मुनिरसौ त्यक्त्वा पुरमत्रागमिष्यति।
विचिन्त्याप्रासुकत्वेन विहारायोग्यमात्मनः।।५४।।
पुरोधोवचनात्तुष्टो नृपोऽसौ प्रीतिवर्द्धनः।
तत्तथैवाकरोत् प्रीतो मुनिरप्यागमत्तथा।।५५।।
पिहितास्रवनामासौ मासक्षपणसंयुतः।
प्रविष्टो नृपतेः सद्म चरंश्चर्यामनुक्रमात्।।५६।।
ततो नृपतिना तस्मै दत्तं दानं यथाविधि।
पातिता च दिवो देवैर्वसुधारा कृतारवम्।।५७।।
ततस्तदवलोक्यासौ शार्दूलो जातिमस्मरत्।
उपशान्तश्च निर्मूर्च्छः शरीराहारमत्यजत्।।५८।।
शिलातले निविष्टं च संन्यस्तनिखिलोपधिम्।
दिव्यज्ञानमयेनाक्ष्णां सहसाबुद्ध तं मुनिः।।५९।।

ऐसा किया जाने पर नगर में जाने वाले मुनिराज उस अप्रासुक मार्ग को देख कर लौट कर यहाँ पर अवश्य ही आवेंगे।।५४।।

पुरोहित के वचनों से सन्तुष्ट होकर प्रीतिवर्द्धन राजा ने वैसा ही किया, जिससे मुनिराज लौट कर वहाँ आये।।५५।।

वे पिहितास्रव नामक मुनिराज एक माह का उपवास पूर्ण कर के आहार करने के लिये क्रमानुसार राजा के घर में प्रविष्ठ हुए।।५६।।

उस नृपति ने मुनिराज को यथाविधि दान दिया। देवों ने आकाश से रत्नों की वर्षा की। वे रत्न मनोहर शब्द करते हुए भूमि पर पड़े।।५७।।

इसको देख कर सिंह को जातिस्मरण हो गया। वह अतिशय शान्त हो गया। उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। उसने शरीर और आहार से भी ममत्व छोड़ दिया।।५८।।

वह सम्पूर्ण उपाधियों का त्याग करके शिलातल पर बैठ गया। मुनिराज ने अपने दिव्यज्ञानरूपी नेत्रों से इस वृत्तान्त को जान लिया।।५९।।

५४ = ८/२०० ५५ = ८/२०१ ५६ = ८/२०२
५७ = ८/२०३ ५८ = ८/२०४ ५९ = ८/२०५

ततो नृपमुवाचेत्थमस्मिन्नद्रावुपासकः।
संन्यासं कुरुते कोऽपि स त्वया परिचर्यताम्।।६०।।
स चक्रवर्त्तितामेत्य चरमाङ्गः पुरोः पुरा।
सूनुर्भूत्वा परंधाम व्रजत्यत्र न संशयः।।६१।।
इति तद्धचनाज्जातविस्मयो मुनिना समम्।
गत्वानृपस्तमद्राक्षीच्छार्दूलं कृतसाहसम्।।६२।।
ततस्तस्य सपर्यायां साचिव्यमकरोन्नृपः।
मुनिश्चास्मै ददौ कर्णजापं स्वर्गी भवेत्यसौ।।६३।।
व्याघ्रोऽष्टादशभिर्भक्त महोभिरुपसंहरन्।
दिवाकरप्रभो नाम्ना देवोऽभूत्तद्धिमानके।।६४।।
तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा नृपस्यास्य चमूपतिः।
मन्त्री पुरोहितश्च द्रागुपशान्तिं परां गताः।।६५।।

उन्होंने राजा से कहा - हे राजन्! इस पर्वत पर कोई उपासक बन कर संन्यास कर रहा है। तुम्हें उसकी सेवा करनी चाहिये।।६०।।

वह भविष्यकाल में प्रथम तीर्थंकर का चक्रवर्ती पदधारक पुत्र होगा - इसमें कोई संशय नहीं है।।६१।।

मुनिराज के ऐसे वचनों को सुन कर राजा को बड़ा ही विस्मय हुआ। उसने ऐसा साहस करने वाले सिंह को देखा।।६२।।

पश्चात् राजा ने उसकी सेवा की। वह सिंह स्वर्ग में देव होने वाला है -ऐसा जान कर मुनिराज ने भी उसके कान में णमोकार मन्त्र सुनाया।।६३।।

अठारह दिनों तक आहार का त्याग करके सिंह ने समाधि से अपना शरीर छोड़ा और वह दूसरे स्वर्ग के दिवाकरप्रभ विमान में दिवाकरप्रभ नामक देव हुआ।।६४।।

इस आश्चर्य को देख कर राजा, सेनापति, मन्त्री और पुरोहित परम उपशान्ति को प्राप्त हुए।।६५।।

६० = ८/२०६ ६१ = ८/२०७ ६२ = ८/२०८
६३ = ८/२०९ ६४ = ८/२१० ६५ = ८/२११

नृपदानानुमोदेन कुरुष्वार्यास्ततोऽभवन्।
कालान्ते ते ततो गत्वा श्रीमदैशानकल्पजाः।।६६।।
सुरा जाता विमानेशा मन्त्री काञ्चनसंज्ञके।
विमाने कनकाभोऽभूद्रुषिताख्ये पुरोहितः।।६७।।
प्रभञ्जनोऽभूत्सेनानीः प्रभानाम्नि प्रभाकरः।
ललिताङ्गभवे युष्मत्परिवारामरा इमे।।६८।।
ततः प्रच्युत्य शार्दूलचरो देवोऽभवत् स ते।
मन्त्री मतिवरः सूनुः श्रीमत्यां मतिसागरात्।।६९।।
अपराजितसेनान्यश्च्युतः स्वर्गात्प्रभाकरः।
आर्जवायाश्च पुत्रोऽभूदकम्पनसमाह्वयः।।७०।।
श्रुतकीर्तेरथानन्तमत्याश्च कनकप्रभः।
सुतोऽभूदयमानन्दः पुरोधास्तव सम्मतः।।७१।।

इन सभी ने राजा के द्धारा दिये गये पात्रदान की अनुमोदना की थी। इसीलिये पहले उत्तरकुरु में मनुष्य और पश्चात् ऐशानकल्प के देव हुए।।६६।।

उनमें से मन्त्री कांचन नामक विमान में कनकाभ नामक देव हुआ। पुरोहित रुषित नाम के विमान में प्रभंजन नामक देव हुआ और सेनापति प्रभा नामक विमान में प्रभाकर नामक देव हुआ। आपकी ललितांग पर्याय में ये देव आपके परिवार में थे।।६७,६८।।

सिंह का जीव वहाँ से च्युत होकर मतिसागर और श्रीमती का पुत्र होकर आपका मतिवर नामक मन्त्री हुआ है।।६९।।

प्रभाकर का जीव स्वर्ग के चय कर अपराजित सेनापति और आर्जवा का पुत्र होकर आपका अकम्पन नामक सेनापति हुआ है।।७०।।

कनकप्रभा का जीव श्रुतकीर्ति और अनन्तमती का पुत्र होकर आपका आनन्द नामका प्रिय पुरोहित हुआ है।।७१।।

६६ = ८/२१२ ६७ = ८/२१३ ६८ = ८/२१४
६९ = ८/२१५ ७० = ८/२१६ ७१ = ८/२१७

इष्ट संबंधियों के पूर्वभव

प्रभञ्जनश्च्युतस्तस्मात् श्रेष्ठ्यभूद्धनमित्रकः।
धनदत्तोदरे जातो धनदत्ताद्धनर्द्धिमान्।।७२।।
राजा सविस्मयं भूयोऽप्यपूच्छत्तन्मुनीश्वरम्।
अमी नकुलशार्दूलगोलाङ्गूलाः ससूकराः।।७३।।
कस्मादस्मिञ्जनाकीर्णे देशे तिष्ठन्त्यनाकुलाः।
भवन्मुखारविन्दावलोकने दत्तदृष्टयः।।७४।।
इति राज्ञानुयुक्तोऽसौ चारणर्षिरवोचत।
शार्दूलोऽयं भवेऽन्यस्मिन्देशेऽस्मिन्नेव विश्रुते।।७५।।
हास्तिनाख्यपुरे ख्याते वैश्यात्सागरदत्ततः।
धनवत्यामभूत्सूनुरुग्रसेनसमाह्वयः।।७६।।
कोष्ठागारनियुक्तांश्च निर्भर्त्स्य धृततण्डुलम्।
बलादादाय वेश्याभिः सम्प्रायच्छत दुर्मदी।।७७।।

राजा वज्रजंघ वानर नकुल सिंह के तिर्यचायु बन्ध का कारण जाना

प्रभंजन देव वहाँ से च्युत होकर धनदत्त और धनदत्ता का पुत्र होकर आपका धनमित्र नामक परम वैभवशाली सेठ हुआ है।।७२।।

राजा वज्रजंघ ने अत्यन्त विस्मित होकर उन मुनिराज से पूछा - नकुल, सिंह, वानर और सूअर ये चारों जीव आपके मुखरूपी कमल को देखने में दृष्टि लगाये हुए इन मनुष्यों से भरे हुए स्थान में निर्भय होकर क्यों बैठे हुए हैं ?।।७३,७४।।

राजा के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर चारण ऋद्धिधारी मुनिराज बोले - यह सिंह अन्य भव में इसी देश के हस्तिनापुर नामके प्रसिद्ध नगर में सागरदत्त नामक सेठ की धनवती नामक स्त्री के उदर से उग्रसेन नामक पुत्र हुआ था।।७५,७६।।

एकबार उस दुर्मति ने भण्डार की रक्षा करने वाले लोगों की निर्भर्त्सना करके वहाँ से बहुत सारा घी और चावल निकाल कर वेश्याओं को दे दिया।।७७।।

७२ = ८/२१८ ७३ = ८/२२० ७४ = ८/२२१
७५ = ८/२२२ ७६ = ८/२२३ ७७ = ८/२२५

तद्वार्त्ताकर्णनाद्राज्ञा बन्धितस्तीव्रवेदनः।
चपेटाचरणाघातैर्मृत्वा व्याघ्र इहाभवत्।।७८।।
वराहोऽयं भवेऽतीते पुरे विजयनामनि।
सूनुर्वसन्तसेनायां महानन्दनृपादभूत्।।७९।।
हरिवाहननामासौ पित्रोरप्यविनीतकः।
तिर्यगायुरतो बद्ध्वा नैच्छत्पित्रनुशासनम्।।८०।।
धावमानः शिलास्तम्भ जर्जरीकृतमस्तकः।
आर्त्तो मृत्वा वराहोऽभूद्धानरोऽयं पुरा भवे।।८१।।
पुरे धान्याह्वये जातः कुबेराख्यवणिक्सुतः।
सुदत्तागर्भसम्भूतो नागदत्तसमाह्वयः।।८२।।
स्वानुजाया विवाहार्थं स्वापणे स्वापतेयकम्।
स्वाम्बायमादधानायां सुपरीक्ष्य यथेप्सितम्।।८३।।

इस समाचार को सुनने पर राजा ने उसे बँधवा कर थप्पड़, लात, घूँसा आदि की बहुत मार दिलायी, जिसके कारण वह तीव्र वेदनायुक्त मरण करके यहाँ व्याघ्र हुआ।।७८।।

यह वराह पूर्वभव में विजय नामक नगर में राजा महानन्द और रानी वसन्तसेना के हरिवाहन नामका पुत्र था। यह अप्रत्याख्यान मान से युक्त था। माता-पिता के अनुशासन को नहीं मान कर दौड़ा जा रहा था। पत्थर के खम्बे से टकरा कर उसका मस्तक जर्जर हो गया। वह आर्त्तध्यान से मरा। इसे तिर्यंच आयु बन्ध चुकी थी। इसीलिये यह यहाँ वराह हुआ है।।७९,८०,८१।।

यह वानर पूर्वभव में धन्यपुर नामक नगर में कुबेर वणिक् के घर उसकी सुदत्ता नामक स्त्री के गर्भ से नागदत्त नामक पुत्र हुआ था।।८२।।

एकदिन उसकी माता उसके छोटी बहन के विवाह के लिए कुछ सामान ला रही थी। माता को किसप्रकार ठगना चाहिये ? यह उपाय वह सोच नहीं पाया, परन्तु उसी उपाय को सोचने की उधेड़बुन में अचानक आर्त्तध्यान

७८ = ८/२२६ ७९ = ८/२२७ ८० = ८/२२८,२२९
८१ = ८/२२९,२३० ८२ = ८/२३०,२३१ ८३ = ८/२३२

ततस्तद्ध्वनोपायामजानन्नार्त्तधीर्मृतः।
तिर्यगायुर्वशेनासौ गोलाङ्गूलत्वमित्यगात्।।८४।।
नकुलोऽयं भवेऽन्यस्मिन् सुप्रतिष्ठितपत्तने।
अभूत्कादम्बिको नाम्ना लोलुपो धनलोलुपः।।८५।।
सोऽन्यदा नृपतौ चैत्यगृहनिर्मापणोद्यते।
इष्टका विष्टिपुरुषैरानाययति लुब्धधीः।।८६।।
दत्त्वा पूपं निगूढं स्व मूढः प्रावेशयद्गृहम्।
इष्टकास्तत्र कासाञ्चित् भेदेऽपश्यच्च काञ्चनम्।।८७।।
तल्लोभादिष्टका भूयोऽप्यानाययितुमुद्यतः।
पुरुषैर्वैष्टिकैस्तेभ्यो दत्वापूपादिभोजनम्।।८८।।
स्वसुताग्राममन्येद्युः स गच्छन्पुत्रमात्मनः।
न्ययुङ्क्त पुत्रकाहारं दत्वानाय्यास्त्वयेष्टकाः।।८९।।

से वह मर गया। तिर्यंचायु का बन्ध होने के कारण वह वानर हुआ है।।८३,८४।।

यह नकुल भी पूर्वभव में इसी सुप्रतिष्ठित नगर में लोलुप नामक हलवाई था। वह धनलोलुप था।।८७।।

किसी समय उस नगर का राजा जिनमन्दिर बना रहा था। उसके लिये वह मजदूरों से ईंटे बुलवाता था। उस लोभी और मूर्ख हलवाई ने पुआ वगैरह देकर कुछ ईंटे अपने घर में डलवा ली। इन ईंटों को फोड़ने पर कुछ ईंटों में थोड़ा स्वर्ण निकला। यह देख कर उसकी लिप्सा अधिक बढ़ गयी। वह पूपादिक (मालपूआदि) भोजन देकर मजदूरों से और अधिक ईंटे डलवाने लगा।।८६,८७,८८।।

एकदिन उसे अपनी पुत्री के गाँव जाना पड़ा। जाते समय उसने अपने पुत्र को बुला कर कहा - तुम मजदूरों को भोजन देकर उनसे अपने घर में ईंटे डलवा लेना।।८९।।

८४ = ८/२३३ ८५ = ८/२३४ ८६ = ८/२३५
८७ = ८/२३६ ८८ = ८/२३७ ८९ = ८/२३८

इत्युक्त्वास्मिन्गते पुत्रस्तत्तथा नाकरोदतः।
स निवृत्य सुतं पृष्ट्वा रुष्टोऽसौ दुष्टमानसः।।९०।।
शिरः पुत्रस्य निर्भिद्य लकुटोपलताडनैः।
चरणौ स्वौ च निर्वेदाद्धभञ्ज किल मूढधीः।।९१।।
राज्ञा च घातितो मृत्त्वा नकुलत्वमुपागमत्।
युष्मद्दानं समीक्ष्यैते प्रमोदं परमागताः।।९२।।
प्राप्ता जातिस्मरत्वं च निर्वेदमधिकं श्रिताः।
ततोऽविभीतिमुत्सृज्य स्थिता धर्मश्रवार्थिनः।।९३।।
इतोऽष्टमे भवे भाविन्यपुनर्भवतां भवान्।
भवितामी च तत्रैव भवे सेत्स्यन्त्यसंशयम्।।९४।।
श्रीमती च भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्त्तकः।
श्रेयान्भूत्वा परं श्रेयः श्रमिष्यति न संशयः।।९५।।

अपने पुत्र को समझा कर वह गाँव को चला गया किन्तु पुत्र ने उसके कहे अनुसार नहीं किया। उसके लौट आने पर उसे जब ज्ञात हुआ तो वह पुत्र पर रुष्ट हो गया।।९०।।

उस मूर्ख ने लकड़ी और पत्थर की मार से पुत्र का सिर ही फोड़ डाला। उस दुःख से दुःखित होकर अपने पैर भी काट डाले।।९१।।

अन्त में, वह राजा के द्वारा मारा जाकर नेवला हुआ है। आपको दान देते हुए देख कर ये चारों परमहर्ष को प्राप्त हो रहे हैं।।९२।।

इनको जातिस्मरण हो जाने से ये संसार से बहुत विरक्त हो गये हैं। अतः भय को छोड़ कर धर्मश्रवण करने की इच्छा से यहाँ आकर बैठे हुए हैं।।९३।।

इस भव से आगामी आठवें भव में तुम आदिनाथ तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करोगे और उसी भव में ये भी सिद्ध होंगे - इसमें कोई संशय नहीं है।।९४।।

श्रीमती का जीव आपके तीर्थ में दानतीर्थ का प्रवर्त्तक राजा श्रेयांस होगा तथा वह परम श्रेय को प्राप्त करेगा - इसमें संशय नहीं हैं।।९५।।

९० = ८/२३९ ९१ = ८/२४० ९२ = ८/२४१,२४२
९३ = ८/२४२,२४३ ९४ = ८/२४४ ९५ = ८/२४६

ततोऽभिवन्द्य योगीन्द्रौ नरेन्द्रः प्रिययान्वितः।
स्वावासं प्रत्यगात्प्रीतैः समं मतिवरादिभिः।।९६।।
ततः प्रयाणकैः कैश्चित् सम्प्रापत्पुण्डरीकिणीम्।
तत्रापश्यच्च शोकार्त्तां देवीं लक्ष्मीमतीं सतीम्।।९७।।
अनुन्धरीं च सोत्कण्ठां समाश्वास्य शनैरसौ।
पुण्डरीकस्य तद्राज्यमकरोन्निरुपप्लवम्।।९८।।
समन्त्रिकं ततो राज्ये बालं बालार्कसप्रभम्।
निवेश्य पुनरावृत्तः प्रापदुत्पलखेटकम्।।९९।।
(छन्द = शार्दूलविक्रीड़ित)
तत्रासौ सुखमावसत् स्वरुचितान् भोगान्स्वपुण्योर्जितान्।।
भुञ्जानः षड्तुप्रमोदजनने हर्म्ये मनोहारिणि।।

तदनन्तर राजा दोनों मुनियों को नमस्कार करके रानी श्रीमती और अतिशय प्रसन्न हुए मतिवरादि के साथ अपने आवास पर आ गये।।९६।।

तदनन्तर वहाँ से वे कितने ही पड़ाव चल कर पुण्डरीकिणी में जा पहुँचे। वहाँ जाकर उसने शोक से पीड़ित हुई सती लक्ष्मीमती देवी को देखा।।९७।।

भाई से मिलने की उत्कण्ठा से सहित अनुन्धरा नामक अपनी छोटी बहन को भी उसने देखा। उन्हें आश्वासन देकर समझाया। तत्पश्चात् पुण्डरीकिणी राज्य को निष्कण्टक बना दिया।।९८।।

बालार्क के समान देदीप्यमान बालक को सिंहासन पर बिठा कर तथा सुयोग्य मन्त्री के हाथों में व्यवस्था सौंप कर वह राजा पुनः उत्पलखेट नगर में आ गया।।९९।।

छहों ऋतुओं में हर्ष उत्पन्न करने वाले उस मनोहर राजभवन में कामदेव के समान सुन्दर वज्रजंघ अपने पुण्योदय से प्राप्त हुए मनोनुकूल भोगों का

९६ = ८/२४८ ९७ = ८/२५१
९८ = ८/२५२ ९९ = ८/२५४ १०० = ८/२५७

सम्भोगैरुचितैः शचीमिव हरिः सम्भावयन् प्रेयसीं।
जैनं धर्ममनुस्मरन् स्मरनिभः कीर्तिं च तन्वन्दिशि।।१००।।
इति श्रीपुराण समाम्नाये पञ्चमं पर्व।

उपभोग करता हुआ सुख से निवास करता था तथा जिसप्रकार सम्भोगादि उचित उपायों के द्वारा इन्द्र इन्द्राणी को प्रसन्न रखता है, वह भी श्रीमती को प्रसन्न रखता था। वह सदा जैनधर्म का स्मरण करता था और सम्पूर्ण दिशाओं में अपनी कीर्ति फैलाता रहता था।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण में पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

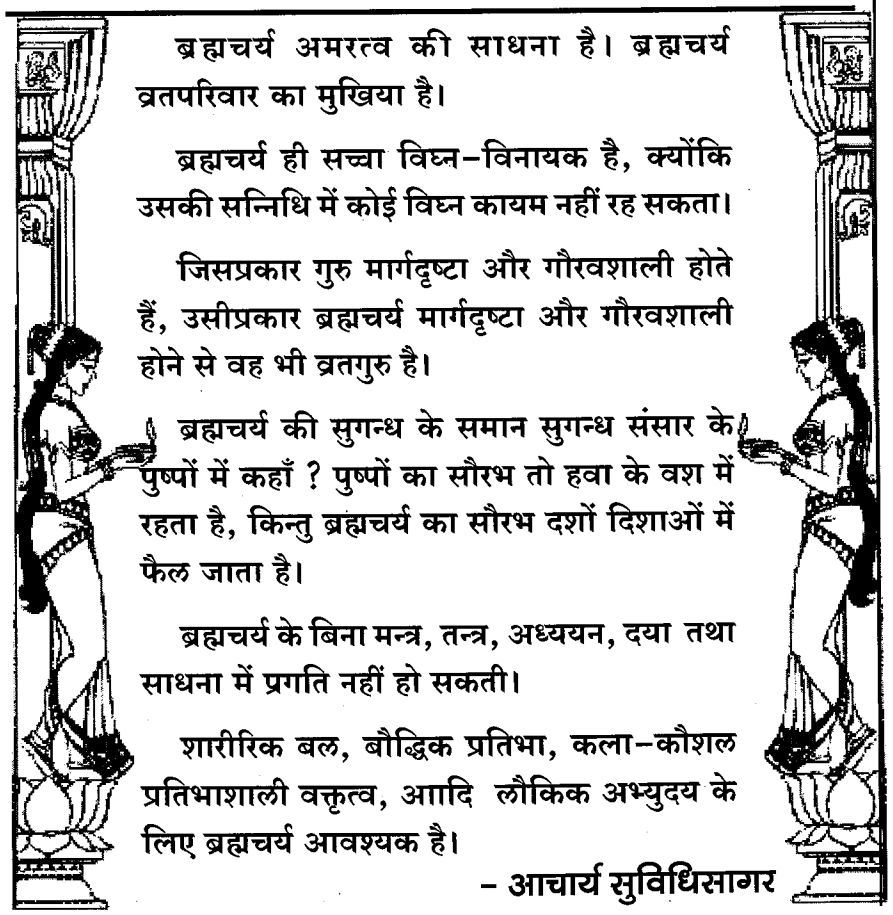

ब्रह्मचर्य अमरत्व की साधना है। ब्रह्मचर्य व्रतपरिवार का मुखिया है।

ब्रह्मचर्य ही सच्चा विघ्न-विनायक है, क्योंकि उसकी सन्निधि में कोई विघ्न कायम नहीं रह सकता।

जिसप्रकार गुरु मार्गदृष्टा और गौरवशाली होते हैं, उसीप्रकार ब्रह्मचर्य मार्गदृष्टा और गौरवशाली होने से वह भी व्रतगुरु है।

ब्रह्मचर्य की सुगन्ध के समान सुगन्ध संसार के पुष्पों में कहाँ ? पुष्पों का सौरभ तो हवा के वश में रहता है, किन्तु ब्रह्मचर्य का सौरभ दशों दिशाओं में फैल जाता है।

ब्रह्मचर्य के बिना मन्त्र, तन्त्र, अध्ययन, दया तथा साधना में प्रगति नहीं हो सकती।

शारीरिक बल, बौद्धिक प्रतिभा, कला-कौशल प्रतिभाशाली वक्तृत्व, आादि लौकिक अभ्युदय के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है।

- आचार्य सुविधिसागर

श्रीधर एवं स्वयम्प्रभ

षष्ठ पर्व

(तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध)

- वज्रजंघ और श्रीमती की मृत्यु एवं देव पर्याय
- सुविधि का जन्म एवं स्वर्गगमन
- वज्रनाभि राजकुमार को तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

षष्टमं पर्व

अथ कालागुरूद्दामधूपधूमाधिवासिते।
मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीकृततमस्तरे।।१।।
वासगेहेऽन्यदा शिश्ये तल्पे मृदुनि हारिणि।
प्रियास्तनतटस्पर्श सुखामीलितलोचनः।।२।।
तत्र वातायनद्वारपिधानारुद्धधूमके।
केशसंस्कारधूपोद्यद्धूमेन क्षणमूर्च्छितौ।।३।।
निरुद्धोच्छ्वासदौःस्थित्यादन्तः किञ्चिदिवाकुलौ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः।।४।।

श्रीपुराणम्

छठा अधिकार

अथानन्तर राजा वज्रजंघ का शयनागार कालागुरु से बनी हुई उत्कृष्ट धूप के धुँओं से अत्यन्त सुगन्धित हो रहा था। मणिमय दीपकों के प्रकाश से अन्धकार भी दूर हो रहा था।।१।।

ऐसे महल में एकबार राजा मृदु शय्या पर सोया हुआ था। श्रीमती के स्तनों के तट का स्पर्श करने से उत्पन्न होने वाले सुख के कारण उसके नेत्र बन्द हो रहे थे।।२।।

शयनागार को सुगन्धित बनाने के लिये तथा केशों का संस्कार करने के लिये उसमें अनेक प्रकार की धूप जल रही थी। झरोखे के द्वार बन्द होने से अवरुद्ध हुए धूम के कारण वे दोनों मूर्च्छित हो गये।।३।।

उस धूम से उन दोनों की श्वास रुक गयी, जिससे उन दोनों के अन्तःकरण में व्याकुलता उत्पन्न हो गयी। अन्त में मध्यरात्रि के समय वे दम्पति चिरनिद्रा (मृत्यु) को प्राप्त हो गये।।४।।

१ = ८/३२ २ = ८/३३ ३ = ८/३५ ४ = ८/३८

जम्बूद्वीपेमहामेरोरुत्तरां दिशमाश्रिताः।
सन्त्युदक्कुरवो नाम स्वर्गश्रीपरिहासिनः।।७।।
नवमासं स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे।
यत्र दम्पतितामेत्य जायन्ते दानिनो नराः।।६।।
यदा दम्पतिसम्भूतिर्जनयित्रोः परासुता।
तदैव तत्र पुत्रादिसङ्कल्पो यन्न देहिनाम्।।७।।
इत्यत्यन्तसुखे तस्मिन् क्षेत्रे पात्रप्रदानतः।
श्रीमती वज्रजङ्घश्च दम्पतित्वमुपेयतुः।।८।।
प्रागुक्ताश्च मृगा जन्म भेजुस्तत्रैव भद्रकाः।
पात्रदानानुमोदेन दिव्यं मानुष्यमाश्रिताः।।९।।
तथा मतिवराद्याश्च तद्वियोगाद्गताः शुचम्।

जम्बूद्वीपस्थ महामेरु के उत्तर की ओर उत्तरकुरु नामक भोगभूमि है, जो अपनी शोभा से सदा स्वर्गश्री का उपहास करती है।।७।।

वहाँ पूर्वभव में दान देने वाले मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। वे दोनों उत्पत्ति से पूर्व नौ माह तक गर्भ में ऐसे रहे, जैसे कोई रत्नों के महल में रहता है।।६।।

वहाँ जिससमय दम्पति का जन्म होता है, उसीसमय उनके माता-पिता का देहान्त हो जाता है। अतः वहाँ जीवों में पुत्रादि का संकल्प नहीं होता।।७।।

इसप्रकार अत्यन्त सुख से पूर्ण उस क्षेत्र में पात्रदान के प्रभाव से श्रीमती और वज्रजंघ दम्पति अवस्था को प्राप्त हुए।।८।।

पूर्वकथित मृगादि जीव भी पात्रदान की अनुमोदना करने के प्रभाव से वहीं पर दिव्य मनुष्य शरीर को प्राप्त करने वाले भद्र परिणामी आर्य हुए।।९।।

इधर मतिवरादिक भी राजा के विरह से उत्पन्न हुए शोक के कारण दुःखी हुए और अन्त में उन्होंने दृढ़धर्माचार्य के सन्निकट जाकर जिनदीक्षा ग्रहण की।।१०।।

५ = ९/३४ ६ = ९/६८ ७ = ९/६९
८ = ९/८९ ९ = ९/९० १० = ९/९१

दृढधर्मान्तिके दीक्षां जैनीमाशिश्रियन्पराम्।।१०।।
अधोग्रैवेयकस्याधो विमाने तेऽहमिन्द्रताम्।
प्राप्तास्तपोऽनुभावेन तपो हि फलतीप्सितम्।।११।।
अथातो वज्रजङ्घार्यः कान्तया सममेकदा।
कल्पपादपजां लक्ष्मीमीक्षमाणः क्षणं स्थितः।।१२।।
सूर्यप्रभस्य देवस्य नभोयायि विमानकम्।
दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा प्रबुद्धः प्रियया समम्।।१३।।
तावच्चारणयोर्युग्मं दूरादागच्छदैक्षत।
तं च तावनुगृह्णन्तौ व्योम्नः समवतेरतुः।।१४।।
दृष्ट्वा तौ सहसासीर्‌यासीदभ्युत्थानादिसम्भ्रमः।
तयोरधिपदद्वन्द्वं दत्तार्घः प्रणनाम सः।।१५।।
ततः सुखोपविष्टौ तौ सोऽपृच्छदिति चारणौ।
लसद्दन्तांशु सन्तानैः पुष्पाञ्जलिमिवाकिरन्।।१६।।

वे तप के प्रभाव से अधोग्रैवेयक के अधो विमान में अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए। सो ठीक ही है। तप सब के अभीष्ट फलों को फलता ही है।।११।।

एकबार वज्रजंघ आर्य अपनी स्त्री के साथ कल्पवृक्ष की शोभा को निहारता हुआ क्षणभर बैठा ही था कि आकाश में जाते हुए सूर्यप्रभ देव के विमान को देख कर उसे और उसकी स्त्री को एक साथ जातिस्मरण हो गया।।१२,१३।।

उसीसमय उसने दूर से आते हुए दो चारण मुनिराज देखे। वे मुनिराज उस पर अनुग्रह करने के लिये आकाशमार्ग से नीचे उतरे।।१४।।

उन्हें आता हुआ देख कर वह आर्य शीघ्र ही खड़ा हो गया तथा उसने दोनों मुनियों के चरणकमलों में अर्घ्य देकर प्रणाम किया।।१५।।

जब दोनों मुनिराज सुखपूर्वक बैठ गये, तब उसने मुनिराज से पूछा। पूछते समय उसके मुख से दाँतों की किरणों का समूह ऐसे निकल रहा था, जैसे पुष्पांजलि ही बिखेर रहा हो।।१६।।

११ = ९/९३ १२ = ९/९४ १३ = ९/९५
१४ = ९/९६ १५ = ९/९७,९९ १६ = ९/१०१

भगवन्तौ युवां क्वत्यौ कुतस्त्यौ किं नु कारणम्।
युष्मदागमने ब्रूतमिदमेतत्तयाद्य मे।।१७।।
युष्मत्सन्दर्शनाज्जात सौहार्दं मम मानसम्।
प्रसीदति किमु ज्ञात पूर्वौ ज्ञाती युवां मम।।१८।।
इति प्रश्नावसानेऽस्य मुनिर्ज्यायानभाषत।
दशनांशुजलोत्पीडैः क्षालयन्निव तत्तनुम्।।१९।।
त्वं विद्धि मां स्वयम्बुद्धं यतोऽबुद्धाः प्रबुद्धधीः।
महाबलभवे जैनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।।२०।।
तद्वियोगादहं जातनिर्वेदो बोधिमाश्रितः।
दीक्षित्वाभूवमुत्सृष्टदेहः सौधर्मकल्पजः।।२१।।
स्वयम्प्रभ विमानेऽग्रे मणिचूलाह्वयः सुरः।

उसने पूछा - हे भगवन् ! आप कहाँ के रहने वाले हैं ? आप कहाँ से आये हैं ? और आपके आगमन का कारण क्या है ? यह सब आप मुझसे कहिये।।१७।।

आपके दर्शन से मेरे मन में मित्रता का भाव उमड़ रहा है, चित्त प्रसन्न हो रहा है और मुझे ज्ञात हो रहा है कि आप मेरे परिचित बन्धु हैं।।१८।।

इसप्रकार उसका प्रश्न समाप्त होने पर जेष्ठ मुनि अपने दाँतों की किरणों रूपी जलसमूह से उसके शरीर का प्रक्षालन करते हुए कहने लगे।।१९।।

हे आर्य ! तू मुझे उस स्वयम्बुद्ध का जीव जान, जिससे तूने महाबल की पर्याय में सम्यज्ञान को प्राप्त कर कर्मों का निवारण करने वाले जैनधर्म को जाना था।।२०।।

उस भव में तेरे वियोग से सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करके मैंने दीक्षा को अंगीकार किया था। जीवनान्त मैं समाधिपूर्वक शरीर छोड़ कर सौधम

१७ = ९/१०२ १८ = ९/१०३ १९ = ९/१०४
२० = ९/१०५ २१ = ९/१०६ २२ = ९/१०७

साधिकाब्ध्युपमायुष्कः ततश्च्युत्वा भुवं श्रितः।।२२।।
जम्बूद्धीपस्य पूर्वस्मिन् विदेहे पौष्कलावते।
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां प्रियसेनमहीभृतः।।२३।।
सुन्दर्याश्च सुतोऽभूवं ज्यायान् प्रीतिङ्करह्वयः।
प्रीतिदेवः कनीयान्मे मुनिरेष महातपाः।।२४।।
स्वयम्प्रभजिनोपान्ते दीक्षित्वा वामलप्स्वहि।
सावधिज्ञानमाकाशचारणत्वं तपोबलात्।।२५।।
महाबलभवेऽस्मत्तो बुद्ध्वा त्यक्ततनुस्थितिः।
नालब्ध दर्शने शुद्धिं भोगाकाङ्क्षानुबन्धतः।।२६।।
तस्मात्ते दर्शनं सम्यग्विशेषणमनुत्तरम्।
आयातौ दातुकामौ स्वः स्वर्मोक्षसुखसाधनम्।।२७।।

स्वर्ग के स्वयम्प्रभ विमान में मणिचूल नामक देव हुआ था। मेरी आयु साधिक एक सागर थी। वहाँ से चय कर मैं भूलोक में उत्पन्न हुआ हूँ।।२१,२२।।

जम्बूद्धीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में स्थित पुष्कलावती देश विषयक पुण्डरीकिणी नगरी में मैं प्रियसेन राजा और सुन्दरी देवी के प्रीतिंकर नामक जेष्ठ पुत्र हुआ हूँ। ये महातपस्वी प्रीतिदेव मेरे अनुज हैं।।२३,२४।।

हम दोनों ने स्वयम्प्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षा लेकर तपोबल से अवधिज्ञान और चारणऋद्धि प्राप्त की है।।२५।।

महाबल के भव में तुमने हमसे ही तत्त्वज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु उससमय भोगों की आकांक्षा के वश तुम सम्यग्दर्शन की विशुद्धता को प्राप्त नहीं कर पाये थे।।२६।।

अब हम दोनों, सर्वश्रेष्ठ तथा स्वर्ग और मोक्ष विषयक सुख के प्रधान कारणरूप सम्यग्दर्शन को देने की इच्छा से यहाँ आये हैं।।२७।।

२३ = ९/१०८ २४ = ९/१०९ २५ = ९/११०
२६ = ९/११३ २७ = ९/११४

तद्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तल्लाभे काल एष ते।
काललब्ध्या विना नार्य तदुत्पत्तिरिहाङ्गिनाम्।।२८।।
आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं तन्मूले ज्ञानचेष्टिते।।२९।।
त्वमप्यम्बावलम्बेथाः सम्यक्त्वमविलम्बितम्।
भवाम्बुधेस्तरण्डं तत् स्त्रैणात् किं बत खिद्यसि।।३०।।
इति प्रीतिङ्कराचार्यवचनं स प्रमाणयन्।
सजानिरादधे सम्यग्दर्शनं प्रीतमानसः।।३१।।
शार्दूलार्यादयोऽप्याभ्यां समं सद्दर्शनामृतम्।
तदा भेजुर्गुरोरस्य पादमूलमुपाश्रिताः।।३२।।
दम्पत्योरिति सम्प्रीत्या भोगान्निर्विशतोश्चिरम्।

हे आर्य ! तुम आज सम्यग्दर्शन को ग्रहण करो। उसे ग्रहण करने के लिये यह उचित समय है, क्योंकि काललब्धि के बिना किसी को भी सम्यग्दर्शन नहीं होता।।२८।।

आप्त, आगम और पदार्थों की अत्यन्त निष्ठा से श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र का मूलकारण है।।२९।।

हे श्रीमती ! तुम भी संसारसमुद्र को पार करने के लिये जहाज के समान इस सम्यग्दर्शन को ग्रहण करो। तुम स्त्रीपर्याय में वृथा ही क्यों खेदखिन्न हो रही हो।।३०।।

इसप्रकार प्रीतिंकर आचार्य के वचनों को प्रमाण मानते हुए वज्रजंघ आर्य ने अपनी स्त्री के साथ प्रसन्नचित्त होकर सम्यग्दर्शन को ग्रहण किया।।३१।।

शार्दूल आदिक के आर्य जीव भी प्रीतिंकर मुनिराज के चरणमूल का आश्रय लेकर उन दोनों के साथ-साथ ही सम्यग्दर्शनरूपी अमृत को प्राप्त हुए।।३२।।

२८ = ९/११५ २९ = ९/१२१ ३० = ९/१४३
३१ = ९/१४८ ३२ = ९/१५३ ३३ = ९/१८१

भोगकालस्तयोर्निष्ठां प्रापत्पल्यत्रयोन्मितः।।३३।।
जीवितान्ते सुखं प्राणान् हित्वा तौ पुण्यशेषतः।
प्रापतुः कल्पमैशानं गृहादिव गृहान्तरम्।।३४।।
विमाने श्रीप्रभे तत्र नित्यालोके स्फुरत्प्रभः।
स श्रीमान् वज्रजङ्घार्यः श्रीधराख्यः सुरोऽभवत्।।३५।।
सापि सम्यक्त्वमाहात्म्यात् स्त्रैणाद्विश्लेषमीयुषी।
स्वयम्प्रभविमानेऽभूत्तत्सनामा सुरोत्तमः।।३६।।
शार्दूलार्यादयोऽप्यस्मिन् कल्पेऽनल्पसुखोदये।
महर्द्धिकाः सुरा जाताः पुण्यैः किन्नु दुरासदम्।।३७।।
शार्दूलभूतपूर्वो यः स विमाने मनोहरे।
चित्राङ्गदे ज्वलन्मौलिरभूच्चित्राङ्गदोऽमरः।।३८।।
वराहार्यश्च नन्दाख्ये विमाने मणिकुण्डली।
ज्वलन्मुकुटकेयूरमणिकुण्डलभूषितः।।३९।।

इसप्रकार प्रीतिपूर्वक भोगों को भोगते हुए उन दोनों का तीन पल्य प्रमाण बहुत बड़ा काल व्यतीत हो गया।।३३।।

जीवनान्त में वे दोनों सुखपूर्वक प्राणों को छोड़ कर अवशिष्ट बचे हुए पुण्य से एक घर से दूसरे घर के समान ऐशान स्वर्ग में जा पहुँचे।।३४।।

वह वज्रजंघ ऐशान स्वर्ग में हमेशा प्रकाशमान रहने वाले श्रीप्रभ विमान में देदीप्यमान कान्ति का धारक श्रीधर नामक ऋद्धिसम्पन्न देव हुआ।।३५।।

वह श्रीमती आर्या भी सम्यक्त्व के माहात्म्य से स्त्रीलिंग का छेदन करके ऐशान स्वर्ग के स्वयम्प्रभ विमान में स्वयम्प्रभ नामक देव हुई।।३६।।

सिंहादिक के जीव भी अत्यन्त सुखमय उसी स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए। सो उचित ही है, क्योंकि पुण्य से क्या दुर्लभ है ? अर्थात् कुछ भी नहीं।।३७।।

जो सिंह का जीव था, वह चित्रांगद नामक मनोहर विमान में प्रकाशमान मुकुट का धारक चित्रांगद नामक देव हुआ।।३८।।

३४ = ९/१८२ ३५ = ९/१८५ ३६ = ९/१८६
३७ = ९/१८७ ३८ = ९/१८९ ३९ = ९/१९०

नन्द्यावर्तविमानेऽभूद्धानरार्यो मनोहरः।
सुराङ्गनामनोहारिचतुराकारसुन्दरः।।४०।।
प्रभाकरविमानेऽभून्नकुलार्यो मनोरथः।
मनोरथशतावाप्तदिव्य भोगोऽनृताशनः।।४१।।
इति पुण्योदयात्तेषां स्वर्लोकसुखभोगिनाम्।
रूपसौन्दर्यभोगादिवर्णना ललिताङ्गवत्।।४२।।
अथान्येद्युरबुद्धासौ प्रयुक्तावधिरञ्जसा।
स्वगुरुं प्राप्तकैवल्यं श्रीप्रभाद्रिमधिष्ठितम्।।४३।।
जगत्प्रीतिङ्करो योऽस्य गुरुः प्रीतिङ्कराह्वयः।
तमर्चितुमभीयाय वर्यया ससपर्यया।।४४।।

वराह का जीव नन्द नामक विमान में उज्ज्वल मुकुट, बाजूबन्द और मणिमय कुण्डलों से विभूषित मणिकुण्डल नामक देव हुआ।।३९।।

वानर का जीव नन्द्यावर्त्त नामक विमान में देवांगनाओं के मन को हरण करने वाला, सुन्दर आकार से शोभायमान मनोहर नामक देव हुआ।।४०।।

नकुल का जीव प्रभाकर नामक विमान में सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त हुए दिव्य भोगरूपी अमृत का सेवन करने वाला मनोरथ नामक देव हुआ।।४१।।

इसप्रकार पुण्योदय के कारण स्वर्गलोक के सुखों को भोगने वाले उन जीवों के रूप, सौन्दर्य और भोगादिक का वर्णन ललितांग देव के समान ही जानना चाहिये।।४२।।

किसीदिन श्रीधर देव ने अवधिज्ञान के द्वारा यथार्थरूप से यह जान लिया कि हमारे गुरु श्रीप्रभ-पर्वत पर विराजमान हैं और उन्हें केवलज्ञान हो गया है।।४३।।

जगत् के साथ प्रीति करने वाले प्रीतिंकर मुनिराज ही उसके गुरु थे। इन्हीं की पूजा करने के लिये वह देव उनके सम्मुख गया।।४४।।

४० = ९/१९१ ४१ = ९/१९२ ४२ = ९/१९३
४३ = १०/१ ४४ = १०/२

श्रीप्रभाद्रौ तमभ्यर्च्य सर्वज्ञमभिवन्द्य च।
श्रुत्वा धर्मं ततोऽपृच्छदित्यसौ स्वमनीषितम्।।४५।।
महाबलभवे येऽस्मन्मन्त्रिणो दुर्दृशस्त्रयः।
क्वाद्य ते लब्धजन्मानः कीदृशीं वा गतिं श्रिताः।।४६।।
इति पृष्टवते तस्मै सोऽवोचत्सर्वभाववित्।
द्धौ निगोतास्पदं यातौ तमोऽन्धं यत्र केवलम्।।४७।।
स एव शतबुद्धिस्ते मिथ्याज्ञानस्य दार्ढ्यतः।
द्धितीयनरके दुःखमनुभुङ्क्तेऽतिदारुणम्।।४८।।
तदा प्रीतिङ्करस्येति वचः श्रुत्वा जिनेशिनः।
श्रीधरो धर्मसंवेगं परं प्रापत्स पुण्यधीः।।४९।।
गत्वा गुरुनिदेशेन शतबुद्धिमबोधयत्।
किं भद्रमुख मां वेत्सि शतबुद्धे महाबलम्।।५०।।

जाते ही उसने श्रीप्रभ-पर्वत पर विराजमान सर्वज्ञ भगवान की पूजा की, उन्हें नमस्कार किया, उनसे धर्म का स्वरूप सुना और फिर निम्नलिखित प्रश्न किये।।४५।।

मेरे महाबल भव में जो मेरे तीन मन्त्री मिथ्यादृष्टि थे, वे कौनसी गति को प्राप्त हुए हैं ? अभी वे कहाँ हैं ?।।४६।।

ऐसा पूछने वाले श्रीधर देव से सर्वज्ञदेव ने कहा - उन तीनों में से दो तो जहाँ केवल अन्धकार ही है - ऐसे निगोद को प्राप्त हुए हैं।।४७।।

तुम्हारा शतबुद्धि नामक वह मन्त्री मिथ्याज्ञान की दृढ़ता के कारण दूसरे नरक में अत्यन्त भयंकर दुःख भोग रहा है।।४८।।

जिनेन्द्र के वचनों को सुन कर उससमय पवित्र बुद्धि का धारक श्रीधरदेव अतिशय धर्मप्रेम को प्राप्त हुआ।।४९।।

गुरु की आज्ञा के अनुसार वह दूसरे नरक में जाकर शतबुद्धि को समझाने लगा - हे भद्रमुखी शतबुद्धि ! क्या तुम मुझ महाबल को जानते हो ?।।५०।।

४५ = १०/३	४६ = १०/४	४७ = १०/५,७
४८ = १०/१२	४९ = १०/११०	५० = १०/१११

तदासीत्तव मिथ्यात्वमुद्रिक्तं दुर्नयाश्रयात्।
पश्य तत्परिपाकोऽयमस्वन्तस्ते पुरःस्थितः।।५१।।
इत्यसौ बोधितस्तेन शुद्धं दर्शनमग्रहीत्।
मिथ्यात्वकलुषापायात् परां शुद्धिमुपाश्रितः।।५२।।
कालान्ते नरकाद्धीमान्निर्गत्य शतधीचरः।
पुष्करद्धीपपूर्वार्द्धप्राग्विदेहमुपागतः।।५३।।
विषये मङ्गलावत्यां नगर्यां रत्नसञ्चये।
महीधरस्य सम्राजः सुन्दर्याश्च सुतोऽभवत्।।५४।।
जयसेनश्रुतिर्बुद्ध्वा विवाहसमये सुरात्।
श्रीधराख्यात्प्रवव्राज गुरुं यमधरं श्रितः।।५५।।
ततो ब्रह्मेन्द्रतां सोऽगात् जीवितान्ते समाहितः।

उस भव में मिथ्यानयों के आश्रय से तुम्हारा मिथ्यात्व बहुत प्रबल हो रहा था। देखो ! उसका यह दुःख देने वाला फल तुम्हारे समक्ष है।।५१।।

इसप्रकार जब श्रीधरदेव ने शतबुद्धि को समझाया तब उसने शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण किया तथा मिथ्यात्वरूपी मल नष्ट हो जाने से उत्कृष्ट विशुद्धि प्राप्त की।।५२।।

कालान्त में वह शतबुद्धि का जीव भयंकर नरक से निकल कर पूर्व-पुष्कर द्धीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती देश के रत्नसंचयपुर नगर में महीधर नामक चक्रवर्ती के सुन्दरी नामक रानी से जयसेन नामक पुत्र हुआ। जब उसका विवाह हो रहा था तब उसे श्रीधर देव ने आकर समझाया। इस कारण से विरक्त होकर उसने यमधर मुनिराज से जैनेश्वरी दीक्षा धारण की।।५३,५४,५५।।

आयु के अन्त में समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़ कर वह ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त हुआ। वहाँ से आकर उसने अपने कल्याणकारी मित्र श्रीधर की पूजा की।।५६।।

५१ = १०/११२	५२ = १०/११३	५३ = १०/११४
५४ = १०/११५	५५ = १०/११६	५६ = १०/११८,१२०

श्रीधरं पूजयामास गतं कल्याणमित्रताम्।।५६।।
श्रीधरोऽथ दिवश्च्युत्वा जम्बूद्धीपमुपाश्रिते।
प्राग्विदेहे महावत्सविषये स्वर्गसन्निभे।।५७।।
सुसीमानगरे जज्ञे सुदृष्टिनृपतेः सुतः।
मातुः सुन्दरनन्दायाः सुविधिर्नाम पुण्यधीः।।५८।।
चक्रिणोऽभयघोषस्य स्वस्त्रीयोऽयं यतो युवा।
ततश्चक्रिसुतानेन परिणिन्ये मनोरमा।।५९।।
तयोरत्यन्तसम्प्रीत्या काले गच्छत्यनन्तरम्।
स्वयम्प्रभा दिवश्च्युत्वा केशवाख्यः सुतोऽजनि।।६०।।
तस्मिन्पुत्रे नृपस्यास्य प्रीतिरासीद्गरीयसी।
पुत्रमात्रं च सम्प्रीत्यै किमुतेऽष्टाङ्गनाचरः।।६१।।
शार्दूलार्यचराद्याश्च देशेऽत्रैव नृपात्मजाः।
जाताः समानपुण्यत्वादन्योऽन्यसदृशर्द्धयः।।६२।।

अनन्तर श्रीधर देव स्वर्ग से च्युत होकर जम्बूद्धीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में स्वर्ग के समान सुशोभित होने वाले सुसीमा नगरी में सुदृष्टि राजा की सुन्दरनन्दा रानी से सुविधि नामक पवित्र बुद्धिधारी पुत्र हुआ।।५७,५८।।

युवावस्था को धारण करने वाला वह सुविधि अभयघोष चक्रवर्ती का भानजा था। इसीलिये उसने उसी चक्रवर्ती की कन्या मनोरमा के साथ विवाह किया था।।५९।।

इसप्रकार प्रीतिपूर्वक उनका काल व्यतीत हो रहा था कि स्वयम्प्रभ नामक देव स्वर्ग से चय कर उनका केशव नामक पुत्र हुआ।।६०।।

उस पुत्र पर राजा की अपूर्व प्रीति थी। ठीक ही है - जब पुत्रमात्र प्रीति के लिये होता है, तब वह स्त्री का जीव हो तो फिर क्या कहना ?।।६१।।

सिंहादिक के जीव जो भोगभूमि के बाद स्वर्ग में गये थे, वे भी वहाँ से चय कर उसी के समान विभूति को धारण करने वाले राजपुत्र हुए।।६२।।

५७ = १०/१२१	५८ = १०/१२२	५९ = १०/१४३
६० = १०/१४५	६१ = १०/१४७	६२ = १०/१४८

विभीषणनृपात्पुत्रः प्रियदत्तोदरेऽजनि।
देवश्चित्राङ्गदश्च्युत्वा वरदत्ताह्वयो दिवः।।६३।।
नन्दिषेणनृपानन्तमत्योः सूनुरजायत।
मणिकुण्डलनामासौ वरसेनसमाह्वयः।।६४।।
रतिषेणमहीभर्त्तुश्चन्द्रमत्यां सुतोऽजनि।
मनोहरो दिवश्च्युत्वा चित्राङ्गदसमाख्यया।।६५।।
प्रभञ्जननृपाच्चित्रमालिन्यां स मनोरथः।
प्रशान्तमदनः सूनुरजनिष्ट दिवश्च्युतः।।६६।।
ततोऽमी चक्रिणान्येद्युरभिवन्द्य समं जिनम्।
भक्त्या विमलवाहाख्यं महाप्राव्राज्यमाश्रिताः।।६७।।
नृपैरष्टादशाभ्यस्त सहस्रप्रमितैरमा।
सहस्रैः पञ्चभिः पुत्रैः प्राव्राजीच्चक्रवर्त्यसौ।।६८।।

चित्रांगद देव स्वर्ग से च्युत होकर विभीषण राजा की प्रियदत्ता रानी से वरदत्त नामक पुत्र हुआ।।६३।।

मणिकुण्डल देव स्वर्ग से च्युत होकर नन्दिषेण राजा की अनन्तमती रानी से वरसेन नामक पुत्र हुआ।।६४।।

मनोहर नामक देव स्वर्ग से च्युत होकर रतिषेण राजा की चन्द्रमती रानी से चित्रांगद नामक पुत्र हुआ।।६५।।

मनोरथ नामक देव स्वर्ग से च्युत होकर प्रभंजन राजा की चित्रमालिनी रानी से प्रशान्तमदन नामक पुत्र हुआ।।६६।।

अथानन्तर चक्रवर्ती के साथ वे चारों ही राजा विमलवाहन जिनेन्द्र की वन्दना करने के लिये गए और उन्होंने वहीं जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।।६७।।

वह चक्रवर्ती अठारह हजार राजाओं और पाँच हजार पुत्रों के साथ दीक्षित हुआ।।६८।।

६३ = १०/१४९	६४ = १०/१५०	६५ = १०/१५१
६६ = १०/१५२	६७ = १०/१५३	६८ = १०/१५४

नृपस्तु सुविधिः पुत्रस्नेहाद्गार्हस्थ्यमत्यजन्।
उत्कृष्टोपासकस्थान तपस्तेपे सुदुश्चरम्।।६९।।
अथावसाने नैर्ग्रन्थीं प्रव्रज्यामुपसेदिवान्।
सुविधिर्विधिनाराध्य मुक्तिमार्गरनुत्तरम्।।७०।।
समाधिना तनुत्यागादच्युतेन्द्रेऽभवद्धिभुः।
द्वाविंशत्यब्धिसंख्यात परमायुर्महार्द्धिकः।।७१।।
कैशवश्च परित्यक्तकृत्स्नबाह्येतरोपधिः।
नैःसङ्गीमाश्रितो दीक्षामतीन्द्रोऽभवदच्युते।।७२।।
पूर्वोक्ता नृपपुत्राश्च वरदत्तादयः क्रमात्।
समजायन्त पुण्यैः स्वैस्तत्र सामानिकाः सुराः।।७३।।
मानसोऽस्य प्रवीचारो विष्वाणोऽप्यस्य मानसः।
द्वाविंशतिसहस्रैश्च समानां सकृदाहरेत्।।७४।।

राजा सुविधि ने पुत्रस्नेह से दीक्षा ग्रहण नहीं की। इसीलिये वह श्रावक के उत्कृष्ट पद में स्थित रह कर कठिन तप करने लगा।।६९।।

अन्त समय में निर्ग्रन्थ दीक्षा को प्राप्त हुए राजा सुविधि ने उत्कृष्ट मोक्षमार्ग की आराधना की।।७०।।

उन्होंने समाधिपूर्वक शरीर का त्याग किया, जिससे वे अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुए। वहाँ उनकी आयु बाईस सागर की थी। उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुई थी।।७१।।

केशव ने बाह्याभ्यन्तररूप सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग करके निःसंग दीक्षा धारण की और वह अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र हुआ।।७२।।

वरदत्तादि राजपुत्र भी अपने-अपने पुण्यकर्म के उदय से उसी स्वर्ग में सामानिक जाति के देव हुए।।७३।।

उस अच्युतेन्द्र का मानसिक प्रवीचार था, आहार भी मानसिक था। वह बाईस हजार वर्षों में एकबार आहार करता था।।७४।।

६९ = १०/१५८ ७० = १०/१६९ ७१ = १०/१७०
७२ = १०/१७१ ७३ = १०/१७२ ७४ = १०/२०२

तथैकादशभिर्मासैः सकृदुच्छ्वसितं भजेत्।
त्र्यरत्निप्रमितोत्सेधदिव्यदेहधरः स च।।७७।।
ततोऽच्युतेन्द्रः प्रच्युत्य जम्बूद्वीपे महाद्युतौ।
प्राग्विदेहाश्रिते देशे पुष्कलावत्यभीष्टवे।।७६।।
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां वज्रसेनस्य भूभुजः।
श्रीकान्तायाश्च पुत्रोऽभूद्वज्रनाभिरिति प्रभुः।।७७।।
तयोरेव सुता जाता वरदत्तादयः क्रमात्।
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽप्यपराजितः।।७८।।
तदाभूवंस्तयोरेव प्रियाः पुत्रा महोदयाः।
पूर्वोद्दिष्टाहमिन्द्रास्तेऽप्यधोग्रैवेयकाच्युताः।।७९।।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽभूद्यः प्राग्मतिवरः कृती।
आनन्दश्च महाबाहुः पीठाह्वोऽभूदकम्पनः।।८०।।
महापीठोऽभवत्सोऽपि धनमित्रचरः सुरः।

वह ग्यारह महीने में एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था और तीन हाथ ऊँचे सुन्दर शरीर को धारण करने वाला था।।७७।।

तदनन्तर वह अच्युतेन्द्र स्वर्ग से चय कर महाद्युतिमन्त जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा वज्रसेन और श्रीकान्ता रानी का वज्रनाभि नामक समर्थ पुत्र हुआ।।७६,७७।।

वरदत्तादि के जीव भी उन्हीं राजा और रानी के विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक पुत्र हुए।।७८।।

पूर्वकथित मतिवर मन्त्री आदि के जीव अधोग्रैवेयक से च्युत होकर उन्हीं राजा और रानी के पुत्र हुए।।७९।।

जो पहले मतिवर नामक मन्त्री था वह सुबाहु नामक पुत्र हुआ। आनन्द का जीव महाबाहु, अकम्पन का जीव पीठ और धनमित्र का जीव महापीठ

७५ = १०/२०३ ७६ = ११/८ ७७ = ११/९ ७८ = ११/१०
७९ = ११/११ ८० = ११/१२ ८१ = ११/१३

संस्कारैः प्राक्तनैरेव घटनैकत्र देहिनाम्।।८१।।
नगर्यां केशवोऽत्रैव धनदेवाह्वयोऽभवत्।
कुबेरदत्तवणिजोऽनन्तमत्याश्च नन्दनः।।८२।।
वज्रनाभिरथापूर्णयौवनो रुरुचे भृशम्।
बालार्क इव निष्टप्तचामीकरसमद्युतिः।।८३।।
ततोऽस्य योग्यतां मत्वा वज्रसेनमहाप्रभुः।
राज्यलक्ष्मीं समग्रां स्वामस्मिन्नेव न्ययोजयत्।।८४।।
अनन्तरं च लौकान्तिकामरैः प्रतिबोधितः।
वज्रसेनमहाराजो न्यधान्निष्क्रमणे मतिम्।।८५।।
यथोचितामपचितिं तन्वत्सूत्तमनाकिषु।
परिनिष्क्रम्य चक्रेऽसौ मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीम्।।८६।।

नामक पुत्र हुआ। ठीक ही है, क्योंकि जीव पूर्वभव के संस्कारों से ही एक जगह एकत्र होते हैं।।८०,८१।।

केशव का जीव अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर इसी नगरी में कुबेरदत्त वणिक् के अनन्तमती नामक स्त्री से धनदेव नामक पुत्र हुआ।।८२।।

जब वज्रनाभि पूर्णयौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तब उसका शरीर तपाये हुए सुवर्ण के समान द्युतिमान हो गया। अतः वह प्रातःकालीन सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था।।८३।।

तदनन्तर वज्रनाभि की योग्यता देख कर वज्रसेन महाराज ने अपनी सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मी उसे ही सौंप दी।।८४।।

तदनन्तर लौकान्तिक देवों ने आकर महाराज वज्रसेन को समझाया, जिससे प्रबुद्ध होकर उन्होंने अपनी बुद्धि को दीक्षाग्रहण करने में लगाया।।८५।।

जब इन्द्रादि उत्तमोत्तम देव वज्रसेन की यथायोग्य पूजा कर रहे थे, तभी उन्होंने दीक्षा लेकर मोक्षलक्ष्मी को प्रसन्न किया।।८६।।

८२ = ११/१४ ८३ = ११/१५ ८४ = ११/३८
८५ = ११/४६ ८६ = ११/४७

समं भगवतानेन सहस्रगणनामिताः।
महत्याम्रवनोद्याने नृपाः प्राव्राजिषुस्तदा।।८७।।
वज्रनाभेर्जयागारे चक्रं भास्वरमुद्बभौ।
ततो व्यजेष्ट निश्शेषां महीमेष महीपतिः।।८८।।
धनदेवोऽपि तस्यासीच्चक्रिणो रत्नमूर्जितम्।
राज्याङ्गं गृहपत्याख्यं निधौ रत्ने च योजितम्।।८९।।
ततः कृतिमतिर्भुक्त्वा चिरं पृथ्वीं पृथूदयः।
गुरोस्तीर्थकृतोऽबोधि बोधिमत्यन्तदुर्लभाम्।।९०।।
वज्रदन्ताह्वये सूनौ कृतराज्यसमर्पणः।
नृपैः स्वमौलिबद्धार्द्धै स्तुग्भिश्च दशभिश्शतैः।।९१।।
समम्भ्रातृभिरष्टाभिर्द्धनदेवेन चादधे।
दीक्षां भव्यजनोदीक्ष्यां मुक्त्यै स्वगुरुसन्निधौ।।९२।।

उससमय वज्रसेन राजा के साथ-साथ आम्र नामक विशाल उपवन में एक हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की।।८७।।

वज्रनाभि के शस्त्रभण्डार में चक्ररत्न प्रकट हुआ, उससे उसने समस्त पृथ्वी को जीत लिया।।८८।।

धनदेव भी उस चक्रवर्ती की निधियों और रत्नों में शामिल होने वाला तथा राज्य का अंगभूत गृहपति नामक तेजस्वी चेतनरत्न हुआ।।८९।।

इसप्रकार बुद्धिमान राजा ने चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग किया। तत्पश्चात् अपने पिता वज्रसेन तीर्थंकर से बोधि की दुर्लभता को जाना।।९०।।

उसने अपने वज्रदन्त नामक पुत्र को राज्य सौंप कर सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा, एक हजार पुत्र, आठ भाई और धनदेव के साथ मोक्ष की प्राप्ति के लिये वज्रसेन तीर्थंकर के समीप भव्यजीवों के द्वारा आदरणीय जिनदीक्षा ग्रहण की।।९१,९२।।

८७ = ११/४८ ८८ = ११/५४,५५ ८९ = ११/५७
९० = ११/५८ ९१ = ११/६१ ९२ = ११/६२

ततोऽसौ भावयामास भावितात्मा सुधीरधीः।
स्वगुरोर्निकटे तीर्थकृत्त्वस्याङ्गानि षोडश।।९३।।
ततः कालात्यये धीमान् श्रीप्रभाद्रौ समुन्नते।
प्रायोपवेशनं कृत्वा शरीराहारमत्यजत्।।९४।।
उपशान्त गुणस्थाने कृतप्राणविसर्जनः।
सर्वार्थसिद्धिमासाद्य सम्प्रापत् सोऽहमिन्द्रताम्।।९५।।
त्रयस्त्रिंशत्पयोराशिप्रमितायुर्महाद्युतिः।
हस्तमात्रोच्छ्रितं देहं हंसाभं धवलं दधत्।।९६।।
त्रिसहस्राधिक त्रिंशत्सहस्राब्दव्यतिक्रमे।
मानसं दिव्यमाहारं स्वसात्कुर्वन् धृतिं दधौ।।९७।।
मासैः षोडशभिः पञ्चदशभिश्च दिनैर्मतैः।
प्राप्तोच्छ्वासस्थितिस्तत्र सोऽहमिन्द्रोऽवसत्सुखम्।।९८।।

तदुपरान्त उस आत्मभावना करने वाले वीर मुनि ने अपने गुरु के समीप तीर्थंकर पद प्रदायक सोलह भावनाओं का चिन्तन किया।।९३।।

काल का अन्त होने पर उस धीमान ने श्रीप्रभ नामक उन्नत पर्वत पर प्रायोपवेशन धारण करके शरीर और आहार से ममत्व का त्याग किया।।९४।।

उपशान्त नामक गुणस्थान में प्राणों का विसर्जन करके वे सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्रता को प्राप्त हुए।।९५।।

उनकी आयु तैंतीस सागर प्रमाण थी। वह स्वयं अत्यन्त देदीप्यमान थे। एक हाथ ऊँचे और हंस के समान श्वेत शरीर को वह देव धारण करता था।।९६।।

वह तैंतीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर मानसिक आहार लेता हुआ धैर्य धारण करता था।।९७।।

सोलह माह और पन्द्रह दिन बीत जाने पर वह श्वासोच्छ्वास लेता था। इसप्रकार वह अहमिन्द्र वहाँ सुखपूर्वक निवास करता था।।९८।।

९३ = ११/६८ ९४ = ११/९४ ९५ = ११/१११
९७ = ११/१४५,१४६ ९७ = ११/१५२ ९८ = ११/१५३

तेऽप्यष्टौ भ्रातरस्तस्य धनदेवोऽप्यनल्पधीः।
जातास्तत्सदृशा एव देवाः पुण्यानुभावतः।।९९।।
(छन्द = मालिनी)
निरतिशयमुदारं निष्प्रवीचारमावि-
ष्कृतसुकृतफलानां कल्पलोकोत्तरणाम्।
सुखममरवराणां दिव्यमव्याजरम्यम्।
शिवसुखमिव तेषां सम्मुखायातमासीत्।।१००।।
इति श्रीपुराण समाम्नाये षष्टमं पर्व।

उसके आठों भाई और महाबुद्धिमान धनदेव भी अपने पुण्य के प्रभाव से उसके समान ही अहमिन्द्र हुए।।९९।।

जिनके पुण्य का फल प्रकट हुआ हैं - ऐसे स्वर्गलोक से आगे रहने वाले उन वज्रनाभि आदि अहमिन्द्रों को जो सुख प्राप्त हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानो मोक्ष का सुख ही उनके सम्मुख प्राप्त हुआ हो, क्योंकि मोक्ष के सुख के समान उन अहमिन्द्रों का सुख भी अतिशयरहित, उदार, प्रवीचाररहित, दिव्य और स्वभाव से ही मनोहर था।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण का छठा अध्याय पूर्ण हुआ।

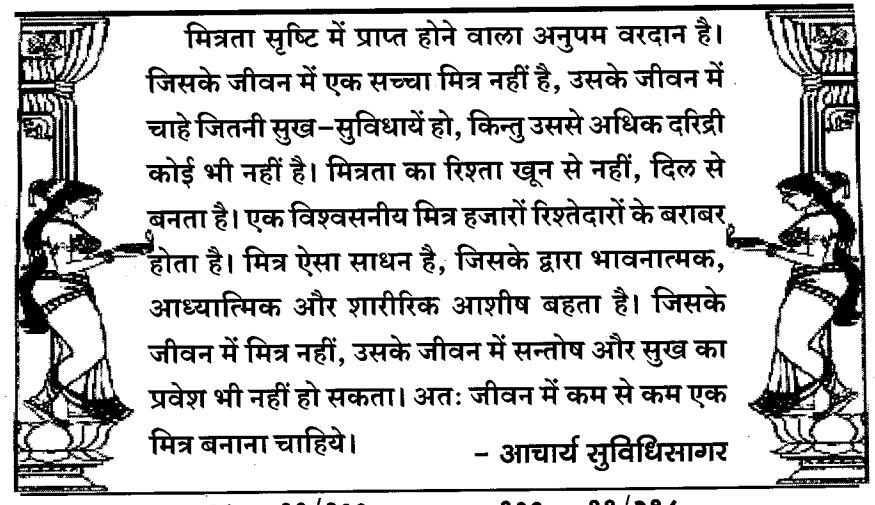

मित्रता सृष्टि में प्राप्त होने वाला अनुपम वरदान है। जिसके जीवन में एक सच्चा मित्र नहीं है, उसके जीवन में चाहे जितनी सुख-सुविधायें हो, किन्तु उससे अधिक दरिद्री कोई भी नहीं है। मित्रता का रिश्ता खून से नहीं, दिल से बनता है। एक विश्वसनीय मित्र हजारों रिश्तेदारों के बराबर होता है। मित्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा भावनात्मक, आध्यात्मिक और शारीरिक आशीष बहता है। जिसके जीवन में मित्र नहीं, उसके जीवन में सन्तोष और सुख का प्रवेश भी नहीं हो सकता। अतः जीवन में कम से कम एक मित्र बनाना चाहिये।

- आचार्य सुविधिसागर

९९ = ११/१६० १०० = ११/२१८

आदिनाथ भगवान को पाण्डुशिला पर ले जाते हुए

सप्तम पर्व

(आदिनाथ का जन्म)

- आदिनाथ का जन्म
- भगवान का सांसारिक जीवन एवं वैराग्य
- नमि व विनमि का ऐश्वय

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

इह जम्बूमतिद्धीपे भरते खचराचलात्।।
दक्षिणे मध्यमे खण्डे कालसन्धौ पुरोदिते।।१।।
पूर्वोक्तकुलकृत्स्वन्त्यौ नाभिराजोऽग्रिमोऽप्यभूत्।
तस्यासीन्मरुदेवीनि देवी देवीव सा शची।।२।।
ताभ्यामलङ्कृते पुण्ये देशे कल्पाङ्घ्रिपात्यये।
तत्पुण्यैर्मुहुराहूतः पुरुहूतः पुरीं व्यधात्:।।३।।
अध्यवात्तां तदानीं तौ तमयोध्यां महर्द्धिकाम्।
दम्पती परमानन्दादाप्तसम्पत्परम्परौ।।४।।

श्रीपुराणम्

सातवाँ अधिकार

इस जम्बूद्धीप के विजयार्द्ध पर्वत से दक्षिण की ओर मध्यम आर्यखण्ड में पूर्वकथित कालसन्धि के समय नाभिराज हुए।।१।।

चौदह कुलकरों में अन्तिम होते हुए भी वे अग्रिम थे। उनकी शची इन्द्राणी के समान ही मरुदेवी नामक पत्नी थी।।२।।

दोनों से अलंकृत पवित्र स्थान में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया था तब उनके पुण्य के द्धारा बार-बार बुलाये जाने पर इन्द्र ने एक नगरी की रचना की।।३।।

जिन्हें अनेक सम्पदाओं की परम्परा प्राप्त हुई हैं - ऐसे उस दम्पति ने आनन्दित होकर पुण्याहवाचन के समय ही अयोध्या में निवास करना प्रारम्भ किया था।।४।।

१ = १२/८ २ = १२/९,१२ ३ = १२/६९ ४ = १२/८२

विश्वदृश्वैतयोः पुत्रो जनितेति शतक्रतुः।
तयोः पूजां व्यधत्तोच्चैरभिषेकपुरस्सरम्।।७।।
षड्भिर्मासैरथैतस्मिन् स्वर्गादवतरिष्यति।
रत्नवृष्टिं दिवो देवाः पातयामासुरादरात्।।६।।
सङ्क्रन्दननियुक्तेन धनदेव निपातिता।
साभात्स्वसम्पदौत्सुक्यात्प्रस्थितेवाग्रतो विभोः।।७।।
पश्चाच्च नवमासेषु वसुधारा तदा मता।
अहो महान्प्रभावोऽस्य तीर्थकृत्त्वस्य भाविनः।।८।।
अथ सुप्तैकदा देवी सौधे मृदुनि तल्पके।
गङ्गातरङ्गसच्छायदुकूलप्रच्छदोज्ज्वले।।९।।
सापश्यत् षोडशस्वप्नानिमान् शुभफलोदयान्।
निशायाः पश्चिमे यामे जिनजन्मानुशंसिनः।।१०।।

इन दोनों के सर्वज्ञ ऋषभदेव पुत्र जन्म लेंगे - यह समझ कर इन्द्र ने अभिषेकपूर्वक उन दोनों की पूजा की थी।।७।।

छह माह बाद ही भगवान स्वर्ग से यहाँ अवतार लेंगे - ऐसा जान कर देवों ने बड़े आदर के साथ आकाश से रत्नवर्षा की थी।।६।।

इन्द्र के द्धारा नियुक्त किये गये धनदेव (कुबेर) ने जो रत्नवर्षा की थी, उससे ऐसा लगता था जैसे उत्सुकता के कारण लक्ष्मी तीर्थंकर से पूर्व ही आ गई हो।।७।।

इसप्रकार गर्भावतरण के नौ माह तक रत्नवर्षा होती रही। सो उचित ही है, क्योंकि होने वाले तीर्थंकर का आश्चर्यकारक प्रभाव होता है।।८।।

एकदिन मरुदेवी राजभवन में गंगा की लहरों के समान श्वेत एवं रेशमी चद्दर से उज्ज्वल कोमल शय्या पर सो रही थी।।९।।

सोते समय उसने रात्रि के पिछले प्रहर में जिनदेव के जन्म की सूचना देने वाले, शुभफलदायक सोलह स्वप्न देखे।।१०।।

५ = १२/८३ ६ = १२/८४ ७ = १२/८५
८ = १२/९७ ९ = १२/१०२ १० = १२/१०३

गजेन्द्रभवदाताङ्गं वृषभं दुन्दुभिस्वनम्।
सिंहमुल्लङ्घिताक्र्यग्रं लक्ष्मीं स्नाप्यां सुरद्विपैः।।११।।
दामिनीं लम्बमाने खे धौतांशुं द्योतिताम्बरम्।
प्रोद्यन्तमब्जिनीबन्धुं बन्धुरं झषयुग्मकम्।।१२।।
कलसावमृतापूर्णौ सरः स्वच्छाम्बु साम्बुजम्।
वाराशिं क्षुभितावर्त्तं सैंहं भासुरमासनम्।।१३।।
विमानमापतत्स्वर्गाद्भुवो भवनमुद्भवत्।
रत्नराशिं स्फुरद्रश्मिं ज्वलनं प्रज्वलद्द्युतिम्।।१४।।
तदा प्रभृति सुत्रामशासनात्ताः सिषेविरे।
दिक्कुमार्योऽनुचारिण्यस्तत्कालोचितकर्मभिः।।१५।।
श्रीर्ह्रीर्धृतिश्च कीर्तिश्च बुद्धिलक्ष्म्यौ च देवताः।
श्रियं लज्जां च धैर्यं च स्तुति बोधं च वैभवम्।।१६।।

स्वच्छ और श्वेत शरीर धारक गजेन्द्र, दुन्दुभि के समान शब्द करता हुआ बैल, पर्वत की चोटी को लांघता हुआ सिंह, देवों के हाथियों द्वारा नहलायी गई लक्ष्मी, आकाश में लटकती हुई दो मालायें, आकाश को प्रकाशित करता हुआ चन्द्र, उदित होता हुआ सूर्य, मनोहर मत्स्य-युगल, जल से भरे हुए दो कलश, स्वच्छ जल और जलजों (कमलों) से सहित सरोवर, क्षुभित और भँवर से युक्त समुद्र, देदीप्यमान सिंहासन, स्वर्ग से आता हुआ विमान, पृथ्वी से प्रकट होता हुआ नागेन्द्र का भवन, प्रकाशमान किरणों से सुशोभित रत्नराशि और जलती हुई देदीप्यमान अग्नि---।।११, १२, १३, १४।।

उससमय से लेकर इन्द्राज्ञा से दिक्कुमारी देवियाँ उससमय होने योग्य कार्यों के द्वारा दासियों के समान माता की सेवा करने लगी।।१५।।

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियों ने क्रम से शोभा लज्जा, धैर्य, स्तुति, ज्ञान और वैभव आदि गुण बढ़ाये।।१६।।

११ = १२/१४८	१२ = १२/१४९	१३ = १२/१५०
१४ = १२/१५१	१५ = १२/१६३	१६ = १२/१६४

तस्यामादधुरभ्यर्णवर्त्तिन्यः स्वानिमान् गुणान्।
तत्संस्काराच्च सा रेजे संस्कृतेवाग्निना मणिः।।१७।।
नोदरे विकृतिः कापि स्तनौ न नीलचूचुकौ।
न पाण्डुवदनं तस्या गर्भोऽप्यवृधदद्भुतम्।।१८।।
कुशेशयशयं देवं सा दधानोदरेशयम्।
कुशेशयशयेवासीन्माननीया दिवौकसाम्।।१९।।
अथातो नवमासानामत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभिर्यथास्वं परिवारिता।।२०।।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे नवम्यामुदये रवेः।
विश्वे ब्रह्ममहायोगे जगतामेकवल्लभम्।।२१।।
ततोऽबुद्ध सुराधीशः सिंहासनविकम्पनात्।

इसप्रकार देवियों की सेवा और संस्कार से वह माता ऐसी सुशोभित होने लगी, जैसे अग्नि के संस्कार से मणि सुशोभित होता है।।१७।।

माता के उदर में न विकार हुआ था, न उसके स्तनाग्र काले हुए थे। न उसका मुख ही सफेद हो रहा था, फिर भी गर्भ बढ़ रहा था - यह आश्चर्य है।।१८।।

अनेक देव-देवियाँ जिसका सत्कार कर रही हैं और जो अपने उदर में भगवान को धारण कर रही है - ऐसी माता लक्ष्मी के समान शोभित हो रही थी।।१९।।

अथानन्तर जिसकी सेवा देवियाँ कर रही थी - ऐसी माता ने नव माह व्यतीत होने पर भगवान को जन्म दिया।।२०।।

चैत्र कृष्णा नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ा नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में तीनलोक के नाथ का जन्म हुआ।।२१।।

तदनन्तर सिंहासन के कम्पायमान होने से अवधिज्ञान का प्रयोग करके इन्द्र ने जान लिया कि सम्पूर्ण पापों के विजेता जिनेन्द्र का जन्म हुआ है।।२२।।

१७ = १२/१६५	१८ = १२/२६२	१९ = १२/२६५
२० = १३/१	२१ = १३/२,३	२२ = १३/९

प्रयुक्तावधिरुद्भूतिं जिनस्य विजितैनसः।।२२।।
घण्टाकण्ठीरवध्वानभेरीशङ्खाः प्रदध्वनुः।
कल्पेशज्योतिषां वन्यभावनानां च वेश्मसु।।२३।।
तेषामुद्भिन्नवेलानामब्धीनामिव निःस्वनम्।
श्रुत्वा बुबुधिरे जन्म विबुधा भुवनेशिनः।।२४।।
अथ सौधर्मकल्पेशो महैरावतदन्तिनम्।
समारुह्य समं शच्या प्रतस्थे विबुधैर्वृतः।।२५।।
क्रमादथ सुरानीकान्यम्बरादचिराद्भुवम्।
अवतीर्य पुरीं प्रापुरयोध्यां परमर्द्धिकाम्।।२६।।
प्रसवागारमिन्द्राणी ततः प्रविशदुत्सवात्।
तत्रापश्यत्कुमारेण सार्धं तां जिनमातरम्।।२७।।
जगद्गुरुं समादाय कराभ्यां सागमन्मुदम्।

उससमय कल्पवासी, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों के घरों में क्रमशः घण्टा, सिंहनाद, भेरी और शंखों के शब्द स्वयमेव होने लगे थे।।२३।।

उछलती हुई लहरों से शोभायमान समुद्र के समान उन बाजों की गम्भीर ध्वनि सुन कर देवों ने जान लिया कि तीनलोक के नाथ का जन्म हुआ है।।२४।।

तदनन्तर सौधर्मकल्प के स्वामी ने इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर चढ़ कर अनेक देवों से परिवृत्त हो प्रस्थान किया।।२५।।

देवों की सेनायें भी क्रम-क्रम से अतिशीघ्र आकाश से जमीन पर उतर कर अतिशय विभूति से शोभायमान अयोध्या नगरी में जा पहुँची।।२६।।

तदुपरान्त इन्द्राणी ने बड़े ही उत्सव के साथ प्रसूतिगृह में प्रवेश करके वहाँ तीर्थंकर के साथ-साथ जिनमाता के दर्शन किये।।२७।।

२३ = १३/१३	२४ = १३/१४	२५ = १३/१७
२६ = १३/२५	२७ = १३/२७	२८ = १३/३२,३९

ततः करतले देवी देवराजस्य तं न्यधात्।।२८।।
गीर्वाणेन्द्रस्तमिन्द्राण्याः करादादाय सादरम्।
व्यलोकयत् स तद्रूपं सम्प्रीतिस्फारितेक्षणः।।२९।।
सौधर्माधिपतेरङ्कमध्यासीनमधीशिनम्।
भेजे सितातपत्रेण तदैशानसुरेश्वरः।।३०।।
सनत्कुमारमाहेन्द्रनायकौ धर्मनायकम्।
चामरैस्तं व्यधुन्वातां बहुक्षीराब्धिवीचिभिः।।३१।।
ततः प्रापुः सुराधीशा गिरिराजं तमुच्छ्रितम्।
यस्यालङ्कुरुते कूटपर्यन्तं पाण्डुकं वनम्।।३२।।
तस्य प्रागुक्तराशायां महती पाण्डुकाह्वया।
शिलास्ति जिननाथानामभिषेकं बिभर्ति या।।३३।।
ततोऽभिषेचनं भर्तुः कर्तुमिन्द्रः प्रचक्रमे।

वह जिनबालक को अपने हाथों में उठा कर परमानन्द को प्राप्त हुई और बालक को लाकर इन्द्र की हथेली पर विराजमान कर दिया।।२८।।

इन्द्राणी के हाथ से भगवान को आदरसहित लेकर इन्द्र हर्ष से नेत्रों को प्रफुल्लित करता हुआ उनका सुन्दर रूप देखने लगा।।२९।।

उससमय भगवान सौधर्मेन्द्र की गोद में बैठे हुए थे। ऐशानेन्द्र श्वेतछत्र लगा कर उनकी सेवा कर रहा था और सानत्कुमारेन्द्र व माहेन्द्र क्षीरसागर की लहरों के समान उस धर्मनायक पर चँवर ढोर रहे थे।।३०,३१।।

तदुपरान्त सुराधीश उस ऊँचे गिरिराज (मेरुपर्वत) पर जा पहुँचे, जिसके शिखर पर्यन्त के भाग को पाण्डुकवन सदा अलंकृत करता रहता है।।३२।।

उस पर्वत के पाण्डुकवन में पूर्वोत्तर दिशा के मध्य एक पाण्डुक नामक विशाल शिला है। वह तीर्थंकरों के जन्माभिषेक को धारण करती है।।३३।।

तदुपरान्त सौधर्मेन्द्र ने भगवान को पूर्वदिशा में मुँह करके पाण्डुकशिला पर रखे हुए सिंहासन पर विराजमान कर दिया और वह अभिषेक करने के लिये तत्पर हुआ।।३४।।

इन्द्र द्वारा पाण्डुशिला पर रखे सिंहासन पर भगवान को विराजमान करते है

२९ = १३/४०	३० = १३/६१	३१ = १३/६२
३२ = १३/६६,७१	३३ = १३/८२	३४ = १३/१००

निवेश्याधिशिलं सैहे विष्टरे प्राङ्मुखं प्रभुम्।।३४।।
पूतं स्वायम्भुवं गात्रं स्प्रष्टुं क्षीराच्छशोणितम्।
नान्यदस्ति जलं योग्यं क्षीराब्धिसलिलादृते।।३५।।
मत्वेति नाकिभिर्नूनमनूनप्रमदोदयैः।
पञ्चमस्यार्णवस्याम्भः स्नानीयमुपकल्पितम्।।३६।।
दोः सहस्रोद्धृतैः कुम्भैः रौक्मैर्मुक्ताफलाञ्चितैः।
अभ्यषिञ्चद्विधानज्ञो विधातारं शताध्वरः।।३७।।
अविलिप्तसुगन्धिरस्त्वमविभूषितसुन्दरः।
भक्तैरभ्यर्चितोऽस्माभिर्भूषणैः सानुलेपनैः।।३८।।
इति स्तुत्वा सुरेन्द्रास्तं परमानन्दनिर्भराः।
अयोध्यागमने भूयो मतिं चक्रूः कृतोत्सवाः।।३९।।
महाकलकलैर्गीतैर्नृतैः सजयघोषणैः।

जो स्वयं पवित्र हैं, जिनका रुधिर क्षीर के समान स्वच्छ है, उन जिनेन्द्र के शरीर का स्पर्श करने के लिये क्षीरसागर के जल के अतिरिक्त अन्य जल योग्य नहीं है - ऐसा मान कर ही देवों ने प्रमुदित होकर क्षीरसागर नामक पाँचवें सागर के जल से ही भगवान का अभिषेक करेंगे - ऐसा निश्चय किया था।।३५,३६।।

एक हजार भुजाओं के द्वारा उठाये हुए सुवर्णमय कलशों से विधि के ज्ञाता इन्द्र ने भगवान का अभिषेक किया।।३७।।

यद्यपि आप बिना लेप लगाये ही सुगन्धित हैं और बिना आभूषण पहने ही सुन्दर हैं, तथापि हमने यह सब भक्तिवश किया है।।३८।।

इसप्रकार परम हर्ष के साथ इन्द्रों ने भगवान की स्तुति करके उत्सव के साथ पुनः अयोध्या चलने का विचार किया।।३९।।

वे देव भारी कोलाहल, गीत, नृत्य और जय-जय शब्द की घोषणा करते हुए आकाशरूपी आँगन को लाँघ कर शीघ्र ही अयोध्यापुरी में आ पहुँचे।।४०।।

३५ = १३/१११	३६ = १३/११२	३७ = १३/११८,१८६
३८ = १४/३५	३९ = १४/७३	४० = १४/७५

गगनाङ्गणमुत्पत्य द्रागाजग्मुरमूं पुरीम्।।४०।।
ततः कतिपयैर्देवैर्वेवमादाय देवराट्।
प्रविवेश नृपागारं परार्घ्यश्रीपरम्परम्।।४१।।
तत्रामरकृतानेक विन्यासे श्रीगृहाङ्गणे।
हर्यासने कुमारं तं सौधर्मेन्द्रो न्यवीविशत्।।४२।।
नाभिराजः समुद्भिन्नपुलकं गात्रमुद्वहन्।
प्रीतिविस्फारिताक्षस्तं ददर्श प्रियदर्शनम्।।४३।।
मायानिद्रामपाकृत्य देवी शच्या प्रबोधिता।
देवीभिः सममैक्षिष्ट प्रहृष्टा जगतां पतिम्।।४४।।
दृष्ट्वा प्रमुदितं तेषां स्वं प्रमोदं प्रकाशयन्।
ललितोद्भटनेपथ्यो लसन्नयनसन्ततिः।।४५।।
क्षणादेकः क्षणान्नैकः क्षणाद्व्यापी क्षणादणुः।

इन्द्र ने भगवान को लेकर कुछ देवों के साथ उत्कृष्ट लक्ष्मी से सुशोभित महाराज नाभिराज के घर में प्रवेश किया।।४१।।

वहाँ, जहाँ पर देवों ने सुन्दर रचना की है - ऐसे श्रीगृह के आँगन में बालक रूपधारी भगवान को सिंहासन पर विराजमान किया।।४२।।

नाभिराज उस प्रियदर्शन भगवान को देखने लगे। उससमय उनका शरीर रोमांचित हो रहा था, नेत्र प्रीति के कारण प्रफुल्लित और विस्तृत हो रहे थे।।४३।।

मायामयी निद्रा को दूर हटा कर इन्द्राणी के द्वारा प्रबोधित की गई माता मरुदेवी भी हर्षित होकर देवियों के साथ ही जगत्पति को देखने लगी।।४४।।

. नगरवासियों के आनन्द को देख कर आनन्दित हुआ इन्द्र अच्छे वस्त्राभरणों से सुशोभित था और उत्तम नेत्रों को धारण कर रहा था।।४५।।

४१ = १४/७२	४२ = १४/७३	४३ = १४/७४
४४ = १४/७५	४५ = १४/९५,११०	४६ = १४/१३०

क्षणादोरात् क्षणाद् दूरे क्षणाद्व्योम्नि क्षणाद्भुवि।।४६।।
गन्धर्वनायकारब्धविविधातोद्यसंविधिः।
आनन्दनृत्यमित्युच्चैर्मघवा निरवर्त्तयत्।।४७।।
वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो वर्षिष्यति जगद्धितम्।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तमकार्षुर्वृषभाह्वयम्।।४८।।
ततोऽस्य सवयोरूप वेषान्सुरकुमारकान्।
निरूप्य परिचर्यायै दिवं जग्मुर्द्युनायकाः।।४९।।
परमायुरथास्याभूच्चरमं बिभ्रतो वपुः।
सम्पूर्णा पूर्वलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा।।५०।।
नाभिराजोऽन्यदा दृष्ट्वा यौवनारम्भमीशितुः।
सुरेन्द्रानुमतात्कन्ये सुशीले चारुलक्षणे।।५१।।
तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाभ्यौ सौम्ये पतिंवरे।

नृत्य करते हुए इन्द्र क्षण भर में ही एक, अनेक, सर्वव्यापी, अणु, पास, दूर, आकाश में या जमीन पर दिखाई पड़ता था।।४६।।

जिसमें गन्धर्वों के द्वारा श्रेष्ठ बाजे बजाये जा रहे थे - ऐसे आनन्द नामक नृत्य को इन्द्र ने बड़ी सज-धज के साथ पूर्ण किया।।४७।।

ये देव जगत में श्रेष्ठ हैं और जगत का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे, इसीलिये इन्द्र ने प्रभु का नाम वृषभदेव रखा था।।४८।।

तदनन्तर इन्द्र ने भगवान की सेवा के लिये समान अवस्था, रूप और वेष वाले देवकुमारों को निश्चित किया और वे अपने-अपने स्वर्ग को चले गये।।४९।।

चरमशरीर को धारण करने वाले भगवान की पूर्णायु चौरासी लाख पूर्व वर्षों की थी।।५०।।

एकबार नाभिराज ने भगवान की यौवनावस्था को देख कर इन्द्र की अनुमति से सुशील, सुन्दर, सौम्य, यौवनवती व शान्त - ऐसी यशस्वती

४७ = १४/१५७ ४८ = १४/१६० ४९ = १४/१६४
५० = १४/१८७ ५१ = १५/५०,६९ ५२ = १५/७०

यशस्वती सुनन्दाख्ये स एवं पर्यणीनयत्।।५२।।
अथान्यदा महादेवी सौधे सुप्ता यशस्वति।
स्वप्नेऽपश्यन्महीं ग्रस्तां मेरुं सूर्यं च सोडुपम्।।५३।।
सरः सहंसमब्धिं च चलद्वीचिकमैक्षत।
स्वप्नान्ते च व्यबुद्धासौ पठन्मागधनिःस्वनैः।।५४।।
ततः सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचरः सुरः।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽतश्च्युत्वा तद्गर्भमावसत्।।५५।।
शुभे दिने शुभे लग्ने योगे दुरुदुराह्वये।
सा प्रासोष्ट सुताग्रण्यं स्फुरत्साम्राज्यलक्षणम्।।५६।।
प्रमोदभरतः प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा।
तमाह्वद् भरतं भावि समस्तभरताधिपम्।।५७।।

और सुनन्दा नामक कन्याओं से भगवान का परिणय करा दिया। वे दोनों कच्छ और महाकच्छ की बहने थीं।।५१,५२।।

एकबार महादेवी यशस्वती राजभवन में सो रही थी। उसने अपने स्वप्न में ग्रसी हुई पृथ्वी, सुमेरु पर्वत, चन्द्रमा सहित सूर्य, हंस सहित सरोवर तथा चंचल लहरों वाला समुद्र देखा। उसके बाद मंगलपाठ पढ़ने वाले बन्दीजनों की आवाज को सुन कर वह जाग गयी।।५३,५४।।

तदनन्तर राजा अतिगृद्ध का जीव जो व्याघ्र हुआ था, तत्पश्चात् देव, फिर सुबाहु होकर सर्वार्थसिद्धि में गया था, वहाँ से चय कर वह यशस्वती के गर्भ में आया।।५५।।

शुभ दिन, शुभ लग्न, शुभ योग, शुभ चन्द्रमा और शुभ नक्षत्र आदि में महारानी यशस्वती ने सम्राट् के लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया।।५६।।

तब प्रेम से भरे हुए बन्धुओं के समूह ने बड़े प्रमोद के साथ समस्त भरत-क्षेत्र के अधिपति होने वाले पुत्र का भरत नाम रखा।।५७।।

५३ = १५/१०० ५४ = १५/१०१ ५५ = १५/१२८
५६ = १५/१४१ ५७ = १५/१५८

अथ क्रमाद्यशस्वत्यां जाताः सृष्टुरिमे सुताः।
अवतीर्य दिवो मुर्ध्नस्तेऽहमिन्द्राः पुरोहिताः।।७८।।
पीठो वृषभसेनोऽभूत् कनीयान् भरतेश्वरात्।
महापीठोऽभवत्तस्य सोऽनन्तविजयोऽनुजः।।७९।।
विजयोऽनन्तवीर्योऽभूद् जयन्तोऽच्युतोऽभवत्।
वैजयन्तो वीर इत्यासीद्धवरवीरोऽपराजितः।।८०।।
इत्येकान्नशतं पुत्रा बभूवुर्वृषभेशिनः।
ततो ब्राह्मीं यशस्वत्यां ब्रह्मा समुदपादयत्।।८१।।
सुनन्दायां महाबाहुरहमिन्द्रो दिवोऽग्रतः।
च्युत्वा बाहुबलीत्यासीत् कुमारोऽमरसन्निभः।।८२।।
वज्रजङ्घभवे यास्य भगिन्यासीदनुन्दरी।

अथानन्तर जिनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है - ऐसे वे सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र स्वर्ग से चय कर यशस्वती देवी के पुत्र हुए।।७८।।

जिसका पूर्व में पीठ नाम था, वह भरत का वृषभसेन नामक छोटा भाई हुआ। महापीठ का जीव अनन्तविजय नामक वृषभसेन से छोटा भाई हुआ।।७९।।

विजय का जीव अनन्तविजय से छोटा भाई हुआ, जिसका नाम अनन्तवीर्य था। वैजयन्त का जीव अनन्तवीर्य का छोटा भाई अच्युत हुआ। वानर का जीव अच्युत से छोटा वीर नाम का धारक भाई हुआ। अपराजित का जीव उससे छोटा वीरवर हुआ।।८०।।

इसप्रकार यशस्वती के निन्यानवे पुत्र हुए। उसीप्रकार ब्रह्मा (आदिनाथ) ने यशस्वती नामक महादेवी में ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न की।।८१।।

महाबाहु का जीव अहमिन्द्र पद से च्युत होकर सुनन्दा की कुक्षी से देव के समान बाहुबली नामक पुत्र हुआ।।८२।।

वज्रजंघ के भव मे भगवान की जो अनुन्धरी नामक बहन थी, वह भी सुनन्दा देवी से सुन्दरी नामक पुत्री हुई।।८३।।

७८ = १६/१	७९ = १६/२	८० = १६/३
८१ = १६/४,५	८२ = १६/६	८३ = १६/७

सा सुन्दरीत्यभूत् पुत्री वृषभस्यातिसुन्दरी।।८३।।
सुनन्दा सुन्दरीं पुत्रीं पुत्रं बाहुबलीशिनम्।
लब्ध्वा रुचिं परां भेजे प्राचीवार्कं सह त्विषा।।८४।।
ततो भगवतो वक्त्रान्निःसृतामक्षरावलीम्।
सिद्धं नम इति व्यक्तमङ्गलां सिद्धमातृकाम्।।८५।।
समवादीधरद् ब्राह्मी मेधाविन्यतिसुन्दरी।
सुन्दरी गणितं स्थानक्रमैः सम्यगधारयत्।।८६।।
पुत्राणां च यथाम्नायं विनया दानपूर्वकम्।
शास्त्राणि व्याजहारैवमानुपूर्व्यां जगद्गुरुः।।८७।।
ततः कुमारकालोऽस्य कलितो मुनिसत्तमैः।
विंशतिः पूर्वलक्षाणां पूर्यते स्म महाधियः।।८८।।
अत्रान्तरे महौषध्यो दीप्तौषध्यश्च पादपाः।

सुन्दरी और बाहुबली के समान पुत्री और पुत्र को पाकर सुनन्दा वैसे ही सुशोभित हुई, जैसे पूर्वदिशा प्रभा के साथ सूर्य को पाकर सुशोभित होती है।।८४।।

तदुपरान्त जो भगवान के मुख से निकली हुई है, जिसमें **सिद्धं नमः** यह मंगलाचरण है, जिसका नाम सिद्धमातृका है, उनको बुद्धिमान ब्राह्मी ने धारण किया और अत्यन्त सुन्दर सुन्दरी ने यथाक्रम से गणितशास्त्र को धारण किया।।८५,८६।।

इसीप्रकार जगद्गुरु ने अपने भरतादि पुत्रों को भी विनयी बना कर आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये।।८७।।

इसप्रकार अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हुए भगवान का बीस लाख पूर्व वर्षों का काल पूर्ण हो गया - ऐसा गणधर देव ने कहा है।।८८।।

उसीसमय काल के प्रभाव से महौषधी, दीप्तौषधी, कल्पवृक्ष तथा सभी प्रकार की औषधियाँ शक्तिहीन हो गयी थीं।।८९।।

८४ = १६/८	८५ = १६/१०५	८६ = १६/१०८
८७ = १६/११८	८८ = १६/१२९	८९ = १६/१३०

षट्कर्म की शिक्षा व राज्य व्यवस्था

ससर्वौषधयः कालाज्जाताः प्रक्षीणशक्तिकाः।।६९।।
सस्यान्यकृष्टपच्यानि यान्यासन् स्थितये नृणाम्।
प्रायस्तान्यपि कालेन ययुर्विरलतां भुवि।।७०।।
नाभिराजाज्ञया स्रष्टुस्ततोऽन्तिकमुपाययुः।
प्रजाः प्रणतमूर्द्धानौ जीवितोपायलिप्सया।।७१।।
असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः।।७२।।
तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान्मतिकौशलात्।
उपादिक्षत्सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरुः।।७३।।
उत्पादितास्त्रयो वर्णास्तदा तेनाधिवेधसा।
क्षत्रिया वणिजः शूद्राः क्षतत्राणादिभिर्गुणैः।।७४।।
अथाधिराज्यमासाद्य नाभिराजस्य सन्निधौ।

भगवान ने तीनों वर्णो की स्थापना की

मनुष्यों की स्थिति के लिये बिना बोये उत्पन्न होने वाले धान्यादि भी काल के प्रभाव से पृथ्वी पर प्रायः विरलता को प्राप्त हो गये थे।।७०।।

नाभिराज की आज्ञा से प्रजा भगवान के समीप गयी और अपने जीवित रहने के उपाय प्राप्त करने के लिये वह उन्हें मस्तक झुका कर नमस्कार करने लगी।।७१।।

असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये कर्म अजीविका के कारण हैं। भगवान वृषभदेव ने अपनी कुशलबुद्धि के द्वारा षट्कर्मों का उपदेश दिया। वह ठीक ही है, क्योंकि उससमय जगद्गुरु सरागी ही थे।।७२,७३।।

उसीसमय भगवान ने तीन वर्णों की उत्पत्ति की थी। वे वर्ण क्षतत्राण आदि गुणों के कारण ही बने थे।।७४।।

अथानन्तर भगवान ने राज्य पाकर नाभिराय के सानिध्य में ही अपनी-अपनी मर्यादा भंग न हो सके - ऐसे नियम बनाये।।७५।।

७० = १६/१३१ ७१ = १६/१३४ ७२ = १६/१७९
७३ = १६/१८० ७४ = १६/१८३ ७५ = १६/२४१,२४२

स्वधर्मानतिवृत्त्यैव नियच्छन्नन्वशात्प्रजाः।।७५।।

समाहूय महाभागान् हर्यकम्पनकाश्यपान्।
सोमप्रभं च सन्मान्य सत्कृत्य च यथोचितम्।।७६।।

कृताभिषेचनानेतान् महामण्डलिकान् नृपान्।
चतुःसहस्रभूनाथपरिवारान्व्यधाद्विभुः।।७७।।

त्रिषष्टिलक्षाः पूर्वाणां राज्यकालोऽस्य सम्मितः।
स तस्य पुत्रपौत्रादिवृतस्याविदितोऽगमत्।।७८।।
अथान्येद्युर्महास्थानमध्ये नृपशतैर्वृतः।
स सिंहासनमध्यास्त यथार्को नैषधं तटम्।।७९।।
तथासीनं च तं देव देवराट् पर्युपासितुम्।
साप्सराः सहगन्धर्वः स सपर्यमुपासदत्।।८०।।

उन्होंने हरि, अकम्पन, काश्यप, और सोमप्रभादि चार महाभाग्यवान क्षत्रियों को बुला कर यथोचित स्वागत-सत्कार किया।।७६।।

उनका राज्याभिषेक करके उन्हें महामाण्डलीक राजा बनाया। ये राजा चार हजार अन्य छोटे-छोटे राजाओं के अधिपति थे।।७७।।

भगवान का राज्यकाल तिरेसठ लाख पूर्व था। पुत्र-पौत्रों के साथ सुख का अनुभव करता हुआ उनका काल कुछ बीत गया, सो पता ही नहीं चला।।७८।।

अथानन्तर जैसे निषधपर्वत के तट पर सूर्य विराजमान होता है, उसीप्रकार भगवान सैकड़ों राजाओं से घिर कर सभामण्डप में विराजमान थे।।७९।।

उसप्रकार बैठे हुए जिनदेव की सेवा करने के लिये इन्द्र अप्सराओं और देवों के साथ पूजनसामग्री लेकर वहाँ आया।।८०।।

७६ = १६/२५६ ७७ = १६/२५७ ७८ = १६/२६८
७९ = १७/१ ८० = १७/२

भगवान का वैराग्य

अरिराधयिषुर्देवं सुरराड् भक्तिनिर्भरः।
प्रायूयुजत्सगन्धर्व नृत्यमाप्सरसं तदा।।८१।।
राज्यभोगात्कथं नाम विरज्येद्भगवानिति।
प्रक्षीणायुर्दशं पात्रं तदा प्रायुङ्क्त देवराट्।।८२।।
ततोनीलाञ्जना नाम ललिता सुरनर्तकी।
रसभावलयोपेतं नटन्ती सपरिक्रमम्।।८३।।
क्षणाददृश्यतां प्राप किलायुर्दीपसंक्षये।
प्रभातरलितां मूर्तिं दधाना तडिदुज्ज्वलाम्।।८४।।
ततोऽस्य चेतसीत्यासीच्चिन्ताभोगाद्विरज्यतः।
परां संवेगनिर्वेदभावनामुपजग्मुषः।।८५।।
नारीरूपमयं यन्त्रमिदमत्यन्तपेलवम्।

भगवान की आराधना करने की इच्छा से उससमय भक्तियुक्त इन्द्र ने अप्सराओं और गन्धर्वों का नृत्य कराना प्रारम्भ किया।।८१।।

भगवान को नीलांजना नामक अप्सरा का नृत्य करते हुए उसकी मृत्यु को देखकर भोगों से विरक्ति हुई

भगवान राज्य तथा भोगों से विरक्त किसप्रकार होंगे ? - ऐसा विचार कर इन्द्र ने नृत्य करने के लिये ऐसे पात्र को नियुक्त किया, जिसकी आयु क्षीण हो गयी थी।।८२।।

तदनन्तर नीलांजना नामक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा रस, भाव और लय सहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी।।८३।।

आयुरूपी दीपक का क्षय हो जाने से वह क्षणमात्र में ही अदृश्य हो गयी। जैसे बिजलीरूपी लता क्षण भर में नष्ट हो जाती है, वैसे उज्ज्वलमूर्ति को धारण करने वाली वह देवी नष्ट हो गयी।।८४।।

तदनन्तर भोगों से विरक्त और अत्यन्त संवेग व वैराग्य को प्राप्त हुए भगवान के चित्त में इसप्रकार चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि ---।।८५।।

यह अत्यन्त सुन्दर नारीरूप यन्त्र हमारे सामने देखते ही देखते किसप्रकार नष्ट हो गया ?।।८६।।

८१ = १७/४ ८२ = १७/६ ८३ = १७/७
८४ = १७/८ ८५ = १७/११ ८६ = १७/३६

पश्यतामेव नः साक्षात् कथमेतदगाल्लयम्।।८६।।
तस्माद्धिग्धिगिदं रूपं धिक् संसारमसारकम्।
राज्यभोगं धिगस्त्वेनं धिग्धिगाकालिकीः श्रियः।।८७।।
इति निर्विद्य भोगेभ्यो विरक्तात्मा सनातनः।
मुक्तावुत्तिष्ठते स्माशु काललब्धिमुपाश्रितः।।८८।।
प्रभोः प्रबोधमाधातुं ततो लौकान्तिकामराः।
परिनिष्क्रमणेज्यायै ब्रह्मलोकादवातरन्।।८९।।
तव धर्मामृतं स्रष्टुमेषकालः सनातनः।
धर्मसृष्टिमतो देव विधातुं धातरर्हसि।।९०।।
इति लौकान्तिकैर्देवैः स्तुवानैरुपनाथितः।
परिनिष्क्रमणे बुद्धिमधाद्धाता दृढीयसीम्।।९१।।
ततोऽभिषिच्य साम्राज्ये भरतं सूनुमग्रिमम्।

इसीलिये इस रूप को, संसार को, राज्यभोग को और बिजली के समान चंचल लक्ष्मी को धिक्कार हो।।८७।।

इसप्रकार जो निर्वेद को प्राप्त हो गये थे - ऐसे जिनदेव भोगों से विरक्त हुए और काललब्धि को प्राप्त कर मुक्ति के लिये शीघ्र ही उद्योग करने लगे।।८८।।

भगवान को प्रबोध कराने के लिये और उनके तपकल्याणक की पूजा करने के लिये उसी समय लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक से उतरे।।८९।।

हे देव ! यह काल अब आपके द्धारा सनातन धर्मरूपी अमृत को उत्पन्न करने योग्य हुआ है। अतः हे विधाता ! अब आप धर्म की सृष्टि का निर्माण कीजिये।।९०।।

इसप्रकार की स्तुति करते हुए लौकान्तिक देवों ने जिनसे प्रार्थना की है, उस ब्रह्मा ने तपश्चरण करने में दृढ़बुद्धि लगायी।।९१।।

तदनन्तर अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत का उन्होंने राज्याभिषेक किया और बाहुबली को युवराज पद पर स्थापित किया।।९२।।

८७ = १७/४२ ८८ = १७/४३ ८९ = १७/४७
९० = १७/६७ ९१ = १७/७० ९२ = १७/७६,७७

यौवराज्ये च तं बाहुबलिनं समतिष्ठिपत्।।९२।।
शेषेभ्योऽपि स्वसूनुभ्यः संविभज्य महीमिमाम्।
विभुर्विश्राणयामास निर्ममुक्षुरसम्भ्रमी।।९३।।
सुरेन्द्रनिर्मितां दिव्यां शिविकां स सुदर्शनाम्।
स नाभीन्नाभिराजादीनापृच्छ्यारुक्षदक्षरः।।९४।।
पदानि सप्त तामूहुः शिविकां प्रथमं नृपाः।
ततो विद्याधरा निन्युर्व्योम्नि सप्तपदान्तरम्।।९५।।
स्कान्धाधिरोपितां कृत्वा ततोऽभूमविलम्बितम्।
सुरासुराः खमुत्पेतुरारूढप्रमदोदयाः।।९६।।
नातिदूरे पुरस्यास्य नात्यासन्नेतिविस्तृतम्।
सिद्धार्थकवनोद्देशमभिप्रायाज्जगद्गुरुः।।९७।।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे सुमुहुर्ते शुभोदये।
नवम्यामुत्तराषाढे सायाह्ने प्राव्रजद्विभुः।।९८।।

मुमुक्षु भगवान ने आकुलता से रहित होकर अपने शेष पुत्रों के लिये भी इस पृथ्वी का विभाग करके बँटवारा कर दिया।।९३।।

तदनन्तर अक्षर (अविनाशी) भगवान नाभिराय आदि पारिवारिक लोगों से पूछ कर इन्द्र के द्वारा निर्मित सुदर्शन नामक सुन्दर पालकी पर बैठे।।९४।।

उस पालकी को पहले राजा लोग सात पैंड तक ले गये, फिर विद्याधर लोग उसे आकाशप्रदेश में सात पैंड तक ले चले।।९५।।

फिर वैमानिक और भवनत्रिक देवों ने अत्यन्त प्रमुदित होकर पालकी अपने कन्धों पर रखी और वे उसे शीघ्र ही आकाश में ले गये।।९६।।

इसप्रकार जगद्गुरु अयोध्यापुरी के न अतिदूर और न अति निकट - ऐसे अत्यन्त विस्तृत सिद्धार्थ नामक वन में जा पहुँचे।।९७।।

चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की नवमी के दिन सायंकाल में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की, उससमय शुभमुहूर्त और शुभलग्न था। उत्तराषाढ़ा नामक नक्षत्र का उदय था।।९८।।

९३ = १७/९२ ९४ = १७/९३ ९५ = १७/९८
९६ = १७/९९ ९७ = १७/१८१ ९८ = १७/२०३

चतुःसहस्रगणना नृपाः प्राव्राजिषुस्तदा।
गुरोर्मतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम्।।९९।।
अथ कायं समुत्सृज्य तपोयोगे समाहितः।
वाचंयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेड् विमुक्तये।।१००।।
षण्मासानशनं धीरः प्रतिज्ञाय महाधृतिः।
योगैकाग्र्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करण विक्रियः।।१०१।।
मासाद्धित्राश्च नो यावत्तावत्ते मुनिमानिनः।
परीषहमहावातैर्भग्नाः सद्यो धृतिं जहुः।।१०२।।
फलेग्रहीनिमान् दृष्ट्वा पिपासूंश्च स्वयं ग्रहैः।
न्येषधन्नै वमीहध्वमिति तान्वनदेवताः।।१०३।।

उनके साथ चार हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा धारण की थी। वे भगवान का मत नहीं जानते थे। वे भक्ति से प्रेरित होकर ही दीक्षित हुए थे।।९९।।

तदुपरान्त विश्व के अधिपति भगवान शरीर से ममत्व को छोड़ कर तपोयोग में सावधान होकर मौन धारण करके मोक्षप्राप्ति के लिये स्थिर हो गये।।१००।।

योगों की एकाग्रता से मन और बाह्य इन्द्रियों के विकारों को रोक देने वाले महाधैर्यशाली भगवान छह माह तक उपवास की प्रतिज्ञा करके स्थित हो गये।।१०१।।

दीक्षा को दो-तीन माह भी नहीं हुए थे कि अपने आप को मुनि मानने वाले राजाओं ने परीषहरूपी वायु से पीड़ित होकर शीघ्र ही धैर्य छोड़ दिया।।१०२।।

हे मूर्खों ! यह दिगम्बर रूप अर्हन्त और चक्रवर्तियों के द्वारा धारण करने योग्य है, इसे तुम कायरता का स्थान मत बनाओ - ऐसा कहते हुए

९९ = १७/२१२ १०० = १८/१ १०१ = १८/२
१०२ = १८/१६ १०३ = १८/५२

इदं रूपमदीनानामर्हतां चक्रिणामपि।
निषेव्यं कातरत्वस्य पदं माकार्ष्ट बालिशाः।।१०४।।
इति तद्वचनाद्भीतास्तद्रूपेण तथेहितुम्।
पाषण्डिनां ते प्रथमे बभूवुर्मोहदूषिताः।।१०५।।
मरीचिश्च गुरोर्नप्ता परिव्राड्भूयमास्थितः।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धान्तभाषितैः।।१०६।।
अत्रान्तरे किलायातां कुमारौ सुकुमारकौ।
सूनू कच्छमहाकच्छनृपयोर्निकटं गुरोः।।१०७।।
नमिश्च विनमिश्चेति प्रतीतौ भक्तिनिर्भरौ।
भगवत्पादसंसेवां कर्त्तुकामो युवेशिनौ।।१०८।।
भोगेषु सतृषावेतौ प्रसीदेति कृतानती।

वनदेवता ने उन मुनियों को अपने ही हाथों से फल और पानी को ग्रहण करते हुए देख कर मना किया।।१०३,१०४।।

वनदेवता के वचनों को सुन कर वे तपस्वी वैसा करने से डर गये। वे मोह के उदय से दूषित होकर पाखण्डियों में मुख्य हो गये।।१०५।।

भगवान का नाती मरीचिकुमार भी परिव्राजक हो गया और उसने मिथ्याशास्त्रों का उपदेश देकर मिथ्यात्व की वृद्धि की।।१०६।।

इसी बीच महाराज कच्छ और महाकच्छ के पुत्र भगवान के पास आये। वे अत्यन्त सुकुमार और तरुण थे।।१०७।।

उनका नाम नमि और विनमि था। वे दोनों ही भक्ति से युक्त होकर भगवान के चरणकमलों की सेवा करना चाहते थे।।१०८।।

वे भोगों में सतृष्ण थे। अतः भगवान हम पर प्रसन्न होइये - ऐसा कह कर भगवान के चरणों में लिपट कर उनके ध्यान में विघ्न करने लगे।।१०९।।

१०४ = १८/५३	१०५ = १८/५४,५९	१०६ = १८/६१
१०७ = १८/९१	१०८ = १८/९२	१०९ = १८/९३

पदद्वयेऽस्य संलग्नौ भेजतुर्ध्यानविघ्नताम्।।१०९।।
त्वयेश पुत्रनप्तृभ्यः संविभक्तमभूदिदम्।
साम्राज्यं विस्मृतावावामतो भोगान् प्रयच्छ नौ।।११०।।
इत्येवमनुबध्नन्तौ युक्तायुक्तानभिज्ञकौ।
तौ तदा जलपुष्पाघ्र्यैरुपासामासतुर्विभुम्।।१११।।
ततः स्वासनकम्पेन तदज्ञासीत्फणीश्वरः।
ससम्भ्रममथोत्थाय सोऽन्तिकं भर्त्तुरागमत्।।११२।।
परीत्य प्रणतो भक्त्या स्तुत्वा च स जगद्गुरुम्।
पुनरित्यवदत् प्रीतिलतायाः कुसुमं वचः।।११३।।
मां वित्तं किङ्करं भर्त्तुः पातालस्वर्गवासिनम्।
युवयोर्भोगभागित्वं विधातुं समुपागतम्।।११४।।
आदिष्टोऽस्म्यहमीशेन कुमारौ भक्तिकाविमौ।

हे प्रभो ! आपने अपना राज्य पुत्र और पौत्रों में बाँट दिया। उससमय आपने हमें भुला ही दिया। अब हमें भी कुछ भोग्य वस्तुयें दीजिये।।११०।।

इसीप्रकार जिन्हें युक्त और अयुक्त का कुछ ज्ञान नहीं था - ऐसे वे दोनों भगवान की पुष्प तथा अर्घ्यादिक से पूजा कर रहे थे।।१११।।

तदनन्तर धरणेन्द्र ने अपना आसन कम्पित होने से समस्त वृत्तान्त जान लिया। वह बड़े ही सम्भ्रम के साथ उठ कर भगवान के समीप आया।।११२।।

उसने जगद्गुरु भगवान की प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया और दोनों राजपुत्रों से प्रीतिरूपी लताओं के फूलों के समान वचन कहने लगा।।११३।।

मुझे भगवान का पातालनिवासी किंकर समझें तथा मैं आप दोनों को भोगों से युक्त करने के लिये ही यहाँ आया हूँ।।११४।।

११० = १८/९४	१११ = १८/९५	११२ = १८/९६,९७
११३ = १८/१०६,१३८	११४ = १८/१४०	११५ = १८/१४१

भोगैरिष्टैर्नियुङ्क्ष्वेति द्रुतं तेनागतोऽस्म्यहम्।।११५।।
युवयोर्भोगमद्याहं दास्यामि गुरुदेशिताम्।
इत्यस्य वचनात्प्रीतौ कुमारौ तमवोचताम्।।११६।।
सत्यं गुरुः प्रसन्नो नौ भोगान् दित्सति वाञ्छितान्।
इत्युक्तवन्तौ प्रत्याख्य सोपायं फणिनां पतिः।।११७।।
स व्योममार्गामुत्पत्य विमानमधिरोप्य तौ।
द्राक् प्राप विजयार्द्धार्द्रिं भूदेव्या हसितोपमम्।।११८।।
तत्राधिरोप्य हरिविष्टरमीशितारौ।
युष्माकमित्यभिदधत्खचरान्समस्तान्।।
राज्यभिषेकमनयोः प्रचकार धीरो।
विद्याहरीकरधृतैः पृथुहेमकुम्भैः।।११९।।

भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि ये दोनों कुमार अपूर्व भक्त हैं। अतः तुम इन्हें इच्छानुसार भोगों से युक्त करो। इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ।।११५।।

गुरु के आदेश से मैं तुम्हें भोगसामग्री प्रदान करूँगा। इसप्रकार धरणेन्द्र के वचन सुन कर दोनों राजपुत्र प्रसन्न हो गये।।११६।।

सचमुच ही गुरुदेव हम पर प्रसन्न हो गये हैं और हमें मनोवांछित भोग देना चाहते हैं - ऐसा कहने वाले राजपुत्रों को धरणेन्द्र ने विश्वास दिलाया।।११७।।

धरणेन्द्र दोनों राजपुत्रों को विमान में बिठा कर आकाश मार्ग से शीघ्र ही विजयार्द्ध-पर्वत पर जा पहुँचा। उससमय वह पर्वत पृथ्वीरूपी देवी के हास्य की समानता धारण कर रहा था।।११८।।

वहाँ धरणेन्द्र ने उन्हें राजसिंहासन पर बिठा कर सभी विद्याधरों से कहा - ये तुम्हारे स्वामी हैं तथा उस धीर-वीर धरणेन्द्र ने विद्याधरियों के हाथों से उठाये हुए सुवर्णमयी बड़े-बड़े कलशों से उनका राज्याभिषेक किया।।११९।।

११६ = १८/१४२,१४३ ११७ = १८/१४३,१४५
११८ = १८/१४८ ११९ = १९/१८१

(छन्द = मालिनी)
नमिरनमयदुच्चैर्भोगसम्पत्प्रतीतान्।
गगनचरपुरीन्द्रान्दक्षिणश्रेणिभाजः।।
विनमिरपि विनम्रानातनोति स्म विश्वान्।
खचरपुरवरेशानुत्तरश्रेणिभाजः।।१२०।।
इति श्रीपुराण समाम्नाये सप्तमं पर्व।

नमिकुमार ने प्रचुर भोगोपभोग की सम्पदा को प्राप्त हुए दक्षिण श्रेणी में रहने वाले समस्त विद्याधर नगरियों के राजाओं को अपने वश में किया था। विनमि ने भी उत्तर श्रेणी में रहने वाले समस्त विद्याधर राजाओं को नम्रीभूत किया था।।१२०।।

इसप्रकार श्रीपुराण में सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

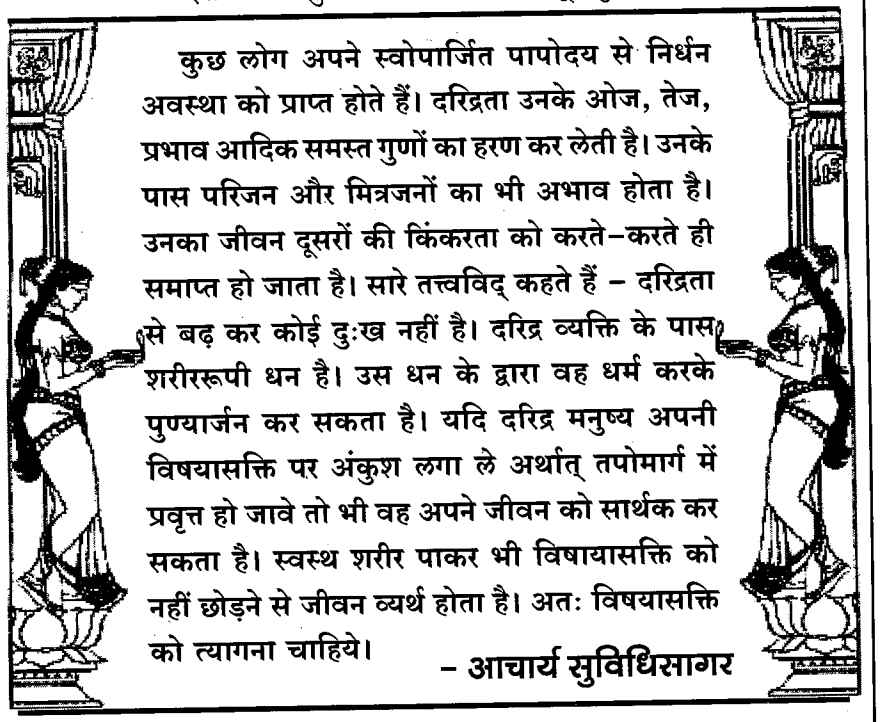

१२० = १९/१९०

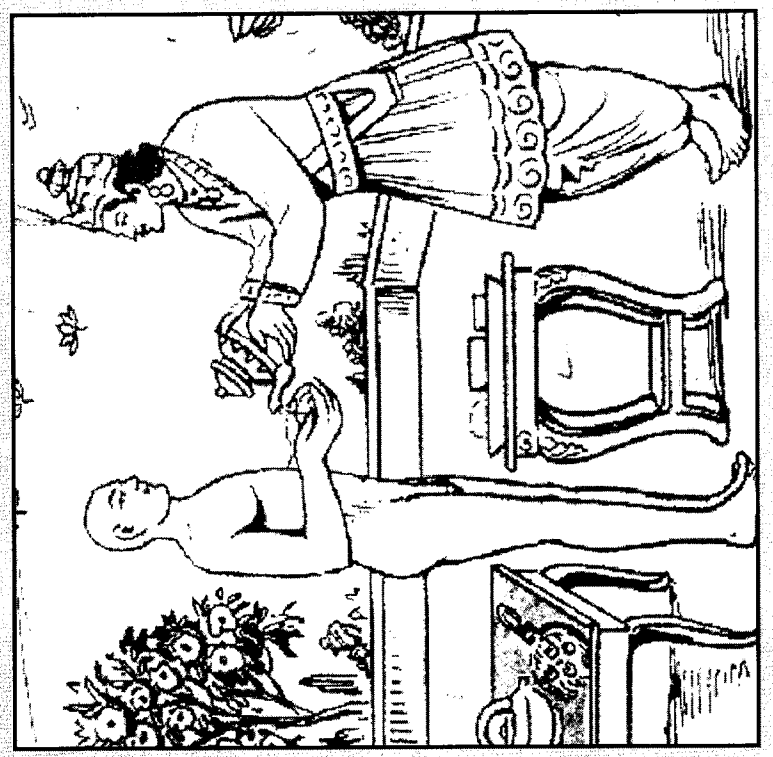

श्री आदिनाथ को राजा श्रेयांस का आहार दान

अष्टम पर्व

(भगवान आदिनाथ को केवलज्ञान)

- दानतीर्थ की उत्पत्ति
- भगवान को केवल ज्ञान
- भरत की दिग्विजय यात्रा

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

अष्टमं पर्व

प्रपूर्यन्ते स्म षण्मासास्तस्याथो योगधारिणः।
गुरोर्मेरोरिवाचिन्त्यमाहात्म्यस्याचलस्थितेः।।१।।
ततोऽस्य मतिरित्यासीद्यतिचर्याप्रबोधने।
कायस्थित्यर्थनिर्दोषविष्वाणान्वेषणं प्रति।।२।।
मार्गप्रबोधनार्थं च मुक्तेश्च सुखसिद्धये।
कायस्थित्यर्थमाहारं दर्शयामस्ततोऽधुना।।३।।
भगवानिति निश्चिन्वन्योगं संहृत्य धीरधीः।
प्रचचाल महीं कृत्स्नां चालयन्निव विक्रमैः।।४।।
वस्तुवाहनकोटीश्च विभोः केचिदढौकयन्।

श्रीपुराणम्

आठवाँ अधिकार

अचिन्त्य माहात्म्य के धारक और मेरुपर्वत के समान अचल स्थिति के धारक ऐसे जगद्गुरु के जब योगधारण करते हुए छह माह व्यतीत हो गये तब यतियों को आहार लेने की विधि बताने के उद्देश्य से, शरीर की स्थिति को कायम रखने के लिये निर्दोष आहार प्राप्त करने की बुद्धि उत्पन्न हुई है जिनमें - ऐसे जिनेन्द्रदेव विचार करने लगे कि मोक्षमार्ग का प्रबोधन करने के लिये, सुखपूर्वक मुक्ति की सिद्धि के लिये और कायस्थिति के लिये मैं आहारविधि दिखलाता हूँ।।१,२,३।।

ऐसा निश्चय करके धीर बुद्धि वाले भगवान ने योग को समाप्त कर अपने चरणों से मानो पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए विहार किया।।४।।

१ = २०/१ २ = २०/२ ३ = २०/४ ४ = २०/१० ५ = २०/१७

भगवांस्तास्वनर्थित्वात्तूष्णीकां विजहार सः।।५।।
विभोर्निगूढचर्यस्य मतं ज्ञातुमनीश्वराः।
केचित्कर्तव्यता मूढाः स्थिताश्चित्रेष्विवार्पिताः।।६।।
इत्यस्य परमां चर्यां चरतोऽज्ञातचर्यया।
जगदाश्चर्यकारिण्या मासाः षडपरे ययुः।।७।।
ततः संवत्सरे पूर्णे पुरं हास्तिनसाह्वयम्।
कुरुजाङ्गलदेशस्य ललामे वाससाद सः।।८।।
तस्य पाता तदासीच्च कुरुवंशशिखामणिः।
सोमप्रभः प्रसन्नात्मा सोमसौम्याननो नृपः।।९।।
तस्यानुजः कुमारोऽभूच्छ्रेयांच्छ्रेयान्गुणोदयैः।
रूपेण मन्मथः कान्त्या शशी दीप्त्या स भानुमान्।।१०।।

कुछ लोग करोड़ों वाहन और पदार्थ भगवान के समीप लाते थे, लेकिन प्रभु को उनसे कोई प्रयोजन न होने के कारण वे आगे विहार कर जाते थे।।५।।

जिनकी चर्या अत्यन्त गुप्त है - ऐसे भगवान के अभिप्राय को जानने में असमर्थ अनेक लोग कर्तव्यविमूढ़ होकर चित्र के समान स्थिर खड़े रह जाते थे।।६।।

जगदाश्चर्यकारिणी गूढ़चर्या को धारण करने वाले भगवान के इसप्रकार छह माह और व्यतीत हो गये।।७।।

एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर वे कुरुजांगल देश के आभूषण के समान हस्तिनापुर नामक नगर में पहुँचे।।८।।

उससमय उस नगर के रक्षक राजा सोमप्रभ कुरुवंश के मुकुटमणि के समान थे। राजा का मन अतिशय प्रसन्न और मुख चन्द्रमा के समान सौम्य था।।९।।

उनके छोटे भाई का नाम श्रेयांसकुमार था, जो गुणोदय से श्रेष्ठ, रूप से कामदेव के समान, सुन्दर कान्ति से चन्द्रमा और दीप्ति से सूर्य के समान था।।१०।।

भगवान ने आहार विधि का ज्ञान देने हेतु योग को समाप्त किया

६ = २०/२६ ७ = २०/२८ ८ = २०/२९ ९ = २०/३० १० = २०/३१

दानतीर्थ की उत्पत्ति

धनदेवचरो योऽसावहमिन्द्रो दिवश्च्युतः।
स श्रेयानित्यभूच्छ्रेयः प्रजानां श्रेयसां निधिः।।११।।
सोऽदर्शद्भगवत्यस्यां पुरि सन्निधिमेष्यति।
शर्वर्याः पश्चिमे यामे स्वप्नानेतान् शुभावहान्।।१२।।
सुमेरुमैक्षतोत्तुङ्गं हिरण्मयमहातनुम्।
कल्पद्रुमं च शाखाग्रलम्बि भूषणभूषितम्।।१३।।
सिंह संहारसन्ध्याभ केसरोद्धरकन्धरम्।
शृङ्गाग्रलग्नमृत्स्नं च वृषभं कूलमुद्वुजम्।।१४।।
सूर्येन्दू भुवनस्येव नयने प्रस्फुरद्द्युती।
सरस्वन्तमपि प्रोच्चैर्वीचिं रत्नाचितार्णसम्।।१५।।
अष्टमङ्गलधारीणि भूतरूपाणि चाग्रतः।
सोऽपश्यद् भगवत्पाददर्शनैकफलान्निमान्।।१६।।

श्रेयांस ने शुभ सपनें देखें

जो पहले धनदेव और फिर अहमिन्द्र था, वह स्वर्ग से चय कर प्रजा का कल्याण करने वाला और स्वयं कल्याणों का निधिस्वरूप श्रेयांसकुमार हुआ था।।११।।

जब भगवान हस्तिनापुर नगर के निकट आने को हुए तब श्रेयांसकुमार ने पश्चिमरात्रि में शुभावह स्वप्न देखे।।१२।।

सुवर्णमयी महाशरीर को धारण करने वाला अतिशय ऊँचा सुमेरुपर्वत, शाखाओं के अग्रभाग पर लटकते हुए आभूषणों से युक्त कल्पवृक्ष, प्रलयकालीन सन्ध्या के मेघों के समान पीली आयाल से जिसकी गरदन ऊँची हो रही है ऐसा सिंह, जिसके सिंग के अग्रभाग पर मिट्टी लगी हुई है ऐसा किनारा उखाड़ता हुआ बैल, अतिशय कान्ति से देदीप्यमान और जगत्त्रय के नेत्रों के समान सूर्य तथा चन्द्र, ऊँची उठती हुई लहरों और रत्नों से सुशोभित समुद्र और अष्टमंगल धारण करके खड़ी हुई भूतदेवियों की मूर्तियाँ उसने स्वप्न में देखी। भगवान के चरणकमलों का दर्शन ही जिसका फल है - ऐसे स्वप्नों को उसने देखा।।१३,१४,१५,१६।।

११ = २०/३२	१२ = २०/३३	१३ = २०/३४
१४ = २०/३५	१५ = २०/३६	१६ = २०/३७

सप्रश्रयमथासाद्य प्रभाते प्रीतमानसः।
सोमप्रभाय तान् स्वप्नान् यथादृष्टं न्यवेदयत्।।१७।।
ततः पुरोधाः कल्याणं फलं तेषामभाषत।
निर्व्यग्रो भगवांश्चान्द्रीं चर्यामाश्रित्य पर्यटन्।।१८।।
गेहं गेहं यथायोग्यं प्रविशन् राजमन्दिरम्।
प्रवेष्टुकामो ह्यगमत् सोऽयं धर्मः सनातनः।।१९।।
ततः सिद्धार्थनामैत्य द्रुतं द्वौवारपालकः।
भगवत्सन्निधिं राज्ञे सानुजाय न्यवेदयत्।।२०।।
अथ सोमप्रभो राजा श्रेयानपि युवा नृपः।
दूरादवनतौ भर्तृश्चरणौ तौ प्रणेमतुः।।२१।।
सम्प्रेक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयाञ्जातिस्मरोऽभवत्।
ततो दाने मतिं चक्रे संस्कारैः प्राक्तनैर्युतः।।२२।।

जिसका मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है - ऐसे श्रेयांसकुमार ने प्रातः सोमप्रभ राजा के समक्ष विनयपूर्वक जाकर रात्रि के समय देखे हुए स्वप्न ज्यों के त्यों कहे।।१७।।

तदुपरान्त पुरोहित ने उन स्वप्नों का कल्याणकारी फल बताया। उससमय भगवान चान्द्रीचर्या का आश्रय करके पर्यटन कर रहे थे।।१८।।

इसप्रकार यथायोग्य रीति से घर-घर में प्रवेश करते हुए भगवान राजमन्दिर में प्रवेश करने के लिये उसके सम्मुख गये। यही सनातन धर्म है।।१९।।

उससमय सिद्धार्थ नामक द्वारपाल ने शीघ्र ही जाकर ये समाचार अपने छोटे भाई के साथ बैठे हुए राजा को दिये।।२०।।

राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयांस ने दूर से नम्रीभूत होकर भक्तिसहित भगवान के चरणों में नमोऽस्तु किया।।२१।।

भगवान का रूप देख कर श्रेयांस को जातिस्मरण हो गया। पूर्वपर्याय के संस्कारों से उसने भगवान को आहार देने की बुद्धि की।।२२।।

१७ = २०/३८	१८ = २०/३९,६७	१९ = २०/६८
२० = २०/६९	२१ = २०/७०,७१	२२ = २०/७८

श्रेयांस ने भगवान को नवधा भक्ति से आहार दान दिया

श्रीमती वज्रजङ्घादिवृत्तान्तं सर्वमेव तत्।
तदा चरणयुग्माय दत्तं दानं च सोऽध्यगात्।।२३।।
श्रद्धादिगुणसम्पन्नः पुण्यैर्नवभिरन्वितः।
प्रादाद्भगवते दानं श्रेयान् दानादि तीर्थकृत्।।२४।।
रत्नवृष्टिरथापप्तदम्बरादमरेशिनाम्।
करैर्मुक्तामहादानफलस्येव परम्परा।।२५।।
तथापप्तद्दिवो देवकरैर्मुक्तालिसङ्कुला।
वृष्टिः सुमनसां दृष्टिमालेव त्रिदिवौकसाम्।।२६।।
नेदुः सुरानका मन्द्रं वधिरीकृतविष्टपाः।
संचचार मरुच्छीतः सुरभिर्मान्द्यसुन्दरः।।२७।।
प्रोच्चचार महाध्वानो देवानां प्रीतिमीयुषाम्।
अहो दानमहो पात्रमहो दातेति खाङ्गणे।।२८।।

उसे श्रीमती और वज्रजंघ का समाचार स्मरण हो आया था तथा उससमय चारण ऋद्धिधारी मुनियों का आहार भी स्मरण में आया था।।२३।।

श्रद्धादि सात गुण और पुण्योत्पादक नवधाभक्ति से सहित होकर दानतीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले श्रेयांस ने भगवान के लिये दान दिया।।२४।।

उससमय आकाश से महादान के फल की परम्परा के अनुसार देवों के हाथों से छोड़ी हुई रत्नवर्षा होने लगी।।२५।।

उसीसमय देवों के हाथों से छोड़ी हुई और भ्रमरों के समूह से व्याप्त पुष्पवर्षा आकाश से होने लगी।।२६।।

समस्त लोक को बधिर के समान करने वाले देवों के नगाड़े गम्भीर शब्द करने लगे। मन्द-मन्द गमन करने से सुन्दर, शीतल तथा सुगन्धित वायु चलने लगी।।२७।।

प्रीति को प्राप्त हुए देवों के द्वारा उससमय अहो दान ! अहो दाता ! इसप्रकार के शब्द आकाशरूपी आँगन में हो रहे थे।।२८।।

२३ = २०/७९	२४ = २०/८१	२५ = २०/१०२
२६ = २०/१०३	२७ = २०/१०४	२८ = २०/१०५

तपोवनमथो भेजे भगवान् कृतपारणः।
जगज्जनतया सम्यगभिष्टुतमहोदयः।।२९।।
ततो विस्मयमासेदुर्भरताद्या नरेश्वराः।
प्रतीताः कुरुराजं तं पूजयामासुरादरात्।।३०।।
भगवानथ सञ्जात बलवीर्यो महाधृतिः।
भेजे परं तपोयोगं योगविज्जैन कल्पितम्।।३१।।
गर्भात्प्रभृत्यसौ देवो ज्ञानत्रितयमुद्वहन्।
दीक्षानन्तरमेवाप्तमनःपर्ययबोधनः।।३२।।
तथाप्युग्रं तपोऽतप्त सेद्धव्ये ध्रुवभाविनि।
स ज्ञानलोचनो धीरः सहस्रं वार्षिकं परम्।।३३।।
मौनी ध्यानी स निर्मानो देशान् प्रविहरंच्छनैः।
पुरं परिमतालाख्यं सुधीरन्येद्युरासदत्।।३४।।

जिनके महान महाभ्युदय की प्रशंसा संसार के सभी लोग करते हैं - ऐसे भगवान पारणा करके वन को चले गये।।२९।।

भरतादि नरेश्वरों को इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ। जिन्हें कुरुराज पर विश्वास हो गया था - ऐसे देवों ने उसकी आदर के साथ पूजा की।।३०।।

तदुपरान्त आहार के कारण जिनके बल और वीर्य की उत्पत्ति हुई है, जो महाधृतिधर और योग के जानने वाले हैं - ऐसे भगवान श्रेष्ठ तपोयोग को धारण करने लगे।।३१।।

वे देव गर्भ से ही तीन ज्ञान के धारक थे और दीक्षा के अनन्तर उन्हें मनःपर्ययज्ञान हो गया था।।३२।।

उन्हें ध्रुवरूप से सिद्धत्व की प्राप्ति होने वाली थी। तथापि सम्यग्ज्ञानरूपी चक्षुओं के धारी, धीर भगवान ने एक हजार वर्ष पर्यन्त श्रेष्ठ तप किया।।३३।।

मौनी, ध्यानी, निरभिमानी, अतिशय बुद्धिमान भगवान धीरे-धीरे अनेक देशों में विहार करते हुए किसी दिन पुरिमताल नगर के समीप आये।।३४।।

२९ = २०/१२१	३० = २०/१२३,१२५	३१ = २०/१५४
३२ = २०/१८१	३३ = २०/१८२	३४ = २०/२१८

श्रीपुराणम्

नात्यासन्नविदूरेऽस्मादुद्याने शकटाह्वये।
शुचौ निराकुले रम्ये विविक्तेऽस्थाद्विजन्तुके।।३५।।
न्यग्रोधपादपस्याधः शिलापट्टं शुचिं पृथुम्।
सोऽध्यासीनः समाधानमधाद्ध्यानाय शुद्धधीः।।३६।।
फाल्गुने मासि तामिस्रपक्षस्यैकादशीतिथौ।
उत्तराषाढनक्षत्रे कैवल्यमुदभूद्विभोः।।३७।।
तदा प्रक्षुभिताम्भोधि वेलाध्वानानुकारिणी।
घण्टा मुखरयामास जगत्कल्पामरेशिनाम्।।३८।।
ज्योतिर्लोके महान्सिंहप्रणादोऽभूत् समुत्थितः।
येनाशु विमदीभावमवापन्सुरवारणाः।।३९।।
दध्वान ध्वनदम्भोद ध्वनितानि तिरोदधन्।

वहाँ शकट नामक उद्यान था। वह गाँव से न अतिदूर था न अतिनिकट। उसी पवित्र, निराकुल, रम्य विविक्त और निर्जन्तुक उद्यान में भगवान ठहर गये।।३५।।

वटवृक्ष के नीचे एक पवित्र और विशाल शिला पर शुद्ध बुद्धि वाले भगवान ध्यान के लिये विराजमान हो गये और चित्त की एकाग्रता को धारण किया।।३६।।

फाल्गुन माह में कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में उस विभु को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।।३७।।

उससमय क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र की लहरों के शब्द का अनुसरण करता हुआ कल्पवासी देवों के विमान में स्थित घण्टा संसार को वाचाल बना रहा था।।३८।।

ज्योतिर्लोक में महान सिंहनाद हो रहा था, जिसके कारण देवताओं के हाथी भी मदरहित हो रहे थे।।३९।।

३५ = २०/२१९ ३६ = २०/२२० ३७ = २०/२६८
३८ = २२/२ ३९ = २२/३ ४० = २२/४

श्रीपुराणम्

वैयन्तरेषु गेहेषु महानानकनिःस्वनः।।४०।।
शङ्खः शं खचरैः सार्द्धं यूयमेतज्जिघृक्षवः।
इतीव घोषयन्न्युच्चैः फणीन्द्रभवनेऽध्वनत्।।४१।।
चिह्नैरमीभिरह्राय सुरेन्द्रोऽबोधि सावधिः।
वैभवं भुवनव्यापि वैभवध्वंसिवैभवम्।।४२।।
प्रयाणपटहेषूच्चैः प्रध्वनत्सु शताध्वरः।
भर्तृः कैवल्यपूजायै निश्चक्राम सुरैर्वृतः।।४३।।
सुरैर्दूरादथालोकि विभोरास्थानमण्डलम्।
सुरशिल्पिभिरारब्धपरार्ध्यरचनाशतम्।।४४।।
तत्रासीनं तमिन्द्राद्याः परिचेरुर्महेज्यया।
पुष्पवृष्टिं प्रवर्षन्तो नभोमार्गाद्घना इव।।४५।।

व्यन्तरगृहों में नगाड़ों के ऐसे महान शब्द हो रहे थे कि वे गरजते हुए मेघों के शब्दों को भी तिरस्कृत कर रहे थे।।४०।।

फणीन्द्र के भवनों में शंख स्वयं ही शब्द करके मानो कह रहा था कि भो भवनवासियो ! तुम नभोगामी देवों के साथ पुण्य को ग्रहण करने की इच्छा करो।।४१।।

अवधिज्ञान के धारक इन्द्र ने इन समस्त चिह्नों से भगवान को भुवनव्यापि और भवविध्वंसक केवलज्ञानरूपी वैभव प्राप्त हुआ है - ऐसा जान लिया।।४२।।

जब प्रस्थानकाल की सूचना देने वाले नगाड़े जोर-जोर से बज रहे थे तब वह इन्द्र अनेक देवों से परिवृत्त होकर कैवल्यपूजा के लिये निकला।।४३।।

जिसमें देवरूपी शिल्पियों ने विविध उत्तमोत्तम रचनायें की हैं - ऐसे भगवान के समवसरण को देवों ने दूर से ही देखा।।४४।।

सिंहासन पर विराजमान भगवान की इन्द्रादि देव महापूजाओं के द्वारा परिचर्या कर रहे थे तथा मेघों की तरह आकाश से पुष्पवर्षा कर रहे थे।।४५।।

४१ = २२/५ ४२ = २२/११ ४३ = २२/१४ ४४ = २२/७६ ४५ = २३/३०

श्रीमान् भरतराजर्षिर्बुबुधे युगपत्त्रयम्।
गुरोः कैवल्यसम्भूतिं सूतिं च सुतचक्रयोः।।४६।।
प्रतस्थेऽथ महाभागो वन्दारुर्भरताधिपः।
जिनं हस्त्यश्वपादातरथकुञ्ज्यावृतोऽभितः।।४७।।
मध्ये गन्धकुटीद्धर्द्धिं परार्ध्यें हरिविष्टरे।
उदयाचलमूर्धस्थमिवार्कं जिनमैक्षत।।४८।।
सोन्वक्प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं जगद्गुरुम्।
इयाज यायजूकानां ज्यायान्प्राज्येज्यया प्रभुम्।।४९।।
भवद्भविष्यद्भूतं च यत्सर्वं द्रव्यगोचरम्।
तत्सर्वं सर्ववित्सर्वो भरतं प्रत्यबूबुधत्।।५०।।

उसीसमय राजर्षि भरत को गुरु को केवलज्ञान की प्राप्ति, अन्तःपुर में पुत्रोत्पत्ति और चक्ररत्न की प्राप्ति विषयक एकसाथ तीन समाचार मिले।।४६।।

जो महाभाग्यशाली है, जिनेन्द्रवन्दन का अभिलाषी है, भरतक्षेत्र का अधिपति है और जिसे चारों ओर से हाथी, घोड़ा, पदाति और रथों के समूह ने घेर रखा है – ऐसे भरत ने प्रस्थान किया।।४७।।

उदयाचल के शिखर पर स्थित सूर्य के समान महामूल्यवान, श्रेष्ठ सिंहासन पर स्थित एवं अनेक देदीप्यमान ऋद्धियों के धारक भगवान को भरत ने देखा।।४८।।

अष्टप्रातिहार्यरूपी ऐश्वर्य से युक्त तथा जगद्गुरु भगवान को देख कर पूजा करने वालों में श्रेष्ठ भरत ने उन्हें प्रदक्षिणा दी तथा उनकी पूजा उत्कृष्ट सामग्री से की।।४९।।

सर्ववित् और सार्व प्रभु ने भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्बन्धी समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण स्वरूप भरत को बताया।।५०।।

उससमय पुरिमताल नगर के स्वामी, भरत का अनुज, प्राज्ञ, शूर, पवित्र, धीर, मानशालियों में श्रेष्ठ, श्रीमान, प्रज्ञापारमित, जितेन्द्रिय वृषभसेन ने

४६ = २४/२ ४७ = २४/१३ ४८ = २४/२१
४९ = २४/२८ ५० = २४/१६१

योऽसौ पुरिमतालेशो भरतस्यानुजः कृती।
प्राज्ञः शूरः शुचिर्धीरो धौरेयो मानशालिनाम्।।५१।।
श्रीमान् वृषभसेनाख्यः प्रज्ञापारमितो वशी।
स सम्बुध्य गुरोः पार्श्वे दीक्षित्वाभूद्गणाधिपः।।५२।।
स श्रीमान् कुरुशार्दूलः श्रेयान् सोमप्रभोऽपि च।
नृपाश्चान्ये तदोपात्तदीक्षा गणभृतोऽभवन्।।५३।।
भरतस्यानुजा ब्राह्मी दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात्।
गणिनीपदमार्याणां सा भेजे पूजितामरैः।।५४।।
सुन्दरीचात्तनिर्वेदा तां ब्राह्मीमन्वदीक्षत।
अन्ये चान्याश्च संविग्ना गुरोः प्राव्राजिपुस्तदा।।५५।।
मरीचिवर्ज्याः सर्वेऽपि तापसास्तपसि स्थिताः।
भट्टारकान्ते सम्बुद्ध्य महाप्राव्राज्यमास्थिताः।।५६।।

भगवान का सम्बोधन पाकर दीक्षा धारण कर ली और वह प्रथम गणधर हुआ।।५१,५२।।

उसीसमय श्रीमान और कुरुवंश में शार्दूल के समान सुशोभित महाराज सोमप्रभ, श्रेयांसकुमार तथा अन्य राजाओं ने भी दीक्षा लेकर गणधर पद प्राप्त किया था।।५३।।

भरत की अनुजा ब्राह्मी भी गुरु के अनुग्रह से दीक्षित होकर आर्यिकाओं में गणिनी पद को प्राप्त हुई। वह सब देवों के द्वारा पूजित हुई थी।।५४।।

सुन्दरी को भी उससमय वैराग्य हो गया। उसने ब्राह्मी के बाद दीक्षा ले ली। अन्य राजाओं ने व राजकन्याओं ने भी भवभीरु बन कर गुरुदेव के समीप दीक्षा ले ली।।५५।।

मरीचि को छोड़ कर भ्रष्ट हुए सम्पूर्ण तपस्विगण भगवान से उपदेश प्राप्त करके तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझ कर पुनः दीक्षा लेकर तप करने लगे।।५६।।

५१ = २४/१७१ ५२ = २४/१७२ ५३ = २४/१७४
५४ = २४/१७५ ५५ = २४/१७७ ५६ = २४/१८२

ततो भरतराजेन्द्रो गुरुं सम्पूज्य पुण्यधीः।
स्वपुराभिमुखो जज्ञे चक्रपूजाकृतत्वरः।।७७।।
युवा बाहुबली धीमानन्ये च भरतानुजाः।
तमन्वीयुः कृतानन्दमभिवन्द्य जगद्गुरुम्।।७८।।
अथ चक्रधरः पूजां चक्रस्य विधिवद् व्यधात्।
सुतोत्पत्तिमपि श्रीमानभ्यनन्ददनुक्रमात्।।७९।।
ततः प्रास्थानिकैः पुण्यनिर्घोषैरभिनन्दितः।
प्रतस्थे दिग्जयोद्युक्तः कृतप्रस्थानमङ्गलः।।८०।।
ततः प्राचीं दिशं जेतुं कृतोद्योगो विशांपतिः।
प्रययौ प्राङ्मुखो भूत्वा चक्ररत्नमनुव्रजन्।।८१।।
ततो विदूरमुल्लङ्घ्य सोऽध्वानं पृतनावृतः।

जिसे चक्ररत्न की पूजा करने की आतुरता हो रही है - ऐसा पवित्र बुद्धि का धारक भरत जगद्गुरु की पूजा कर नगर में लौट आया।।७७।।

युवावस्था को धारण करने वाला, बुद्धिमान बाहुबली तथा भरत के अन्य छोटे भाई जगद्गुरु की वन्दना करके भरत के पीछे-पीछे सानन्द लौट रहे थे।।७८।।

तदनन्तर उस चक्रधर ने विधिपूर्वक चक्र की पूजा की और फिर अनुक्रम से पुत्रोत्पत्ति का आनन्द मनाया।।७९।।

तदुपरान्त प्रस्थान के समय में होने वाले जय शब्दों के साथ जिसका अभिनन्दन किया जा रहा है, जो दिग्विजय की तैयारी कर चुके हैं और जिनके साथ प्रस्थानकालीन समस्त मंगलाचरण किया जा चुका है - ऐसे भरत ने प्रस्थान किया।।८०।।

जिन्होंने सर्वप्रथम पूर्वदिशा को जीतने का उद्योग किया है - ऐसे भरत ने चक्ररत्न के पीछे-पीछे पूर्वदिशा में मुख कर प्रयाण किया था।।८१।।

७७ = २४/१८३ ७८ = २४/१८४ ७९ = २६/१
८० = २६/७३ ८१ = २६/८८ ८२ = २६/१२८

गङ्गामुपासदद्धीरः प्रयाणैः कतिथैरपि।।८२।।
ततः प्रचलितासेना सानुगङ्गं धृतायतिः।
मिमानेव तदायामं पप्रथे प्रथितध्वनिः।।८३।।
ततो विदूरमुल्लङ्घ्य सोऽध्वानं सह सेनया।
गङ्गाद्वारमनुप्रापत् स्वमिवालङ्घ्यमर्णवम्।।८४।।
वेदिकातोरणद्वारमस्ति तत्रोच्छ्रितं महत्।
शनैस्तेन प्रविश्यान्तर्वणं सैन्यं न्यविक्षत।।८५।।
अधिवासितजैत्रास्त्रः स त्रिरात्रमुपोषिवान्।
पुरोधोऽधिष्ठितां पूजां स व्यधात्परमेष्ठिनाम्।।८६।।
सेनान्यं बलरक्षायै नियोज्य विधिवद्विभुः।
प्रतस्थे धृतदिव्यास्त्रो जिगीषुर्लवणाम्बुधिम्।।८७।।

धीर-वीर भरत सेनासहित कितने ही पड़ावों के द्वारा लम्बे मार्ग को पार करके गंगा नदी के समीप जा पहुँचे।।८२।।

तदनन्तर, जिसका शब्द सभी दिशाओं में फैल रहा है - ऐसी वह सेना गंगा नदी के किनारों से लम्बी होकर ऐसे चलने लगी, जैसे उसकी लम्बाई को ही नाप रही हो।।८३।।

सेना के साथ लम्बे मार्ग को पार करके वे गंगाद्वार को प्राप्त हुए और उसके बाद ही वे अपने समान अलंघनीय समुद्र को प्राप्त हुए।।८४।।

वहाँ वेदी का तोरणद्वार है, जो उत्तरद्वार कहलाता है। उसी द्वार से धीरे-धीरे प्रवेश करके सेना एक वन में ठहर गयी।।८५।।

जिसने अपने शस्त्रों का संस्कार किया था, तीन उपवास किये थे, जिसके समीप पुरोहित बैठा हुआ है - ऐसे भरत ने परमेष्ठियों की पूजा की।।८६।।

भरत ने सेना की रक्षा के लिये सेनापति की नियुक्ति की और स्वयं दिव्यास्त्रों को धारण करके लवणसमुद्र जीतने की इच्छा से गमन किया।।८७।।

८३ = २८/१६ ८४ = २८/४५ ८५ = २८/५०
८६ = २८/५४,५५ ८७ = २८/५६

अजितञ्जयमारुक्षद्रथं दिव्यास्त्रसम्भृतम्।
योजितं वाजिभिर्दिव्यैर्जलस्थल विलङ्घिभिः।।६८।।
ततोऽभिमतसंसिद्ध्यै कृतसिद्धनमस्क्रियः।
रथं प्रचोदयेत्युच्चैः प्राजितारमचोदयत्।।६९।।
विमुक्तप्रग्रहैर्वाहैरुह्यमानो मनोजवैः।
रथोऽस्याभिमतां भूमिं प्रापत्सारथिचोदितः।।७०।।
द्विषड्योजनमागाह्य स्थिते मध्येऽर्णवं रथे।
रथाङ्गपाणिरारुष्टो जग्राह किल कार्मुकम्।।७१।।
वक्रेऽपि गुणवत्यस्मिन्नृजुकर्मणि कार्मुके।
अमोघं सन्दधे बाणं श्लाघ्यं स्थानकमास्थितः।।७२।।
स पत्री चक्रिणा मुक्तः प्राङ्मुखीमास्थितो गतिम्।

देवोपनीत शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ और जल-स्थल में समानरूप से चलने वाले दिव्य घोड़े जुते हुए हैं - ऐसे अजितंजय नामक रथ पर भरतेश्वर आरूढ़ हुए।।६८।।

फिर अपने अभिमत की सिद्धि करने के लिये सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर शीघ्र ही रथ को आगे बढ़ाओ - इसप्रकार उसने सारथी को प्रेरणा दी।।६९।।

जिनकी रास ढीली कर दी है, जिनका वेग मन के समान है - ऐसा वह अश्वरथ जहाज के समान शीघ्रता से लवणसमुद्र में चल रहा था।।७०।।

जब वह रथ समुद्र के भीतर बारह योजन चल कर खड़ा हो गया तब चक्रवर्ती ने कुपित होकर धनुष उठाया।।७१।।

जो वक्र होकर भी गुणवान और सरल कार्य करने वाला था - ऐसे उस धनुष पर चक्रवर्ती ने योग्य आसन से खड़े होकर अमोघ नामक बाण रखा।।७२।।

६८ = २८/५८ ६९ = २८/१०४ ७० = २८/१०५,११३
७१ = २८/११५ ७२ = २८/११९ ७३ = २८/१२१,१२२

न्यपप्तन्मागधावासे तत्सैन्यं क्षोभमानयन्।।७३।।
पुरोधाय शरं रत्नपटले सुनिवेशितम्।
मागधः प्रभुमानंसीदार्य स्वीकुरु मामिति।।७४।।
रत्नैश्चाभ्यर्च्य रत्नेशं मागधः प्रीतमानसः।
प्रभोरवाप्तसत्कारस्तन्मतात् स्वमगात्पदम्।।७५।।
अथ चक्रधरो जैनीं कृत्वेज्यामिष्टसाधनीम्।
प्रतस्थे दक्षिणामाशां जिगीषुरनुतोयधि।।७६।।
करग्रहेण सम्पीड्य दक्षिणाशां वधूमिव।
प्रसभं हततत्सारो दक्षिणाब्धिमगात् प्रभुः।।७७।।

चक्रवर्ती के द्वारा चलाया गया बाण पत्रसहित पूर्वदिशा की ओर गया और वह मागध देव के निवासस्थान में क्षोभ उत्पन्न करता हुआ जाकर पड़ा।।७३।।

रत्नपिटारे में रखे हुए बाण को सामने रख कर मागध देव ने भरत को नमस्कार करते हुए निवेदन किया - हे आर्य ! आप मुझे स्वीकार कीजिये।।७४।।

जिसका चित्त प्रसन्न हो रहा है - ऐसे मागध देव ने अनेक प्रकार के रत्नों से चक्ररत्न के स्वामी भरत की पूजा की। फिर उनसे अपना आदर पाकर उनकी सम्मति से वह अपने स्थान पर चला गया।।७५।।

उसके बाद चक्रधर ने इष्टवस्तुओं की सिद्धि करने वाली जिनेन्द्रदेव की पूजा की और दक्षिण दिशा पर विजय प्राप्त करने के लिये समुद्र किनारे चलने लगा।।७६।।

जिसप्रकार कोई पुरुष पाणिग्रहण संस्कार के द्वारा स्त्री को अपने वश में करता है, उसीप्रकार चक्रवर्ती ने करग्रहण (टैक्स) करके दक्षिण दिशा को अपने वश में कर लिया। फिर बलात् उसके सार पदार्थों को छीन कर दक्षिण समुद्र की ओर प्रयाण किया।।७७।।

७४ = २८/१५९ ७५ = २८/१६६
७६ = २९/१ ७७ = २९/९८

श्रीपुराणम्

लवङ्गलवलीप्रायमेलागुल्मलतान्तिकम्।
वेलोपान्तवनं पश्यन् महतीं धृतिमाप सः।।७८।।
अथ तस्मिन्वनाभोगे सैन्यमावासयद्विभुः।
वैजयन्तमहाद्वारनिकटेऽम्बुनिधेस्तटे।।७९।।
(छन्द = शार्दूलविक्रीड़ित)
तत्रावासितसाधनो निधिपतिर्गत्वा रथेनाम्बुधिम्।
जैत्रास्त्रप्रतितर्जितामरसभस्तं व्यन्तराधीश्वरम्।।
जित्वा मागधवत् क्षणाद्धरतनुं तत्साह्वमम्भोनिधे-
र्द्वीपं शश्वदलं चकार यशसा कल्पान्तरस्थायिना।।८०।।
इति श्रीपुराण समाम्नायेऽष्टमं पर्व।

जिनमें लवंग और लवली की लतायें लगी हुई है, जो इलायची के छोटे-छोटे पौधों की लताओं से सहित है - ऐसे किनारे के निकटवर्ती वन को देखता हुआ वह चक्रवर्ती अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हुआ।।७८।।

उसके बाद उस वन के मैदान में समुद्र के किनारे वैजयन्त नामक महाद्वार के समीप चक्रवर्ती ने अपनी सेना ठहरायी।।७९।।

जिसने अपनी सेना समुद्र के तट पर ठहरा दी है, जिसने विजयशील शस्त्रों के द्वारा मागध देव की सभा को जीत लिया है - ऐसे निधियों के स्वामी चक्रवर्ती ने रथ के द्वारा समुद्र में जाकर मागधदेव के समान ही व्यन्तर देवों के स्वामी वरतनु नामक देव को कल्पान्तकाल पर्यन्त स्थिर रहने वाले अपने यश से सदा के लिये अलंकृत कर दिया।।८०।।

इसप्रकार श्रीपुराण मे आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

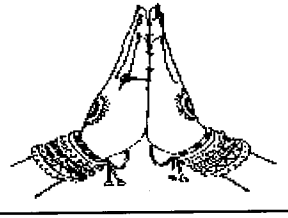

७८ = २९/९९ ७९ = २९/१०३ ८० = २९/१६६

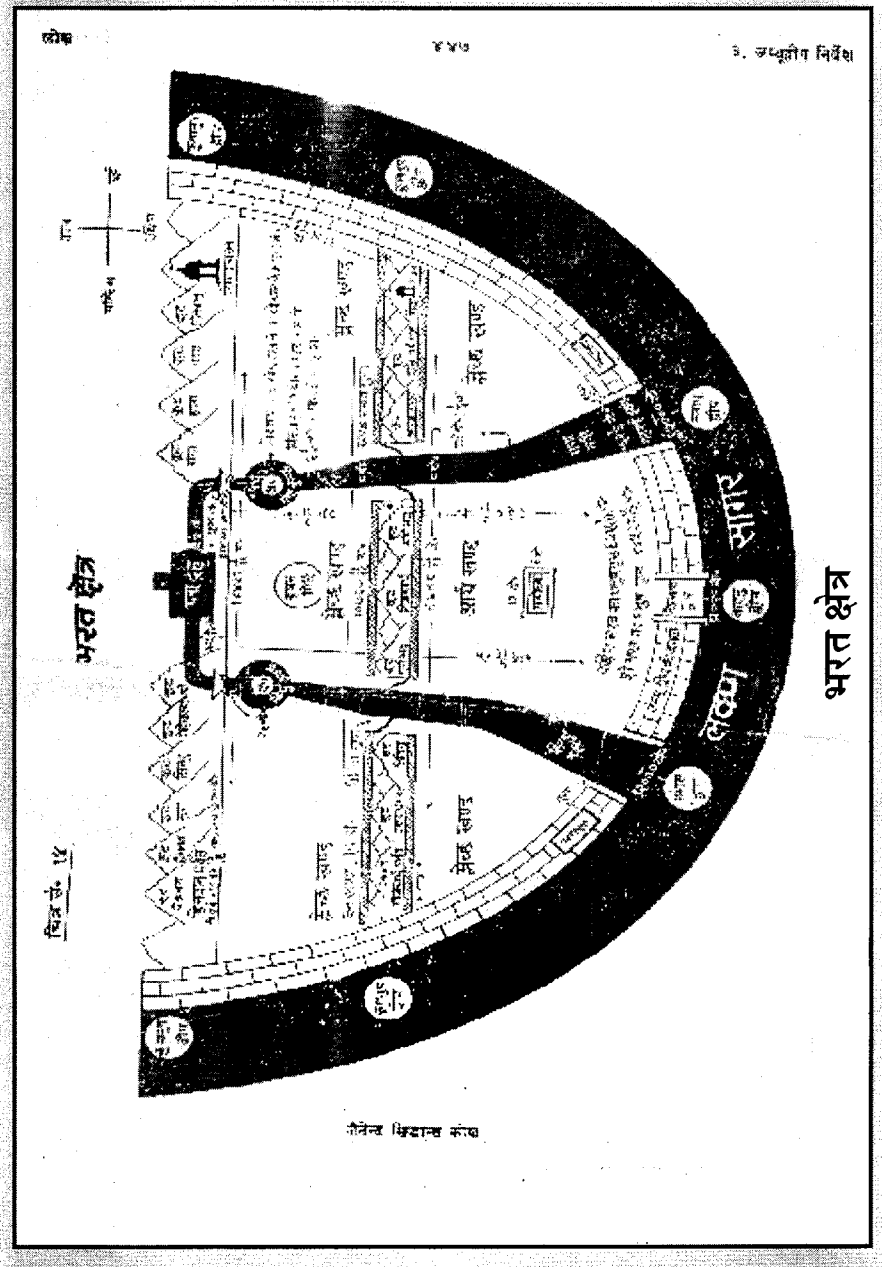

नवम पर्व

(चक्रवर्ती भरत)

- चक्रवर्ती भरत का दिग्विजय
- भरत की दिग्विजय यात्रा अपूर्ण
- भरत और बाहुबली युद्ध को तैयार

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

नवमं पर्व

अथापरान्तं निर्जेतुमुद्यतः प्रभुरुद्ययौ।
दक्षिणापरदिग्भागं वशीकुर्वन्स्वसाधनैः।।१।।
प्राच्यानिव स भूपालान् प्रतीच्यानप्यनुक्रमात्।
श्रावयन् हततन्मानधनः प्रापापराम्बुधिम्।।२।।
अनुवार्द्धि तटं गत्वा सिन्धुद्वारे न्यवेशयत्।
स्कन्धावारं स लक्ष्मीवानक्षोभ्यं स्वमिवाशयम्।।३।।
ततोऽसौ धृतदिव्यास्त्रो रथमारुह्य पूर्ववत्।
जगाहे लवणाम्भोधिं गोष्पदावज्ञया प्रभुः।।४।।

श्रीपुराणम्

नौवाँ अधिकार

तत्पश्चात् पश्चिम दिशा को जीतने के लिये उद्यत हुए चक्रवर्ती ने अपनी सेना के द्वारा दक्षिण और पश्चिम के मध्यभाग को जीतने के लिये प्रयाण किया।।१।।

पूर्व दिशा के समान ही पश्चिम दिशा के राजाओं को भी वश करता हुआ तथा उनके अभिमान और धन का हरण करता हुआ पश्चिम समुद्र की ओर गया।।२।।

राज्यलक्ष्मी से युक्त चक्रवर्ती ने समुद्र के किनारे-किनारे जाकर अपने हृदय के समान कभी क्षुब्ध न होने वाला अपनी सेना का पड़ाव सिन्धु नदी के द्वार पर लगाया।।३।।

तदनन्तर दिव्यास्त्रों के धारक चक्रवर्ती ने पूर्ववत् रथ में आरूढ़ होकर गोष्पद के समान तुच्छ समझते हुये लवणसमुद्र में प्रवेश किया।।४।।

१ = ३०/१ २ = ३०/११२ ३ = ३०/११८ ४ = ३०/१२२

प्रभासमजयत्तत्र प्रभासं व्यन्तराधिपम्।
प्रभासमूहमर्कस्य स्वभासा तर्जयन्प्रभुः।।७।।
कौबेरीमथ निर्जेतुमाशामभ्युद्यतो विभुः।
प्रतस्थे वाजिभूयिष्ठैः साधनैः स्थगयन् दिशः।।६।।
अनुसिन्धुतटं सैन्यैरुदीच्यान् साधयन्नृपान्।
विजयार्द्धाचलोपान्तमाससाद शनैर्मनुः।।७।।
अथ तत्र कृतावासं ज्ञात्वा सनियमं प्रभुम्।
अगान्मागधवत् द्रष्टुं विजयार्द्धाधिपः सुरः।।८।।
ससम्भ्रमं च सोऽभ्येत्य प्रह्वतामगमत्प्रभोः।
ससत्कारं च तं चक्री भद्रासनमलम्भयत्।।९।।

अपनी प्रभा से सूर्य की प्रभा के समूह को तिरस्कृत करते हुये चक्रवर्ती ने वहाँ जाकर अतिशय कान्तिसम्पन्न प्रभास नामक व्यन्तर देवों के स्वामी को जीता।।७।।

अथानन्तर उत्तरदिशा को जीतने की इच्छा करने वाला चक्रवर्ती भरत जिनमें अनेक घोड़े हैं - ऐसी सेनाओं को व्याप्त करते हुये निकले।।६।।

सिन्धु नदी के किनारे-किनारे से सेनाओं के द्वारा उस दिशावर्ती राजाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ विभु भरत धीरे-धीरे विजयार्द्ध-पर्वत के समीप पहुँचे।।७।।

विजयार्द्ध-पर्वत के स्वामी मागध जाति का विजयार्द्ध देव भरत को वहाँ ठहरा हुआ जान कर विधिपूर्वक उसके दर्शनार्थ आया।।८।।

उस देव ने अत्यन्त शीघ्रता से चक्रवर्ती के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया। चक्रवर्ती ने भी उसे आदर-सत्कारपूर्वक उत्तमासन पर बिठाया।।९।।

५ = ३०/१२३ ६ = ३१/१ ७ = ३१/१३
८ = ३१/३७ ९ = ३१/४०

देव दिग्विजयस्यार्द्धं विभजन्नेष सानुमान्।
विजयार्द्धश्रुतिं धत्ते तात्स्थ्यात् तद्वृढयो वयम्।।१०।।
इति ब्रुवंस्तथोत्थाय सितमातपवारणम्।
प्रकीर्णक युगं दिव्यं ददौ च हरिविष्टरम्।।११।।
ततः प्रतीपमागत्य रूप्याद्रेः पश्चिमां गुहाम्।
निकषा वनमारुध्य बलैरीशो न्यविक्षत।।१२।।
अत्रान्तरे ज्वलन्मौलिप्रभापिञ्जरिताम्बरः।
ददृशे प्रभुणा व्योम्नि गिरेरवतरत् सुरः।।१३।।
सप्रणामं च सम्प्राप्तं तं वीक्ष्य सहसा विभुः।
यथार्हप्रतिपत्त्यास्मा आसनं प्रत्यपादयत्।।१४।।
विद्धिमां विजयार्द्धस्य मर्मज्ञमभृताशनम्।
कृतमालं गिरेरस्य कुटेऽमुष्मिन् कृतालयम्।।१५।।

हे देव ! यह पर्वत दिग्विजय को आधा-आधा विभाजन करता है। इसीलिये इस पर्वत को विजयार्द्ध कहते हैं। इस पर्वत पर रहने के कारण मेरा भी यही नाम रूढ़ हो गया है।।१०।।

इसप्रकार कहते हुये वह देव उठ कर खड़ा हो गया और उसने श्वेत छत्र, दो चंवर और दिव्य सिंहासन चक्रवर्ती को भेंट किये।।११।।

वहाँ से कुछ पीछे लौट कर भरत विजयार्द्ध पर्वत के पश्चिम गुहा के निकटवर्ती वन को अपनी सेना से घेर कर ठहरा।।१२।।

इसी के मध्य में भरत ने देदीप्यमान मुकुट की कान्ति से आकाश को पीला करने वाले - ऐसे देव को पर्वत से उतरते देखा।।१३।।

उस देव ने आते ही भरत को प्रणाम किया। देव को अकस्मात् अपने सामने देख कर चक्रवर्ती ने उसे अनुकूल आसन दिया।।१४।।

इसी पर्वत के शिखर पर रहने वाला और विजयार्द्ध पर्वत के मर्म को जानने वाला मैं कृतमाल नामक देव हूँ - ऐसा आप जानिये।।१५।।

१० = ३१/४३ ११ = ३१/४५-४९ १२ = ३१/५५
१३ = ३१/९० १४ = ३१/९५ १५ = ३१/११०

इति प्रशान्तमोजस्वि वचः सम्भाष्य सादरम्।
सोऽमरो विततारास्मै भूषणानि चतुर्दश।।१६।।
तं रूप्याद्रिगुहाद्वारप्रवेशोपायशंसिनम्।
प्रविसर्ज्य स्वसेनान्यं प्राहिणोत् प्रभुरग्रतः।।१७।।
त्वमुद्घाट्य गुहाद्वारं यावन्निर्वाति सा गुहा।
तावत् पाश्चात्यखण्डस्य निर्जयाय कुरूद्यमम्।।१८।।
इति चक्रधरादेशं मूर्ध्ना माल्यमिवोद्वहन्।
कृतमालामरोदिष्टकृत्स्नोपायप्रयोगवित्।।१९।।
कृती कतिपयैरेष तुरङ्गैः सपरिच्छदैः।
प्रतस्थे वाजिरत्नेन दण्डपाणिश्चमूपतिः।।२०।।
जयताच्चक्रवर्तीति सोऽश्वरत्नमधिष्ठितः।

इसप्रकार प्रशान्त और ओजस्वी वचनों को आदर सहित कह कर उस देव ने भरत को चौदह आभूषण प्रदान किये।।१६।।

भरत ने विजयार्द्ध पर्वत की गुफा में प्रवेश करने का उपाय बताने वाले देव को विदा किया और अपने सेनापति को गुफा का द्वार खोलने के लिये भेजा।।१७।।

उसने सेनापति को आदेश दिया - तुम गुफा का द्वार खोल कर जब तक गुफा शान्त नहीं हो जाती तबतक पश्चिम खण्ड को जीतने का प्रयत्न करो।।१८।।

इसप्रकार चक्रवर्ती के आदेश को माला के समान गले में धारण कर कृतमाल देव के द्वारा बताये हुये उपायों के प्रयोग को जानने वाला चतुर सेनापति कुछ घोड़े और सैनिकों को लेकर तथा साथ में दण्डरत्न को हाथ में लेकर अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर चला।।१९,२०।।

चक्रवर्ती की जय हो - ऐसा कहते हुये अश्व पर बैठे हुये सेनापति ने दण्डरत्न से गुफा के द्वार का ताड़न किया। उस ताड़न से भयंकर शब्द हुआ।।२१।।

१६ = ३१/११४ १७ = ३१/११६ १८ = ३१/११७
१९ = ३१/११८ २० = ३१/११९ २१ = ३१/१२२

दण्डेन ताडयामास गुहाद्वारं स्फुरद्ध्वनिः।।२१।।

उद्घाटितकवाटेन द्वारेणोष्माणमुद्वमन्।
रराज राजतः शैलो लब्धोच्छ्वासश्चिरादिव।।२२।।

गुहोष्मणा स नाश्लेषि विदूरमपवाहितः।
तरश्विनाश्वरत्नेन देवताभिश्च रक्षितः।।२३।।

म्लेच्छखण्डमखण्डाज्ञः परिक्रामन् प्रदक्षिणम्।
तत्र तत्र विभोराज्ञां म्लेच्छराजैरजिग्रहत्।।२४।।

म्लेच्छराजबलैः सार्द्धं सेनानीर्न्यवृतत् पुनः।
षड्भिर्मासैः प्रशान्तोष्म सोऽध्यवासीद् गुहामुखम्।।२५।।

तत्रासीनश्च संशोध्य बह्वपायं गुहोहरम्।
कृतारक्षाविधिः सम्यक् प्रत्यायाच्छिबिरं प्रभोः।।२६।

द्वार के खुलते ही द्वार से गरमी निकलने लगी। जैसे वह विजयार्द्ध पर्वत ने बहुत दिनों बाद उच्छ्वास लिया हो।।२२।।

वेगशाली अश्वरत्न सेनापति को बहुत दूर तक भगा कर लाया और देवों ने रक्षा की। इसीलिये उसे गुफा की गरमी स्पर्श न कर सकी।।२३।।

चक्रवर्ती की आज्ञा को अखण्ड रूप से धारण करने वाले सेनापति ने प्रदक्षिणा के रूप से म्लेच्छखण्ड में परिभ्रमण किया। वह जगह-जगह म्लेच्छ राजाओं से चक्रवर्ती की आज्ञा मनवाता था।।२४।।

म्लेच्छ राजाओं की सेना के साथ सेनापति पुनः लौट आया। वह उस गुफा के पास छह माह में आ पहुँचा तबतक उस गुफा की गरमी शान्त हो गयी थी।।२५।।

वहाँ रुक कर उसने अनेक-अनेक अपायों को उत्पन्न करने वाला भाग साफ कराया। उसकी अच्छी तरह से रक्षा करके वह चक्रवर्ती के शिबिर में पुनः आ गया।।२६।।

२२ = ३१/१२५ २३ = ३१/१२७ २४ = ३१/१३४
२५ = ३१/१४३,१४६ २६ = ३१/१४७

दूरानतचलन्मौलिसंदष्टकरकुड्मलः।
प्रणनाम प्रभुं सभ्यैर्वीक्ष्यमाणः सविस्मितैः।।२७।।

अथान्येद्युरुपारूढसम्भ्रमैर्बलनायकैः।
रेजे निर्यन्प्रयाणाय सम्राट् शक्र इवामरैः।।२८।।

तमिस्त्रेति गुहा यासौ गिरिव्याससमायतिः।
तामालोक्य बलं जिष्णोर्दूरादासीत्स साध्वसम्।।२९।।

चक्रिणा ज्ञापितो भूयः सेनानीः सपुरोहितः।
तत्तमोनिर्गमोपाये प्रयत्नमकरोत्ततः।।३०।।

काकिणीमणिरत्नाभ्यां प्रतियोजनमालिखत्।
गुहाभित्तिद्वये सूर्यसोमयोर्मण्डलद्वयम्।।३१।।

तत्प्रकाशकृतोद्योतं सज्योत्स्नातमसन्निधिम्।

जिसे सभा के लोग आश्चर्य से देख रहे थे - ऐसे सेनापति ने चक्रवर्ती भरत को दूर से ही प्रणत हुये अपने चंचल मुकुट पर हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।।२७।।

अथानन्तर जिन्हें अत्यन्त शीघ्रता है और जो सभी प्रकार से तैयार हैं - ऐसे बलनायकों और अपनी सेना से घिरा हुआ चक्रवर्ती ऐसा लग रहा था जैसे स्वर्ग का इन्द्र ही हो।।२८।।

वह तमिस्त्रा नामक गुफा थी। उसका व्यास पर्वत के समान ही था। उसे देख कर चक्रवर्ती की सेना दूर से ही डर गयी।।२९।।

चक्रवर्ती के द्वारा आज्ञा को प्राप्त करके सेनापति ने पुरोहित के साथ आगे बढ़ कर उस अन्धकार को दूर करने का प्रयत्न किया।।३०।।

उन्होंने गुफा के दोनों ओर की दीवारों पर काकिणी और चूड़ामणि रत्न से एक-एक योजन की दूरी पर सूर्य और चन्द्रमण्डल लिख दिया।।३१।।

२७ = ३१/१५१ २८ = ३२/१,३ २९ = ३२/६,१३
३० = ३२/१४ ३१ = ३२/१५ ३२ = ३२/१६

गुहामध्यमपध्वान्तं व्यगाहत ततो बलम्।।३२।।
यत्रोन्मग्नजला सिन्धुर्निमग्नजलया समम्।
प्रविष्टा तिर्यगुद्देशं तं प्राप बलमीशितुः।।३३।।
नद्योरुत्तरणोपायः को नु स्यादिति तर्कयन्।
द्रुतमाह्वापयामास तत्रस्थः स्थपतिं पतिः।।३४।।
सारदारुभिरुत्तम्भ्य स्तम्भानन्तर्जलस्थितान्।
स्थपतिः स्थापयामास तेषामुपरि सङ्क्रमम्।।३५।।
नायकैः सममन्येद्युः प्रभुर्गजघटावृतः।
महापथेन तेनैव जलदुर्गं व्यलङ्घयत्।।३६।।
ततः कतिपयैरेव प्रयाणैरतिवाहितैः।
गिरिदुर्गं विलङ्घ्योदग्गुहाद्वारमवासदत्।।३७।।

उन मण्डलों के द्वारा किये गये प्रकाश के कारण जिसका अन्धेरा दूर हो गया है - ऐसी उस गुफा में सेना ने प्रवेश किया। उसमें चाँदनी और धूप दोनों ही प्राप्त हो रही थी।।३२।।

जहाँ पर उन्मग्नजला और निमग्नजला ये दोनों नदियाँ दीवारों के कुण्डों से निकल कर सिन्धु नदी में प्रवेश करती हैं, उस स्थान पर सेना पहुँच गयी।।३३।।

इन नदियों को पार करने का उपाय क्या है ? ऐसा विचार करते हुये चक्रवर्ती ने स्थपति (सिलावट) के स्वामी को तत्काल बुलवाया।।३४।।

उसने मजबूत लकड़ियों से जल में खम्बे खड़े करके उन पर पूल बना दिया।।३५।।

दूसरे दिन हाथियों के समूह से घिरे हुये भरत ने अनेक राजाओं के साथ उसी महापथ से मार्ग की यात्रा पूर्ण की।।३६।।

अनेक पड़ावों को पार करके वे पर्वतरूपी दुर्ग को उल्लंघन करके गुफा के उत्तरी द्वार पर जा पहुँचे।।३७।।

३३ = ३२/२१ ३४ = ३२/२४ ३५ = ३२/२९
३६ = ३२/३२ ३७ = ३२/३३

निरर्गलीकृतं द्वारं पौरस्त्यैरिभसाधनैः।
व्यतीत्य प्रभुरस्याद्रेरध्युवास वनावनिम्।।३८।।
पूर्ववत्पश्चिमे खण्डे बलाग्रण्या प्रसाधिते।
विजेतुं मध्यमं खण्डं साधनैः प्रभुरुद्ययौ।।३९।।
तावच्च परचक्रेण स्वचक्रस्य पराभवम्।
चिलातावर्त्तनामानौ प्रभू शुश्रुवतुः किल।।४०।।
कृतोच्चविग्रहारम्भौ संरम्भं प्रतिपद्य तौ।
देवतानुस्मृतिं सद्यः चक्रतुः कृतपूजनौ।।४१।।
ततस्ते जलदाकारधारिणो घनगर्जिताः।
परितो वृष्टिमातेनुः सानिलामनिलाशनाः।।४२।।
छत्ररत्नमुपर्यासीच्चर्मरत्नमधोऽभवत्।
ताभ्यामावेष्ट्य तद्बुद्धं बलं स्यूतमिवाभितः।।४३।।

जो गजसेना आगे चल रही थी, उसके द्वारा उत्तरी द्वार उघाड़ा गया। उसे लांघ कर चक्रवर्ती ने विजयार्द्ध पर्वतस्थ वनभूमि में निवास किया।।३८।।

सेनापति ने पूर्ववत् यहाँ भी म्लेच्छ राजाओं को जीता तब चक्रवर्ती ने अपनी सेना के द्वारा मध्यम म्लेच्छखण्ड जीतने का उद्यम किया।।३९।।

चिलात और आवर्त्त नामक दो म्लेच्छ राजाओं ने यह सुना कि शत्रुसेना के द्वारा हमारा स्वचक्र पराभूत हो रहा है।।४०।।

उन्होंने क्रोधित होकर महायुद्ध प्रारम्भ किया। उन दोनों ने शत्रुसेना को जीतने के लिये देवताओं का स्मरण किया।।४१।।

उनके द्वारा स्मरण किये जाते ही बादलों का आकार धारण कर नागमुख देव घोर गर्जना करते हुये झंझावायु के साथ-साथ चारों ओर जलवृष्टि करने लगे।।४२।।

तब भरत की सेना के ऊपर छत्ररत्न और नीचे चर्मरत्न था। उन दोनों रत्नों के द्वारा वेष्टित होकर वह सेना ऐसी लग रही थी जैसे चारों ओर से सी गयी हो।।४३।।

३८ = ३२/३४ ३९ = ३२/३९ ४० = ३२/४६
४१ = ३२/४९,५७ ४२ = ३२/५८ ४३ = ३२/६१

मध्ये रत्नद्वयस्यास्य स्थितमासप्तमाहिनात्।
जलप्लवे बलं भर्त्तुर्व्यक्तमण्डायितं तदा।।४४।।
ततश्चक्रधरादिष्टा गणबद्धामरास्तदा।
नागानुत्सारयामासुरारुष्टा हुङ्कृतैः क्षणात्।।४५।।
बलवान् कुरुराजोऽपि मुक्तसिंहप्रगर्जितः।
दिव्यास्त्रैरजयन्नागान् रथं दिव्यमधिष्ठितः।।४६।।
ततो निववृते जित्वा नागान्मेघमुखानसौ।
कुमारो रणसंरम्भात् प्राप्तमेघस्वरश्रुतिः।।४७।।
ततो दृष्टापदानोऽयं तुष्टुवे चक्रिणा मुहुः।
नियोजितश्च सत्कृत्य वीरो वीराग्रणीपदे।।४८।।
विध्वस्ते पन्नागानीके विबलौ म्लेच्छनायकौ।

उस जलप्रवाह में भरत की सेना रत्नों के अन्दर सात दिनों तक रही। उससमय वह ठीक अण्डे के समान जान पड़ती थी।।४४।।

तदनन्तर चक्रवर्ती की आज्ञा को पाकर गणबद्ध जाति के देवों ने क्रोधित होकर अपने हुंकार के द्वारा नागमुख देवों को क्षणभर में हटा दिया।।४५।।

बलवान कुरुराजा (जयकुमार) ने भी दिव्य रथ पर बैठ कर दिव्यशस्त्रों के द्वारा सिंहगर्जना करते हुये नागमुख देवों को जीता।।४६।।

नागमुख और मेघमुख देवों को जीत कर तथा मेघेश्वर नाम को प्राप्त करके जयकुमार वापिस लौट आया।।४७।।

उसके इस पराक्रम को देख कर चक्रवर्ती ने भी उसकी प्रशंसा की और उस वीर का सत्कार कर चक्रवर्ती ने उसे मुख्य शूरवीर के पद पर नियुक्त किया।।४८।।

नागमुख देव की सेना विध्वस्त हो जाने पर दोनों म्लेच्छनायक बलहीन हो गये। भय से भ्रान्त होकर वे चक्रवर्ती के समीप आकर प्रणाम करने लगे।।४९।।

४४ = ३२/६२	४५ = ३२/६७	४६ = ३२/६८
४७ = ३२/७१	४८ = ३२/७४	४९ = ३२/७६

चक्रिणश्चरणावेत्य भयभ्रान्तौ प्रणेमतुः।।४९।।
निस्सपत्नां महीमेनां कुर्वन्नर्वाङ् निधीश्वरः।
सिन्धु प्रपातमासीदन्सिन्धुदेव्या न्यषेचि सः।।७०।।
हिमाचल मनुप्राप्तस्तत्तटानि जयं जयन्।
कैश्चित्प्रयाणकैः प्राप्रत् हिमवत्कूटसन्निधिम्।।७१।।
स राज्यमकरोच्चापं वज्रकाण्डमयत्नतः।
तत्रामोघं शरं दिव्यं समधत्तोर्ध्वगामिनम्।।७२।।
स शरो दूरमुत्पत्य क्वचिदप्यस्खलद्गतिः।
सम्प्राप्यद्धिमवत्कूटं तद्धेशमाकम्पयन्पतन्।।७३।।
स मागधवदाध्याय ज्ञातचक्रधरागमः।
सम्प्राप्तश्च तमुद्देशं यमध्यास्ते स्म चक्रभृत्।।७४।।
समुच्चरन् जयध्वानमुखरः स सुरैः समम्।
प्रभुं सभाजयामास सोपचारं सुरोत्तमः।।७५।।

इस पृथ्वी को शत्रुरहित करके निधीश्वर ने गमन किया। जब वे सिन्धु प्रपात पर पहुँचे तब सिन्धुदेवी ने उनका अभिषेक किया।।७०।।

हिमाचल पर्वत के समीप पहुँच कर तटवर्ती राजाओं को जीतते हुये भरत कितने ही पड़ाव चल कर हिमवत् कूट के पास जा पहुँचे।।७१।।

वहाँ भरत ने प्रयत्न के बिना ही वज्रकाण्ड धनुष को डोरीसहित किया और अमोघ नामक दिव्य बाण उस धनुष पर रखा।।७२।।

अस्खलित गति वाला वह बाण ऊपर की ओर दूर तक जाकर हिमवत् कूट पर रहने वाले देव के भवन में पड़ कर उस भवन को कम्पित करने लगा।।७३।।

मागधदेव के समान चक्रवर्ती के आगमन को जान कर वह भी उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ चक्रवर्ती विराजमान थे।।७४।।

इसप्रकार जय-जय शब्द का उच्चारण करने से जो वाचाल हो रहा है - ऐसे उस उत्तम देव ने अपने साथ अनेक देवों को लेकर सब तरह के

७० = ३२/७८,७९	७१ = ३२/८४	७२ = ३२/८६,८७
७३ = ३२/८९	७४ = ३२/९०,९१	७५ = ३२/९७

स्वभुक्तिक्षेत्र सीमानं सोऽभिनन्द्य हिमाचलम्।
प्रत्यावृतत् प्रभुर्द्रष्टुं वृषभाद्रिं कुतूहलात्।।७६।।
असङ्ख्यकल्पकोटीषु येऽतिक्रान्ता धराभुजः।
तेषां नामभिराकीर्णं तं पश्यन् स सिसिष्मये।।७७।।
स्वयं कस्यचिदेकस्य निरस्यन्नामशासनम्।
अथ तत्र शिलापट्टे व्यलिखत् स यशोधनः।।७८।।
भूयः प्रोत्साहितो देवैर्जयोद्योगमनूनयन्।
गङ्गापातमभीयाय व्याहूत इव तत्स्वनैः।।७९।।
पतद्गङ्गाजलावर्तपरिवर्द्धितकौतुकः।
प्रत्याग्राहि स तत्पाते गङ्गादेव्या धृतार्घया।।८०।।
कृत्स्नामिति प्रसाध्यैनामुत्तरां भरतावनिम्।

उपचारों से भरत की सेवा प्रारम्भ की। अपने द्धारा उपभोग करने योग्य क्षेत्रसीमा स्वरूप हिमवान् पर्वत की प्रशंसा करके भरत महाराज कुतूहलवशात् वृषभाचल पर्वत को देखने आये।।७५,७६।।

असंख्यात करोड़ कल्पों में जितने चक्रवर्ती हुये हैं, उन सबके नामों से भरे हुये वृषभाचल पर्वत को देख कर भरत चक्रवर्ती अत्यन्त विस्मित हुआ।।७७।।

उसने किसी चक्रवर्ती के नाम की प्रशस्ति को स्वयं अपने हाथों से मिटाया, उस शिलापट्ट पर उस यशोधन ने अपनी प्रशस्ति लिखी।।७८।।

जिसे देवों ने पुनः उत्साहित किया है - ऐसा चक्रवर्ती भरत विजयोद्योग को कम न करते हुये गंगापात के सम्मुख इसप्रकार जा पहुँचा जैसे उस गंगा के शब्दों के द्धारा वह बुलाया गया हो।।७९।।

पड़ते हुये गंगाजल की भौरों के कारण जिसका कौतूहल बढ़ रहा है - ऐसे भरत का गंगापात के स्थान पर अर्घ्य धारण करने वाली गंगादेवी ने आकर आदर किया।।८०।।

७६ = ३२/१३०	७७ = ३२/१४२	७८ = ३२/१४४,१४५
७९ = ३२/१६३	८० = ३२/१६५	८१ = ३२/१७५

प्रत्यासीददथो जिष्णुर्विजयार्द्धचलस्थलीः।।८१।।
तत्रावासितसैन्यं च सेनान्यं प्रभुरादिशत्।
अपावृत गुहाद्धारः प्राच्यखण्डं जयेत्यरम्।।८२।।
यावदभ्येतिसेनानी म्लेच्छराजजयोद्यमात्।
तावत्प्रभोः किलातीयुर्मासाः षट् सुखसङ्गिनः।।८३।।
नमिश्च विनमिश्चैव विद्याधरधराधिपौ।
स्वसारधनसामग्र्या विभुं प्रष्टुमुपेयतुः।।८४।।
स्वसारं च नमेर्धन्यां सुभद्रां नामकन्यकाम्।
उदुवाह स लक्ष्मीवान् कल्याणैः खचरोचितैः।।८५।।
तावान्निर्जितनिःशेषम्लेच्छराजबलो बलैः।
जयलक्ष्मीं पुरस्कृत्य सेनानीः प्रभुमैक्षत।।८६।।

इसप्रकार उत्तर भरतक्षेत्र की अवनी को वशीभूत करके विजयी भरत महाराज पुनः विजयार्द्ध की तलहटी में आ पहुँचे।।८१।।

वहाँ पर अपनी सेना को रुका कर उन्होंने सेनापति के लिये आज्ञा दी कि गुफा का द्धार उद्घाटित करके शीघ्र पूर्वखण्ड की विजय प्राप्त करो।।८२।।

जबतक वह म्लेच्छ राजाओं को जीत कर पुनः आ गया, तबतक सुखपूर्वक रहते हुये महाराज भरत के छह माह वहीं पर व्यतीत हो गये।।८३।।

नमि और विनमि दोनों विद्याधर राजागण अपने मुख्य धन की सामग्री के साथ भरत के दर्शन करने के लिये समीप आ गये।।८४।।

श्रीमान भरत ने राजा नमि की बहन सुभद्रा नामक उत्तम कन्या के साथ विद्याधरों के योग्य मंगलाचारपूर्वक विवाह कर लिया।।८५।।

जिसने अपनी सेना के द्धारा समस्त म्लेच्छ राजाओं की सेना को जीत लिया है - ऐसे सेनापति ने जयलक्ष्मी को आगे करके उसीसमय भरत के दर्शन किये।।८६।।

८२ = ३२/१७६	८३ = ३२/१७७	८४ = ३२/१८०
८५ = ३२/१८३	८६ = ३२/१८५	

तां काण्डकप्रपाताख्यां प्रागेवोद्घाटितां गुहाम्।
प्रविवेश बलं जिष्णोश्चक्ररत्नपुरोगमाम्।।६७।।
गङ्गापगोभयप्रान्तमहावीथीद्वयेन सा।
व्यतीयाय गुहां सेना कृतद्वारां चमूभृता।।६८।।
नाट्यमालामरस्तत्र रत्नार्घैः प्रभुमर्घयन्।
प्रत्यगृह्णाद्गुहाद्वारि पूर्णकुम्भादिमङ्गलैः।।६९।।
अनुगङ्गातटं देशान् विलङ्घ्य स सरिद्गिरीन्।
कैलासशैलसान्निध्यं प्रापतच्चक्रिणो बलम्।।७०।।
कैलासाचलमभ्यर्णमथालोक्य रथाङ्गभृत्।
निवेश्य निकटे सैन्यं प्रययौ जिनमर्चितुम्।।७१।।
ततोऽधिरुह्य तं शैलं दूरादालोकयन् जिनम्।

जिसके आगे चक्ररत्न चल रहा है - ऐसी भरत की सेना ने पहले से उद्घाटित की गयी काण्डकप्रपात नामक गुफा में प्रवेश किया।।६७।।

उस सेना ने गंगा नदी के दोनों तटों पर की गयी दो बड़ी-बड़ी गलियों में से जिसका द्वार पूर्व में ही सेनापति के द्वारा खोल दिया गया था - ऐसी उस गुफा को पार किया।।६८।।

वहाँ पर नाट्यमाल नामक देव ने दक्षिण गुफा के द्वार पर पूर्ण कलशादि मंगलद्रव्यों को रख कर रत्नों के अर्घ्य द्वारा चक्रवर्ती की पूजा की।।६९।।

चक्रवर्ती की वह सेना गंगा नदी के किनारे-किनारे अनेक नदियों और पर्वतों को लांघती हुई कैलास पर्वत के निकट जा पहुँची।।७०।।

कैलास पर्वत को निकट में देख कर चक्रवर्ती ने सेना को वहीं ठहरा दिया और उसने स्वयं जिनार्चना के लिये प्रस्थान किया।।७१।।

उस पर्वत पर चढ़ कर दूर से ही भगवान को देख कर वह भरत चक्रवर्ती आनन्द से भर गये और उन्होंने अपने दोनों घुटनों को टेक कर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया।।७२।।

६७ = ३२/१८८ ६८ = ३२/१८९ ६९ = ३२/१९१
७० = ३३/११ ७१ = ३३/१२ ७२ = ३३/७२,१२३

प्रह्वोऽभूत्स महीस्पृष्ट जानुरानन्दनिर्भरः।।७२।।
ततो विधिवदानर्च जलगन्धसगक्षतैः।
चरूप्रदीपधूपैश्च सफलैः स फलेप्सया।।७३।।
अथावरुह्य कैलासादद्रीन्द्रादिव देवराट्।
अयोध्यां प्रापदाबद्धतोरणां चित्रकेतनाम्।।७४।।
नातिदूरे निविष्टस्य प्रवेशसमये प्रभोः।
चक्रमस्तारि चक्रं च नाक्रंस्त पुरगोपुरम्।।७५।।
सेनानी प्रमुखास्तावत् प्रभेव तन्न्यवेदयन्।
तद्वार्तार्कर्णनाच्चक्री किमप्यासीत्सविस्मयः।।७६।।
नास्ति चक्रस्य विश्रान्तिः सावशेषे दिशां जये।
जितजेतव्यपक्षस्य न नम्रा भ्रातरस्तव।।७७।।

तदनन्तर उसने मोक्षफल की इच्छा से विधिवत् जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप और फल के द्वारा अर्चना की।।७३।।

जिसप्रकार इन्द्र सुमेरु पर्वत से उतरता है, उसीप्रकार भरत चक्रवर्ती कैलास पर्वत से नीचे आया। फिर वह जिसमें अनेक तोरण बन्धे हुये हैं और अनेक प्रकार की ध्वजा फहरा रही हैं - ऐसी अयोध्या की निकटता को प्राप्त हुआ।।७४।।

भरत चक्रवर्ती नगर के निकट ही ठहरे हुये थे। वहाँ से नगरप्रवेश के समय जिस चक्र ने समस्त शत्रुसमूह को नष्ट कर दिया था वह चक्र नगर के गोपुर का उल्लंघन नहीं कर सका अर्थात् वह द्वार पर ही रुक गया।।७५।।

सेनापति आदि प्रमुखों ने यह बात चक्रवर्ती से कही। उस वार्त्ता को सुन कर चक्रवर्ती कुछ विस्मय से युक्त हुये।।७६।।

जबतक दिग्विजय करना अवशिष्ट रहता है तबतक चक्ररत्न विश्राम नहीं लेता है। यद्यपि आपने समस्त विपक्षियों को जीत लिया है फिर भी आपके भाई आपके प्रति नम्र नहीं हैं।।७७।।

७३ = ३३/१२५ ७४ = ३४/१,३ ७५ = ३४/५
७६ = ३४/१३ ७७ = ३४/३६,४१

इति शासति शास्त्रज्ञे पुरोधसि सुमेधसि।
यौवनोन्मादजस्तेषां भटवादोऽस्ति दुर्मदः।।७८।।

आस्तां भुजबली तावद्यत्नसाध्यो महाबलः।
शेषैरेव परिक्षिष्ये भ्रातृभिस्तद्विजिह्मताम्।।७९।।

इति निर्द्धार्य कार्यज्ञान् कार्ययुक्तौ विविक्तधीः।
प्राहिणोत्स निसृष्टार्थान् दूताननुजसन्निधिम्।।८०।।

गत्वा च ते यथोद्देशं दृष्ट्वा तांस्तान्यथोचितम्।
जगुः सन्देशमीशस्य तेभ्यो दूता यथास्थितम्।।८१।।

दूतसात्कृतसन्मानाः प्रभुसात्कृतवीचिकाः।
गुरुसात्कृत्य तत्कार्यं प्रापुस्ते गुरुसन्निधिम्।।८२।।

इसप्रकार शास्त्रज्ञ और पुरोहित के कहने पर जिन्हें यौवन के उन्माद से योद्धा होने का दुर्निवार वायुरोग हो रहा है.....।।७८।।

इससमय जो प्रयत्न के द्वारा भी वश में नहीं किया जा सकता है - ऐसा बाहुबली तो दूर ही रहे सर्वप्रथम शेष भाइयों के द्वारा ही उनकी कुटिलता की परीक्षा करूँगा।।७९।।

इसप्रकार कार्य का निर्धारण करके कार्य करने में जिसकी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती - ऐसे चक्रवर्ती ने कार्य के जानकार निसृष्टार्थ दूतों को अपने भाइयों के पास भेजा।।८०।।

उन दूतों ने चक्रवर्ती की आज्ञानुसार जाकर उनके यथोचितरूप से दर्शन किये तथा उन्हें चक्रवर्ती का सन्देश यथावत् सुनाया।।८१।।

इसप्रकार जिन्होंने दूतों का समुचित सम्मान कर भरत के लिये योग्य समाचार दिये है - ऐसे वे राजकुमार पूज्य पिता के द्वारा दिया गया कार्य उन्हीं को सौंपने के लिये भगवान के समीप पहुँचे।।८२।।

७८ = ३४/५७,६२ ७९ = ३४/८८ ८० = ३४/८९
८१ = ३४/९० ८२ = ३४/९७

भुक्त्वापि सुचिरं कालं यैर्न तृप्तिः क्लमः परम्।
विषयैस्तैरलं भुक्तैर्विषमिश्रैरिवाशनैः।।८३।।

इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्यं परं निर्वेदमागताः।
स्वसाच्चक्रुस्तपोलक्ष्मीं राज्यलक्ष्म्यामनुत्सुकाः।।८४।।

अथचक्रधरस्यासीत् किञ्चिच्चिन्ताकुलं मनः।
दोर्बलिन्यनुनेतव्ये यूनि दोर्दर्पशालिनि।।८५।।

युवा तु दोर्बली प्राज्ञः क्रमज्ञः प्रश्रयी पटुः।
कथं नाम गतोऽस्मासु विक्रियां सुजनोऽपि सन्।।८६।।

प्रायो व्याख्यात एवास्य भावः शेषैः कुमारकैः।
मदाज्ञाविमुखैस्त्यक्त राज्यभोगैर्वनोन्मुखैः।।८७।।

चिरकाल तक भोगने पर भी जिनसे तृप्ति नहीं होती, प्रत्युत अतिशय परिश्रम ही होता है - ऐसे विषमिश्रित भोजन के समान इन विषयों का सेवन करना व्यर्थ है।।८३।।

इसप्रकार प्रभु के वचनों को सुन कर वे राजकुमार श्रेष्ठ निर्वेदभाव को प्राप्त हुये। वे राज्यलक्ष्मी से अनुत्सुक होकर तपोलक्ष्मी को स्ववश करने लगे।।८४।।

तदनन्तर अपनी भुजाओं के गर्व से शोभायमान युवा बाहुबली को वश करने के लिये चक्रवर्ती का मन कुछ चिन्ता से व्याकुल हुआ।।८५।।

बाहुबली युवा है, बुद्धिमान है, परिपाटी को जानने वाला है, विनयी है, चतुर है और सज्जन है - ऐसा होकर भी वह मेरे विषय में विकार को कैसे प्राप्त हो गया ?।।८६।।

जो मेरी आज्ञा से विमुख हैं, जिन्होंने राज्य के उपभोग का त्याग कर दिया है, जो वन में जाने के लिये तत्पर हुये हैं - ऐसे समस्त राजकुमारों ने यह अभिप्राय प्रायः प्रकट कर ही दिया है।।८७।।

८३ = ३३/१२५ ८४ = ३४/१,३ ८५ = ३४/५
८६ = ३४/१३ ८७ = ३४/३६,४१

भूयोऽप्यनुनयैरस्य परीक्षिष्यामहे मतम्।
तथाप्यप्रणते तस्मिन्विधेयं चिन्त्यमुत्तरम्।।८८।।
इति निश्चित्य कार्यज्ञं दूतं मन्त्रविशारदम्।
तत्प्रान्तं प्रहिणोच्चक्री निसृष्टार्थतयान्वितम्।।८९।।
क्रमेण देशान् सिन्धूंश्च देशसन्धींश्च सोऽतियन्।
प्रापत्सङ्ख्यातरात्रैस्तत् पुरं पोदनसाह्वयम्।।९०।।
स निवेदितवृत्तान्तो महादौवारपालकैः।
नृपं नृपासनासीनमुपासीदद्धचोहरः।।९१।।
अथोपाचक्रमे वक्तुं वचो हारि वचोहरः।
ऐक्ष्वाकः प्रथमो राज्ञां भरतो भवदग्रजः।।९२।।
त्वामायुष्मन् जगन्मान्यो मानयन् कुशलाशिषा।
समादिशन्ति चक्राङ्कां प्रथयन्नधिराजताम्।।९३।।

ऐसा होते हुये भी पहले हम अनुनययुक्त वचनों के द्धारा बाहुबली की परीक्षा करेंगे। इतना करने पर भी वह नम्रीभूत नहीं होता है तो फिर आगे क्या किया जाना चाहिये? इसका विचार करेंगे।।८८।।

ऐसा निश्चित कर चक्रवर्ती ने कार्य का ज्ञाता, मन्त्रविशारद तथा निसृष्टार्थता से समन्वित दूत को बाहुबली के पास भेजा।।८९।।

अनुक्रम से अनेक देश, नदी और देशों की सीमाओं को लाँघता हुआ वह दूत संख्यात रात्रियों के बाद पोदनपुर नगर जा पहुँचा।।९०।।

जिसने प्रमुख द्धारपालों के द्धारा अपने वृत्तान्त को निवेदित कर दिया है - ऐसा वह दूत राजसिंहासन पर आसीन हुये बाहुबली के समीप जा पहुँचा।।९१।।

तदनन्तर दूत मनोहर वचनों के द्धारा अपना अभिप्राय कहने लगा - इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुये प्रथम राजा भरत आपके बड़े भाई हैं।।९२।।

८८ = ३५/१६ ८९ = ३५/२० ९० = ३५/२७
९१ = ३५/४४ ९२ = ३५/६२,६७ ९३ = ३५/८०

मदीयं राज्यमाक्रान्तनिखिलद्धीपसागरम्।
राजतेऽस्मत्प्रियभ्रात्रा न बाहुबलिना विना।।९४।।
नाधिराज्यं विभात्यस्य प्रणामविमुखे त्वयि।
तदेत्य द्रुतमायुष्मन् पूरयास्य मनोरथम्।।९५।।
इति तद्धचनस्यान्ते कृतमन्दस्मितो युवा।
धीरं वचो गभीरार्थमाचचक्षे विचक्षणः।।९६।।
दूत तातवितीर्णां नो महीमेनां कुलोचिताम्।
भ्रातृजायामिवादित्सोर्नास्य लज्जा भवत्पतेः।।९७।।
ततः समरसंघट्टे यद्धा तद्धास्तु नौ द्धयोः।

हे आयुष्मान् ! जगन्मान्य महाराज भरत अपने चक्रवर्तीपने को प्रसिद्ध करते हुये कल्याणकारी आशीर्वाद से आपका सन्मान कर आज्ञा दे रहे हैं।।९३।।

समस्त द्धीप और समुद्धों तक हमारा राज्य फैला हुआ है, परन्तु वह राज्य हमारे प्रिय भाई बाहुबली के बिना शोभा को प्राप्त नहीं हो रहा है।।९४।।

बाहुबली ने पिता द्वारा दी गयी कुल की पृथ्वी को भाई की स्त्री के समान माना है

आपके द्धारा प्रणाम करने से विमुख होने पर उनका चक्रवर्तीपना शोभा को प्राप्त नहीं होता। अतः हे आयुष्मान् कुमार ! आप शीघ्र ही चल कर इस मनोरथ को पूर्ण कर दीजिये।।९५।।

इसप्रकार दूत के द्धारा कहने पर चतुर और युवा कुमार बाहुबली मन्द स्मितपूर्वक गम्भीर अर्थ से परिपूर्ण धीर वचनों को कहने लगे।।९६।।

हे दूत ! पिता के द्धारा प्रदान की गयी यह हमारी कुल की पृथ्वी भरत के लिये भाई की स्त्री के समान है। अब वह उसे ही प्राप्त करना चाहता है। क्या तेरे स्वामी को ऐसा करते हुये लज्जा नहीं आती है ?।।९७।।

हे दूत ! तुम हमारा एक वचन निःसन्देह ले जा कि अब हम दोनों का जो कुछ होना होगा, वह समरभूमि में ही होगा।।९८।।

९४ = ३५/८१ ९५ = ३५/८३,८८ ९६ = ३५/८९
९७ = ३५/१३४ ९८ = ३५/१३८

नीरि कमिदमेकं नो वचो हर वचोहर।।९८।।
इत्याविष्कृतमानेन कुमारेण वचोहरः।
द्रुतं विसर्जितोऽगच्छत् पतिं सन्नाहयेत् परम्।।९९।।
(छन्द = मालिनी)
जयकरिघटाबन्धै रुन्धन् दिशो मदविह्वलै-
र्बलपरिवृढैरारूढ श्रीरुदूढपराक्रमः।।
नृपकतिपयैरारादेत्य प्रणम्य दिदृक्षितो।
भुजबलि युवा भेजे सैन्यैर्भुवं समरोचिताम्।।१००।।
इति श्रीपुराण समाम्नाये नवमं पर्व।

इसप्रकार अपने अभिमान को प्रकट करने वाले कुमार बाहुबली ने उस दूत को यह कह कर शीघ्र ही विदा कर दिया कि जा और अपने स्वामी को युद्ध के लिये शीघ्र ही तैयार कर।।९९।।

सेना के प्रमुख लोगों के द्वारा जिसकी शोभा विकसित हो रही है, जो स्वयं विशाल पराक्रम को धारण किये हुये हैं, जिसे कितने ही राजा लोग दूर-दूर से आकर प्रणाम करते हुये देखना चाहते हैं - ऐसा वह युवा बाहुबली मदोन्मत्त विजयी हाथियों की घटाओं से दिशाओं को अवरुद्ध करता हुआ सेना के साथ-साथ समर के योग्य भूमि में जा पहुँचा।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण में नौवाँ पर्व समाप्त हुआ।

बुद्धिमान मनुष्यों का सहज स्वभाव होता है कि वे किसी की बुराई की अपेक्षा अच्छाई पर अधिक दृष्टि रखते हैं।
- आचार्य सुविधिसागर

९९ = ३५/१३९ १०० = ३५/२४९

बाहुबली का वैराग्य

दशम पर्व

(भरत व बाहुबली का वैराग्य)

- भरत और बाहुबली का युद्ध व बाहुबली का वैराग्य
- भरत के सोलह स्वप्न
- भरत का वैराग्य

आचार्यप्रवर श्री जिनसेन जी विरचित

श्रीपुराणम्

दशमं पर्व

अथ दूतवचश्चण्डमरुदाघातघूर्णितः।
प्रचचाल बलाम्भोधिर्जिष्णोरारुध्य रोदसी।।१।।
इत्यभ्यर्णे बले जिष्णोर्बलं भुजबलीशिनः।
जलमब्धेरिवाक्षुभ्यद्धीरध्वान निरुद्धदिक्।।२।।
तावच्च मन्त्रिणो मुख्याः सम्प्रधार्यावदन्निति।
शान्तये नैनयोर्युद्धं ग्रहयोः क्रूरयोरिव।।३।।
चरमगात्रधरावेतौ नानयोः काचन क्षतिः।
क्षयो जनस्य पक्षस्य व्याजेनानेन जृम्भितः।।४।।
जलदृष्टिनियुद्धेषु योऽनयोर्जयमाप्स्यति।

श्रीपुराणम्

दसवाँ अधिकार

तदनन्तर दूत के वचनरूपी तेज वायु के आघात से प्रेरित हुआ चक्रवर्ती का सेनारूपी समुद्र आकाश और पृथ्वी को रोकता हुआ चलने लगा।।१।।

चक्रवर्ती भरत की सेना के निकट पहुँच जाने पर वीरों के शब्दों से दिशाओं को आपूरित करने वाली बाहुबली की सेना सामुद्रिक जल के समान क्षोभ को प्राप्त हुई।।२।।

इतने में ही दोनों पक्ष के प्रमुख मन्त्रीगण विचार करके इसप्रकार कहने लगे कि क्रूरग्रहों के समान इन दोनों का युद्ध शान्ति के लिये नहीं है।।३।।

ये दोनों ही चरम शरीरी हैं। इनकी कुछ भी क्षति नहीं होगी। इन दोनों के युद्ध के बहाने से केवल दोनों पक्ष के लोगों का क्षय होगा।।४।।

१ = ३६/१ २ = ३६/३६ ३ = ३६/३८ ४ = ३६/३९ ५ = ३६/४५

स जयश्रीविलासिन्याः पतिरस्तु स्वयंवृतः।।७।।
दधद्धीरतरां दृष्टिं निर्निमेषामनुद्भटाम्।
दृष्टियुद्धे जयं प्राप प्रसभं भुजविक्रमी।।६।।
सरसीजलमागाढौ जलयुद्धे मदोद्धतौ।
दिग्गजाविव तौ दीर्घैर्व्यात्यु क्षीमासतुर्भुजैः।।७।।
भरतेशः किलात्रापि न यदाप जयं तदा।
बलैर्भुजबलीशस्य भूयोऽप्युद्घोषितो जयः।।८।।
नियुद्धमथ सङ्गीर्य नृसिंहौ सिंहविक्रमौ।
धीरावाविष्कृतस्पर्द्धौ तौ रङ्गमवतेरतुः।।९।।
ज्वलन्मुकुटभाचक्रो हेलयोद्भ्रमितोऽमुना।
लीलामलातचक्रस्य चक्री भेजे क्षणं भ्रमन्।।१०।।

इन दोनों के मध्य जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध हो। इनमें जो विजय प्राप्त करे वही विजयलक्ष्मी के द्वारा स्वयं स्वीकार किया गया पति होवे।।७।।

अत्यन्त धीर और पलकों के संचरण से रहित शान्त दृष्टि को धारण करते हुये बाहुबली ने दृष्टियुद्ध में शीघ्र ही जय प्राप्त कर ली।।६।।

तदनन्तर मदोन्मत्त दिग्गजों के समान अभिमान से उद्धत हुये वे दोनों भाई जलयुद्ध करने हेतु सरोवर के जल में प्रविष्ट होकर अपनी लम्बी भुजाओं से परस्पर में एक-दूसरे पर जल उछालने लगे।।७।।

इस युद्ध में भी भरतेश जय को प्राप्त नहीं कर पाया। तब बाहुबली की सेना ने पुनः जयघोषणा की।।८।।

उसके बाद सिंह के समान पराक्रम के धारी, धीर-वीर तथा परस्पर स्पर्धा करने वाले वे दोनों पुरुषसिंह बाहुयुद्ध की प्रतिज्ञा करके रंगभूमि में उतर गये।।९।।

जिसके मुकुट की दीप्ति का समूह अतिशय दीप्तिमान हो रहा है - ऐसे भरत को बाहुबली ने लीला मात्र में घुमा दिया। उससमय घूमते हुये चक्रवर्ती ने क्षणमात्र में अलातचक्र की लीला धारण कर ली थी।।१०।।

६ = ३६/५१ ७ = ३६/५३ ८ = ३६/५६ ९ = ३६/५७ १० = ३६/५९

क्रोधान्धेन तदा दध्ये कर्त्तुमस्य पराजयम्।
चक्रमुत्कृत्तनिःशेषद्विषच्चक्रं निधीशिना।।११।।
आध्यानमात्रमेत्याराददः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
अवध्यस्यास्य पर्यन्तं तस्थौ मन्दीकृतातपम्।।१२।।
कृतापदान इत्युच्चैः करेण तुलयन्नृपम्।
सोऽवतीर्यां सतो धीरोऽनिकृष्टां भूमिमापिपत्।।१३।।
अभेद्ये मम देहाद्रौ त्वया चक्रं नियोजितम्।
विद्ध्यकिञ्चित्करं वाज्रे शैले वज्रमिवापतत्।।१४।।
मन्यसेऽनन्यभोगीनां नृपश्रियमनश्वरीम्।
प्रेयसीयं तवैवास्तु राज्यश्रीर्या त्वयादृता।।१५।।

उससमय क्रोधान्ध हुये निधिपति भरतेश ने बाहुबली को पराजय करने के लिये समस्त शत्रुओं के समूह को नष्ट करने वाले चक्ररत्न का स्मरण किया।।११।।

स्मरण करते ही वह चक्ररत्न भरत के समीप आया। भरत ने उसे बाहुबली पर चलाया, परन्तु बाहुबली के अवध्य होने से वह उनकी प्रदक्षिणा देकर तेजविहीन होकर उन्हीं के निकट जाकर ठहर गया।।१२।।

आपने बहुत पराक्रम दिखाया, इसप्रकार उच्चस्वर से कह कर धीर बाहुबली ने भरत को हाथों से तोला और तत्पश्चात् उच्चस्थान पर विराजित किया।।१३।।

जो कभी भेद को प्राप्त नहीं हो सकता - ऐसे मेरे शरीररूपी पर्वत पर तुमने चक्र चलाया है। तुम्हारा यह चक्र वज्रमयी पर्वत पर पड़ कर वज्र के समान व्यर्थ हुआ है - ऐसा तुम जानो।।१४।।

इस राज्यलक्ष्मी को तुम अपने द्वारा ही उपभोगनीय और अविनश्वर समझते हो। जिसका आदर आपके द्वारा किया गया है - ऐसी तुम्हारी प्रेयसी के समान राज्यलक्ष्मी आपकी ही हो।।१५।।

११ = ३६/६५ १२ = ३६/६६ १३ = ३६/६८
१४ = ३६/९३ १५ = ३६/९६,९७

विषकण्टकजालीव त्याज्यैषा सर्वथापि नः।
निष्कण्टकां तपोलक्ष्मीं स्वाधीनां कर्त्तुमिच्छताम्।।१६।।
मृष्यतां च तदस्माभिः कृतमागो यदीदृशम्।
प्रच्युतो विनयात् सोऽहं स्वं चापलमदीदृशम्।।१७।।
इत्युच्चरद् गिरामोघो मुखाद् बाहुबलीशितुः।
ध्वनिरब्दादिवातप्तं जिष्णोराह्लादयन्मनः।।१८।।
महाबलिनि निक्षिप्तराज्यर्द्धिः स स्वनन्दने।
दीक्षामुपादधे जैनीं गुरोराराधयन् पदम्।।१९।।
वत्सरानशनस्यान्ते भरतेशेन पूजितः।
स भेजे परमज्योतिः केवलाख्यं यदक्षरम्।।२०।।

हमारे लिये यह राज्यलक्ष्मी अब विषैले काँटों की लता के समान सर्वथा त्याज्य है। अब हम निष्कण्टक तपोलक्ष्मी को अपने स्वाधीन करने की इच्छा करते हैं।।१६।।

मैंने आपके प्रति जो अपराध किये हैं, उसे क्षमा कर दीजिये। मैं जो विनय से च्युत हो गया था, उसे मैं अपनी चपलता ही समझता हूँ।।१७।।

जिसप्रकार मेघगर्जना सन्तप्त मनुष्यों को आनन्दित कर देती है उसीप्रकार महाराज बाहुबली के मुख से निकलती हुई वाणीसमूह ने चक्रवर्ती के सन्तप्त मन को आह्लादित कर दिया।।१८।।

बाहुबली ने अपने पुत्र महाबली को राज्यलक्ष्मी सौंप दी तथा स्वयं ने गुरुदेव के चरणों की आराधना करते हुये जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।।१९।।

एक वर्ष का उपवास समाप्त होने पर भरतेश्वर ने जिनकी पूजा की है -ऐसे बाहुबली कभी भी विनाश को प्राप्त नहीं होने वाली केवलज्ञान नामक परम ज्योति को प्राप्त हुये।।२०।।

१६ = ३६/९९ १७ = ३६/१०० १८ = ३६/१०१
१९ = ३६/१०४ २० = ३६/१८७

भरतो भारतं वर्षं निर्जित्य सह पार्थिवैः।
षष्ट्या वर्षसहस्रैस्तु दिशां निववृते जयात्।।२१।।
कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चिन्तेयमुदपद्यत।
परार्थे सम्पदास्माकी सोपयोगा कथं भवेत्।।२२।।
नानगारा वसून्यस्मत् प्रतिगृह्णन्ति निःस्पृहाः।
सागारः कतमः पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः।।२३।।
येऽणुव्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम्।
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वसुवाहनैः।।२४।।
इति निश्चित्य राजेन्द्रः सत्कर्त्तुमुचितानिमान्।
परीचिक्षिषुराह्वास्त तदा सर्वान्महीभुजः।।२५।।
हरितैरङ्कुरैः पुष्पैः फलैश्चाकीर्णमङ्गणम्।

भरत चक्रवर्ती अनेक राजाओं के साथ सम्पूर्ण भारतवर्ष को जीत कर साठ हजार वर्ष में दिग्विजय कर वापस लौटे।।२१।।

कृतकृत्यता को प्राप्त होने पर उनके मन में यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि मेरी इस सम्पदा का प्रयोग दूसरों का उपकार करने में किसप्रकार हो सकता है ?।।२२।।

सदैव निस्पृह रहने वाले अनगार (मुनिराज) हम लोगों से धन लेते नहीं है। ऐसा गृहस्थ भी कौन है, जो धन-धान्यादि की समृद्धि के द्वारा पूज्य हो?।।२३।।

जो अणुव्रतों के धारक हैं, धैर्य को धारण करने वाले हैं और गृहस्थों में मुख्य हैं वे हमारे द्वारा इच्छित धन तथा यान आदि के द्वारा निश्चय से तर्पण करने योग्य है।।२४।।

इसप्रकार निश्चय करके सत्कार करने योग्य व्यक्तियों की परीक्षा करने की इच्छा से राजेन्द्र ने उससमय समस्त राजाओं को बुलवाया।।२५।।

२१ = ३८/४	२२ = ३८/५	२३ = ३८/७
२४ = ३८/८	२५ = ३८/९	२६ = ३८/११

सम्प्राडचीकरत्तेषां परीक्षायै स्ववेश्मनि।।२६।।
तेष्वव्रता विना सङ्गात् प्राविक्षन् नृपमन्दिरम्।
तानेकतः समुत्सार्य शेषानाह्वयत्प्रभुः।।२७।।
ते तु स्वव्रतसिद्ध्यर्थमीहमाना महान्वयाः।
नैषुः प्रवेशनं तावद्यावदार्द्राङ्कुराः पथि।।२८।।
सधान्यैर्हरितैः कीर्णमनाक्रम्य नृपाङ्गणम्।
निश्चक्रमुः कृपालुत्वात् केचित् सावद्यभीरवः।।२९।।
कृतानुबन्धना भूयश्चक्रिणः किल तेऽन्तिकम्।
प्रासुकेन पथान्येन भेजुः क्रान्त्वा नृपाङ्गणम्।।३०।।
प्राक्केन हेतुना यूयं नायाताः पुनरागताः।
केन ब्रूतेति पृष्टास्ते प्रत्यभाषन्त चक्रिणम्।।३१।।

इधर चक्रवर्ती ने उन सभी की परीक्षा करने के लिये अपने घर के आँगन में हरे-हरे अंकुर, पुष्प और फल अच्छी तरह भरवा दिये।।२६।।

उनमें जो लोग अव्रती थे, वे बिना किसी प्रतिबन्ध के राजमन्दिर में प्रविष्ट हो गये। उन सभी को एक ओर हटा कर भरतेश ने शेष बचे हुये लोगों को बुलाया।।२७।।

परन्तु, महान कुल में उत्पन्न हुये और अपने व्रत की सिद्धि में प्रयत्नशील रहने वाले लोगों ने जबतक मार्ग में अंकुर हैं तबतक उसमें प्रवेश करने की इच्छा नहीं की।।२८।।

कितने ही पापभीरु लोग दयावान होने के कारण हरे धान्यों से भरे हुये राजा के आँगन का उल्लंघन किये बिना पुनः लौटने लगे।।२९।।

किन्तु, चक्रवर्ती ने जब उनसे बहुत आग्रह किया, तब वे दूसरे प्रासुक मार्ग से राजा के आँगन को लाँघ कर राजा के पास जा पहुँचे।।३०।।

आप लोग पहले किस कारण से नहीं आये ? अब किस कारण से आये हो ? इसप्रकार चक्रवर्ती के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने चक्रवर्ती को इसप्रकार उत्तर दिया।।३१।।

२७ = ३८/१२	२८ = ३८/१३	२९ = ३८/१४	३० = ३८/१५	३१ = ३८/१६

प्रवालपत्रपुष्पादेः पर्वणि व्यपरोपणम्।
न कल्पतेऽद्य तज्जानां जन्तूनां नोऽनभिद्रुहाम्।।३२।।
सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्कुरादिषु।
निगोता इति सार्वज्ञं देवास्माभिः श्रुतं वचः।।३३।।
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तमद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम्।
कृतोपहारमार्द्रार्द्रैः फलपुष्पाङ्कुरादिभिः।।३४।।
इति तद्वचनात्सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढव्रतान्।
पूजयामास लक्ष्मीमान् दानमानादिसत्कृतैः।।३५।।
तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः।।३६।।
इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः।

आज पर्वदिवस है। आज कोंपल, पत्ते तथा पुष्पादिकों का विघात नहीं किया जाता। हम अहिंसकों के द्वारा जो अपना कुछ बिगाड़ नहीं करते हैं - ऐसे उन कोंपलादि में उत्पन्न जीवों का विनाश नहीं किया जाता है।।३२।।

हे देव ! इन हरे अंकुरादिकों में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं - ऐसा हमने सर्वज्ञदेव के वचनों द्वारा सुना था।।३३।।

इसीलिये आर्द्र फल, पुष्प और अंकुर आदि से शोभा की गयी है - ऐसे आपके घर के आँगन का हमने उल्लंघन नहीं किया था।।३४।।

इसप्रकार उनके वचनों से आनन्दित हुये भरत ने अपने व्रतों में दृढ़ रहने वाले उन सबकी प्रशंसा कर उनका दान और मान आदि सत्कार से अभिनन्दन किया।।३५।।

पद्म नामक निधि से प्राप्त हुए एक से लेकर ग्यारह तक की संख्या वाले ब्रह्मसूत्र से उन सबके चिह्न किये गये।।३६।।

३२ = ३८/१७	३३ = ३८/१८	३४ = ३८/१९
३५ = ३८/२०	३६ = ३८/२१	३७ = ३८/२४

श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्यः समुपादिशत्।।३७।।
अथ चक्रधरः काले व्यतिक्रान्ते कियत्यपि।
स्वप्नान्न्यशामयत् कांश्चिदेकाद्भुतदर्शनान्।।३८।।
ततः क्षेपीय एवासौ गत्वा सैन्यैः परिष्कृतः।
सम्राट् प्राप तमुद्देशं यत्रास्ते स्म जगद्गुरुः।।३९।।
देवदानवगन्धर्वसिद्धविद्याधरेडितम्।
भगवन्तमथालोक्य प्राणमद्भक्तिनिर्भरः।।४०।।
भक्त्या प्रणमतस्तस्य भगवत्पादपङ्कजे।
विशुद्धिपरिणामाङ्गमवधिज्ञानमुद्बभौ।।४१।।
पीत्वाथो धर्मपीयूषं परां तृप्तिमवापिवान्।
स्वमनोगतमित्युच्चैर्भगवन्तं व्यजिज्ञपत्।।४२।।

भरत ने उन्हें उपासकाध्ययन नामक अंग से इज्या, वार्त्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का उपदेश दिया।।३७।।

अथानन्तर कितना ही काल व्यतीत हो जाने पर एक दिन चक्रधर भरत ने अद्भुत फल को दिखाने वाले कुछ स्वप्न देखे।।३८।।

तदनन्तर सम्राट् भरत अपनी सेना के साथ अतिशीघ्र ही वहाँ पहुँच गये, जहाँ जगद्गुरु भगवान विराजमान थे।।३९।।

वहाँ पर भक्ति से भरे हुये भरत ने देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर आदि के द्वारा पूज्य भगवान आदिनाथ को देख कर प्रणाम किया।।४०।।

भगवान के पादपंकज में भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए भरत के परिणाम इतने विशुद्ध हो गये कि उसी समय उसे अवधिज्ञान हो गया।।४१।।

तदनन्तर धर्मरूपी अमृत का पान कर भरत तृप्ति को प्राप्त हुआ। वह उच्च स्वर से अपने हृदय के अभिप्राय को भगवान के सामने इसप्रकार निवेदित करने लगे।।४२।।

३८ = ४१/१	३९ = ४१/१७	४० = ४१/२६	४१ = ४१/२८	४२ = ४१/२९

मया सृष्टा द्विजन्मानः श्रावकाचारचुञ्चवः।
त्वद्गीतोपासकाध्यायसूत्रमार्गानुगामिनः।।४३।।
विश्वस्यधर्मसर्गस्य त्वयि साक्षात् प्रणेतरि।
स्थिते मयातिबालिश्यादि दमाचरितं विभो।।४४।।
दोषः कोऽत्र गुणः कोऽत्र किमेतत्साम्प्रतं न वा।
दोलायमानमिति मे मनः स्थापय निश्चितौ।।४५।।
अपि चाद्य मया स्वप्ना निशान्ते षोडशेक्षिताः।
यथास्वं तत्फलान्यस्मत् प्रतीतिविषयं नय।।४६।।
तत्प्रश्नावसितावित्थं व्याचष्टे स्म जगद्गुरुः।
वचनामृतसंसेकैः प्रीणयन्निखिलं सदः।।४७।।
आयुष्मन् भवता सृष्टा य एते गृहमेधिनः।
ते तावदुचिताचारा यावत्कृतयुगस्थितिः।।४८।।

हे भगवन् ! मैंने आपके द्वारा कहे हुए उपासकाध्ययन सूत्र के मार्ग पर चलने वाले तथा श्रावकाचार में पारंगत ब्राह्मण निर्माण किये हैं।।४३।।

हे भगवन् ! समस्त धर्मरूपी सृष्टि को साक्षात् उत्पन्न करने वाले आपके विद्यमान रहते हुए भी मैंने जो कार्य किया है, वह मूर्खतापूर्ण आचरण ही है।।४४।।

हे भगवन् ! ब्राह्मणवर्ण की रचना में दोष क्या है ? गुण क्या है ? यह कार्य उचित हुआ या नहीं ? इसप्रकार मेरा मन दोलायमान हो रहा है। आप मेरे मन को निश्चय में स्थापित कीजिये।।४५।।

आज रात्रि के अन्तिम भाग में मैंने सोलह सपने देखे हैं। उनका जो कुछ भी फल हो, हे प्रभो ! आप मुझे उसकी प्रतीति करा दीजिये।।४६।।

उसके द्वारा प्रश्न समाप्त किये जाने पर जगद्गुरु भगवान आदिनाथ अपने वचनामृत के सिंचन द्वारा सम्पूर्ण सभा को सन्तुष्ट करते हुए इसप्रकार कहने लगे।।४७।।

४३ = ४१/३० **४४ = ४१/३२** **४५ = ४१/३३**
४६ = ४१/३४,३५ **४७ = ४१/४३** **४८ = ४१/४६**

ततः कलियुगेऽभ्यर्णे जातिनादावलेपतः।
भ्रष्टाचाराः प्रपत्स्यन्ते सन्मार्गप्रत्यनीकताम्।।४९।।
इति कालान्तरे दोषबीजमप्येतदञ्जसा।
नाधुना परिहर्त्तव्यं धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात्।।५०।।
दृष्टाः स्वप्ने मृगाधीशा ये त्रयोविंशतिप्रमाः।
निःसपत्नां विहत्येमां क्ष्मां क्ष्माभृत्कूटमाश्रिताः।।५१।।
तत्फलं सन्मतिं मुक्त्वा शेषतीर्थङ्करोदये।
दुर्नयानामनुद्भूतिख्यापनं लक्ष्यतां स्फुटम्।।५२।।
पुनरेकाकिनः सिंहपोतस्यान्वक् मृगेक्षणात्।
भवेयुः सन्मतेस्तीर्थे सानुषङ्गाः कुलिङ्गिनः।।५३।।

हे आयुष्मन् ! आपके द्वारा गृहस्थों की जो रचना की गयी है, वे तभी तक उचित आचार का परिपालन करेंगे जबतक इस कृतयुग (चतुर्थकाल) की स्थिति बनी रहेगी।।४८।।

जब कलियुग (पंचमकाल) आयेगा तब ये जातिवाद के अभिमान से सदाचार से भ्रष्ट हो जायेंगे तथा समीचीन मार्ग के विरोधी हो जायेंगे।।४९।।

इसप्रकार कालान्तर में यह रचना दोषों का बीज ही है, तथापि धर्मसृष्टि का उल्लंघन न हो - इसीलिये इससमय इसका परिहार भी नहीं करना चाहिये।।५०।।

तुमने स्वप्न में इस पृथ्वी पर एकाकी विहार कर पर्वत के शिखर पर चढ़ने वाले तेईस सिंह देखे हैं।।५१।।

उसका निश्चयतः यही फल है कि श्री महावीर स्वामी को छोड़ कर अन्य तेईस तीर्थंकरों के समय में दुर्नयों की उत्पत्ति नहीं होगी।।५२।।

पुनः तुमने स्वप्न में एकाकी सिंहशावक के पीछे चलते हुए मृगसमूह को देखा है। उससे यह ज्ञात होता है कि श्री महावीर स्वामी के तीर्थ में सपरिग्रही अनेक प्रकार के कुलिंगी होंगे।।५३।।

४९ = ४१/४७ **५० = ४१/५५** **५१ = ४१/६३** **५२ = ४१/६४**
५३ = ४१/६५

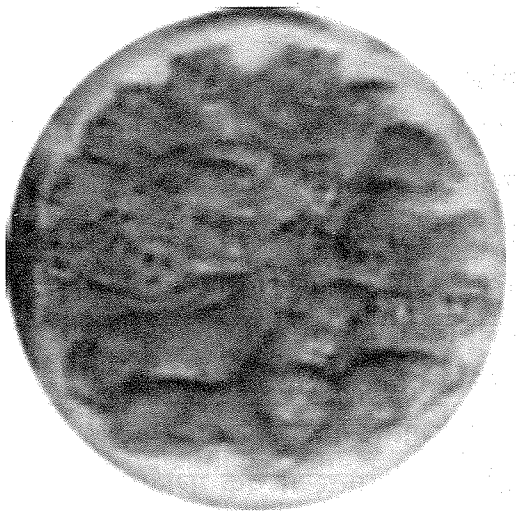

23 सिंह

तेईस तीर्थंकरों के समय में खोटे मुनि न रहेगें।

एक सिंह के पीछे मृग समूह

महावीर स्वामी के पश्चात् मुनि परीषह न सहेगें, भ्रष्ट होंगें।

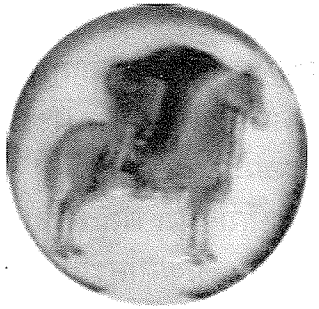

घोड़े पर हाथी चढ रहा है।

साधु तप से डरेगें और असमर्थ होंगे।

दो बकरे सुख पत्ते खा रहे हैं।

राजवंशी क्षत्रियों का नाश होगा,
नीच कुलीन राज्य करेगें।

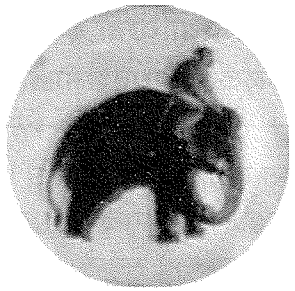

हाथी पर बन्दर बैठा है।

पंचम काल में भोले जीव मुनि धर्म छोडकर अनाचारी होंगें,
पापी जीव धर्मात्माओं का अपमान करेगें।

भूत प्रेत नाच रहे हैं।

अज्ञानी जीव भूतादि की
पूजा जिनदेव के समान करेगें।

हंस को कौवे सता रहे हैं।

उच्च कुल वाले शुभाचार से भ्रष्ट हो,
खोटा आचरण करेगें।

करीन्द्रभारनिर्भुग्न पृष्ठस्याश्वस्य वीक्षणात्।
कृत्स्नांस्तपोगुणान्वोढुं नालं दुष्षमसाधवः।।७४।।
निध्यानादजयूथस्य शुष्कपत्रोपयोगिनः।
यान्त्यसद्वृत्ततां त्यक्तसदाचाराः पुरा नराः।।७५।।
करीन्द्रकन्धरारूढशाखामृगविलोकनात्।
मुक्त्वा जैनान्मुनीनन्यमतस्थानन्वियुर्जनाः।।७६।।
प्रनृत्यतां प्रभूतानां भूतानामीक्षणात्प्रजाः।
भजेयुर्नाभकर्माद्यैर्व्यन्तरान् देवतास्थया।।७७।।
आदिक्षत्रान्वयोच्छित्तौ क्ष्मां पास्यन्त्यकुलीनकाः।
काकैरुलूकसम्बाधदर्शनाद्धर्मकाम्यया।।७८।।

महागज के द्वारा उठाने योग्य बोझ से जिसकी पीठ झुकी हुई है - ऐसे घोड़े को देखने के फलस्वरूप दुःषमा काल में साधुगण तपोगुणों को धारण करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।।७४।।

शुष्क पत्तों को खाने वाले बकरों का समूह देखने से ऐसा मालुम होता है कि आगामी काल में मनुष्य सदाचार को छोड़ कर दुराचारी हो जायेंगे।।७५।।

गजेन्द्र के कन्धे पर चढ़े हुये वानरों को देखने से मनुष्य धर्म की इच्छा से जैन मुनियों को छोड़ कर अन्यमतीय साधुओं के पास जायेंगे।।७६।।

नृत्य करते हुए अनेक भूतों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रजा के लोग नामकर्मादि के कारणों से व्यन्तरों को देव समझ कर उनकी पूजा करने लगेंगे।।७७।।

कौवों के द्वारा उलूक को त्रास दिया जाने से यह प्रकट होता है कि प्राचीन क्षत्रिय वंश नष्ट हो जायेंगे तथा नीचकुलीन लोग पृथ्वी पर वास करेंगे।।७८।।

७४ = ४१/६६ ७५ = ४१/६८ ७६ = ४१/६९,७०
७७ = ४१/७१ ७८ = ४१/६९,७०

शुष्कमध्य तडागस्य पर्यन्तेऽम्बुस्थितीक्षणात्।
प्रच्युत्यार्यनिवासात्स्याद्धर्मः प्रत्यन्तवासिषु।।७९।।
पांसुधूसररत्नौघनिध्यानादृद्धिसत्तमाः।
नैव प्रादुर्भविष्यन्ति मुनयः पञ्चमे युगे।।८०।।
शुनोऽर्चितस्य सत्कारैश्चरुभाजनदर्शनात्।
गुणवत्पात्रसत्कारमाप्स्यन्त्यव्रतिनो द्विजाः।।८१।।
तरुणस्य वृषस्योच्चैर्नदतो विहृतीक्षणात्।
तारुण्य एव श्रामण्ये स्थास्यन्ति न दशान्तरे।।८२।।
परिवेषोपरक्तस्य श्वेतभानोर्निशामनात्।
नोत्पत्स्यते तपोभृत्सु स मनःपर्ययोऽवधिः।।८३।।
अन्योन्यं सह सम्भूय वृषयोर्गमनेक्षणात्।

जिसका मध्यभाग शुष्क है तथा शेष भागों में पानी भरा हुआ है - ऐसे तालाब को स्वप्न में देखने से ज्ञात होता है कि आर्यखण्ड से धर्म हट कर प्रत्यन्तवासी म्लेच्छखण्डों में रह जायेगा।।७९।।

रजकणों से धूसरित हुई रत्नराशि को स्वप्न में देखने से यह ज्ञात होता है कि पंचमकाल में ऋद्धिधारी मुनिराज नहीं होंगे।।८०।।

सत्कारपूर्वक जिसकी अर्चना की गयी है - ऐसे कुत्ते को नैवेद्य खाते हुए देखने से ज्ञात होता है कि गुणी पात्रों के समान अव्रती ब्राह्मण सत्कार को प्राप्त करेंगे।।८१।।

उच्च शब्दों में नाद करते हुए तरुण वृषभ का विहार देखने से यह परिज्ञात होता है कि लोग युवावस्था में ही श्रमणावस्था में स्थिर रहेंगे अन्य दशाओं (अवस्थाओं) में नहीं।।८२।।

परिमण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा को देखने से यह ज्ञात होता है कि पंचमकाल के मुनियों में अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान नहीं होगा।।८३।।

७९ = ४१/७२ ८० = ४१/७३ ८१ = ४१/७४
८२ = ४१/७५ ८३ = ४१/७६ ८४ = ४१/७७

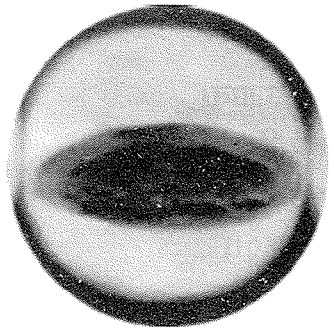

तालाब मध्य में खाली किनारें पर भरा हुआ ।

उत्तम तीर्थो में धर्म का अभाव होगा।
हीन स्थान में धर्म होगा।

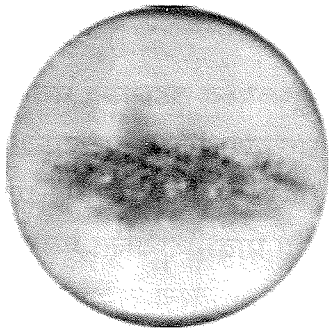

रत्नराशि धूल में मिली हुई हैं ।

पंचम काल में शुक्लध्यानी न होंगें,
धर्मध्यानी ही कई एक रहेगें।

पूजन का द्रव्य कुत्ता खा रहा है ।

पंचम काल में कुपात्र पात्र की तरह आदर पावेगें।

एक तरूण बैल

पंचम काल के जीव तरूणावस्था
में धर्मसाधना में उद्यम करेंगें।
परन्तु वृद्धावस्था में अरूचि करेगें।

शाखा सहित चन्द्रमा

पंचम काल में अवधि मनपर्याय
ज्ञान के धारी मुनि होंगे।

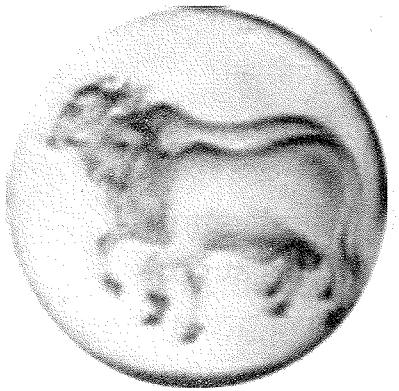

युगल बैल दहक रहें हैं ।

पंचम काल में मुनिसंघ सहित रहेगें,
एकाकी नही।

सूर्य विमान मेघों से घिरा हुआ है ।

पंचम काल के मुनियों को केवल ज्ञान नहीं होगा।

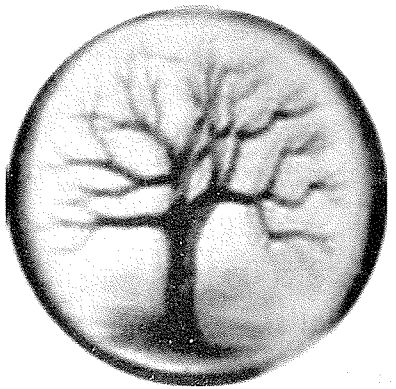

पत्ती रहित सूखा वृक्ष

पंचम काल के स्त्री–पुरुष शील व्रत धारण करके
भी कुशील सेवन करेगें।

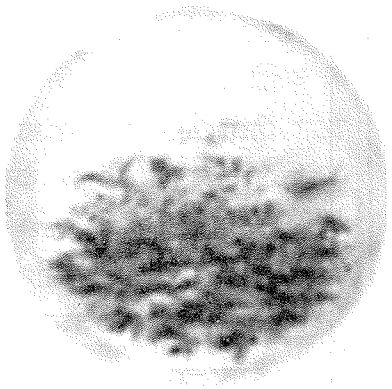

सूखे जीर्ण पत्तें

पंचम काल में अन्न आदि औषधि में
निरसता होगी।

वत्स्यन्ति मुनयः साहचर्यान्नैकविहारिणः।।६४।।
घनावरणरुद्धस्य दर्शनादंशुमालिनः।
केवलार्कोदयः प्रायो न भवेत्पञ्चमे युगे।।६५।।
पुंसां स्त्रीणां च चारित्रच्युतिः शुष्कद्रुमेक्षणात्।
महौषधिरसोच्छेदो जीर्णपर्णावलोकनात्।।६६।।
स्वप्नानेवं फलानेतान् विद्धि दूरविपाकिनः।
नाद्य दोषस्ततः कोऽपि फलमेषां युगान्तरे।।६७।।
इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं स वर्णाश्रमपालकः।
सन्देहकर्दमापायत् स प्रसन्नमधान्मनः।।६८।।
भूयो भूयः प्रणम्येशं समापृच्छ्य पुनः पुनः।

एक-दूसरे के साथ गमन करने वाले दो वृषभों को देखने से ऐसा सूचित होता है कि पंचमकाल में मुनिगण साहचर्य से विहार करेंगे, एकाकी नहीं।।६४।।

मेघों के आवरण से अवरुद्ध हो चुके सूर्य को देखने से यह ज्ञात होगा कि पंचमकाल में प्रायः केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय नहीं होगा।।६५।।

सूखा हुआ वृक्ष देखने से यह ज्ञात होता है कि स्त्री-पुरुष चारित्र से च्युत हो जायेंगे तथा जीर्ण पत्तों को देखने से यह ज्ञात होता है कि महा-औषधियों का रस नष्ट हो जायेगा।।६६।।

इसप्रकार के फल देने वाले स्वप्नों को तुम दूरविपाकी (बहुत काल बाद फल देने वाले) समझो। इसका फल कलियुग में प्राप्त होगा। इससमय किसी प्रकार का दोष नहीं होगा।।६७।।

वर्णाश्रम के रक्षक चक्रवर्ती भरत के द्वारा गुरु के उपर्युक्त वचन सुन कर सन्देहरूपी कीचड़ के नाश होने से अपना चित्त निर्मल किया गया।।६८।।

६५ = ४१/७८ ६६ = ४१/७९ ६७ = ४१/८०
६८ = ४१/८२ ६९ = ४१/८३,८४

ततः प्रविश्य साकेतपुरमाबद्धतोरणम्।।६९।।
शान्तिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशान्तये।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः।।७०।।
अथान्यदा समुत्पन्नबोधिर्मेघस्वराधिपः।
तीर्थाधिनाथमासाद्य वन्दित्वानन्दभाजनम्।।७१।।
कृतग्रन्थपरित्यागः सिद्धसप्तर्द्धिवर्द्धितः।
अभूद्गणधरोभर्त्तुरिकसप्ततिपूरकः।।७२।।
जगत्त्रितयनाथोऽपि धर्मक्षेत्रेष्वनारतम्।
उप्त्वा सद्धर्मबीजानि न्यषिञ्चद्धर्मवृष्टिभिः।।७३।।
सतां सत्फलसम्प्राप्त्यै विहरन् स्वगणैः समम्।

भगवान को पुनः पुनः प्रणाम कर तथा उनसे पुनः पुनः पूछ कर भरत चक्रवर्ती ने जिसमें तोरण बाँधे गये हैं - ऐसे साकेत (अयोध्या) नगर में प्रवेश किया।।६९।।

दुःस्वप्न से होने वाले अनिष्ट की शान्ति के लिये भरत चक्रवर्ती ने जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करना, सत्पात्रों को दान देना आदि पुण्यक्रियाओं से शान्तिकर्म किया।।७०।।

अथानन्तर जिसे बोधि की प्राप्ति हो चुकी है - ऐसा मेघेश्वर जयकुमार तीर्थंकर आदिनाथ के समीप आया तथा उसने भगवान को नमस्कार कर आनन्द प्राप्त किया।।७१।।

उसने सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग किया। उसने अपनी सात ऋद्धियों के सम्पत्ति की वृद्धि की। वह भगवान का इकहत्तरवाँ गणधर बन गया।।७२।।

तीन लोक के नाथ भगवान आदिनाथ ने भी धर्म के योग्य क्षेत्रों में समीचीन धर्म का बीज बोकर उसे सद्धर्मवृष्टि के द्वारा बहुत सींचा।।७३।।

इसप्रकार सज्जनों को मोक्षरूपी श्रेष्ठ फल की प्राप्ति कराने के लिये भगवान अपने गणधरों के साथ-साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम

७० = ४१/८५ ७१ = ४७/२७४ ७२ = ४७/२८५,२८६
७३ = ४७/३२१ ७४ = ४७/३२२

चतुर्दशदिनोपेतसहस्राब्दोनपूर्वकम्।।७४।।
लक्षं कैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिखरान्तरे।
पौर्णमासीदिने पौषे निरिच्छस्समुपाविशत्।।७५।।
तदा भरतराजेन्द्रो महामन्दरभूधरम्।
आ प्राग्भारं व्यलोकिष्ट स्वप्ने दैर्घ्येणसंस्थितम्।।७६।।
तदैव युवराजोऽपि स्वगदित्य महौषधिः।
द्रुमच्छित्वा नृणां जन्मरोगं स्वर्यान्तमैक्षत।।७७।।
यशस्वती सुनन्दाभ्यां सार्द्धं शक्रमनः प्रिया।
शोचन्तीश्चिरमद्राक्षीत् सुभद्रास्वप्नगोचरा।।७८।।
एवमालोकितस्वप्ना राजराजपुरस्सराः।
पुरोधसं फलं तेषामपृच्छन्नर्यमोदये।।७९।।
कर्माणि हत्वा निर्मूलं मुनिभिर्बहुभिः समम्।

एक लाख पूर्व तक विहार करते रहे। जब आयु के मात्र चौदह दिन अवशिष्ट रह गये, तब योगों का निरोध कर पौष की पूर्णिमा के दिन श्रीशिखर और सम्मेदशिखर के बीच में कैलास पर्वत पर आकर विराजमान हुए।।७४,७५।।

उस दिन महाराज भरत ने स्वप्न में देखा कि महामेरु-पर्वत अपनी लम्बाई से सिद्धक्षेत्रपर्यन्त पहुँच गया है।।७६।।

उसीदिन युवराज अर्ककीर्ति ने स्वप्न में देखा कि एक महा-औषधीवृक्ष मनुष्य के जन्मरूपी रोग को दूर कर स्वर्ग जाने को तैयार हो गया है।।७७।।

सोती हुई सुभद्रा ने देखा कि यशस्वती और सुनन्दा के साथ बैठी हुई इन्द्राणी बहुत देर तक शोक कर रही है।।७८।।

इसप्रकार राजपरिवार ने स्वप्न देखे। सूर्योदय होने पर सभी ने पुरोहित से उन स्वप्नों का फल पूछा।।७९।।

पुरोहित ने कहा - ये सभी स्वप्न कर्मों को समूलरूप से नष्ट कर भगवान आदिनाथ का अनेक मुनियों के साथ मोक्ष जाने को सूचित कर रहे हैं।।८०।।

७५ = ४१/३२३ ७६ = ४७/३२४ ७७ = ४७/३२५
७८ = ४७/३३० ७९ = ४७/३३२ ८० = ४७/३३३

पुरोः सर्वेऽपि शंसन्ति स्वप्नाः स्वर्गाग्रगामिताम्।।८०।।
इति स्वप्नफलं तेषां भाषमाणे पुरोहिते।
तदैवानन्दनामैत्य भर्तुः स्थितिमवेदयत्।।८१।।
ध्वनौ भगवता दिव्ये संहृते मुकुलीभवत्।
कराम्बुजा सभाजाता पूष्णीव सरसीत्यसौ।।८२।।
तदाकर्णनमात्रेण सत्वरः सर्वसङ्गतः।
चक्रवर्ती तमभ्येत्य त्रिःपरीत्य कृतस्तुतिः।।८३।।
महामहमहापूजां भक्त्या निरवर्त्तयन् स्वयम्।
चतुर्दश दिनान्येवं भगवन्तमसेवत।।८४।।
माघ कृष्ण चतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्तपल्यङ्को मुनिभिः समम्।।८५।।

इसप्रकार पुरोहित उन सबके लिये स्वप्नों का फल पृथक् रूप से कह ही रहा था कि आनन्द नामक एक मनुष्य आकर भगवान का समस्त वृत्तान्त कहने लगा।।८१।।

उसने कहा - भगवान ने अपनी दिव्यध्वनि का संकोच कर लिया है। अतः सम्पूर्ण सभा हाथ जोड़ कर बैठी हुई है। वह ऐसी लगती है - जैसे सूर्यास्त के समय निमीलित कमलों से युक्त सरसी ही हो।।८२।।

यह सुनते ही भरत चक्रवर्ती तत्काल सब लोगों के साथ कैलासपर्वत पर आये। वहाँ उन्होंने भगवान की तीन प्रदक्षिणायें दी तथा स्तुति की।।८३।।

उसने भक्तिपूर्वक अपने हाथ से महामह नामक महापूजा की। वह चौदह दिनों तक वहीं पर रह कर भगवान की सेवा करता रहा।।८४।।

माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के सुमुहूर्त तथा अभिजित् नक्षत्र में भगवान अनेक मुनियों के साथ पर्यंकासन से स्थित हुए।।८५।।

८१ = ४७/३३४ ८२ = ४७/३३५ ८३ = ४७/३३६
८४ = ४७/३३७ ८५ = ४७/३३८

शरीरत्रितयापाये प्राप्यसिद्धत्वपर्ययम्।
निजाष्टगुणसम्पूर्णं क्षणाप्तनुवातकः।।८६।।
नित्यो निरञ्जनः किञ्चिदूनो देहादमूर्त्ति भाक्।
स्थितः स्वसुखसाद्भुतः पश्यन्विश्वमनारतम्।।८७।।
तदागत्य सुराः सर्वे प्रान्तपूजाचिकीर्षया।
तोषात्सम्पादयामासुः सम्भूयानन्दनाटकम्।।८८।।
स्नेहेनेष्टवियोगोत्थः प्रदीप्तः शोकपावकः।
तदा प्रबुद्धमप्यस्य चेतोऽधाक्षीदधीशितुः।।८९।।
प्रागक्षिगोचरः सम्प्रत्येष चेतसि वर्तते।
भगवांस्तत्र कः शोकः पश्यै नं तत्र सर्वदा।।९०।।
(छन्द = वसन्ततिलका)
इति मनसि यथार्थं चिन्तयन् शोकवह्निं।
शमय विमलबोधाम्भोभिरित्यावभाषे।।

तीन शरीरों का नाश हो जाने से सिद्धत्व पर्याय को प्राप्त कर वे निज आठ गुणों से परिपूर्ण हो क्षण भर में तनुवातवलय में जा पहुँचे।।८६।।

वे वहाँ पर नित्य, निरंजन, अपने शरीर से कुछ कम, अमूर्त्तिक, आत्मिक सुख में तल्लीन एवं निरन्तर संसार को देखते हुए विराजित हुए।।८७।।

तब अन्त्य कल्याणक की पूजा करने की इच्छा से देवलोग आये। उन्होंने बड़े आनन्द के साथ आनन्द नामक नाटक किया।।८८।।

इष्टवियोग से उत्पन्न हुई तथा स्नेह से प्रज्वलित हुई शोकरूपी अग्नि भरत के प्रबुद्ध चित्त को जला रही थी।।८९।।

जो देव पहले चर्मचक्षुओं से दिखाई देते थे, वे अब हृदय में विराजमान हैं। इसमें शोक क्यों हो ? तुम उन्हें सदैव अपने चित्त में देखते रहो।।९०।।

इसप्रकार अपने मन में वस्तुस्थिति का चिन्तन करते हुए तुम निर्मल ज्ञानरूपी जल से शोकरूपी अग्नि को शान्त करो - ऐसा गणधर ने कहा

८७ = ४७/३४२ ८८ = ४७/३४३,३५१ ८९ = ४७/३५५ ९० = ४७/३८९ ९१ = ४७/३९०

गणभृदथ स चक्री दावदग्धो महीध्रो।
नवजलदजलैर्वा तद्धचोभिः प्रशान्तः।।९१।।
(छन्द = वसन्ततिलका)
चिन्तां व्यपास्य गुरुशोककृतां गणेश-
मानम्य नम्रमुकुटो निकटात्मबोधिः।।
निन्दन्निनान्तनितरां निजभोगतृष्णां,
मोक्षोष्णकः स्वनगरं व्यविशद्विभूत्या।।९२।।
(छन्द = द्रुतविलम्बित)
अथ कदाचिदसौ वदनाम्बुजम्,
समभिवीक्ष्य समुज्ज्वलदर्पणे।
पलितमैक्षत दूतमिवागतं,
परमसौख्यपदात् पुरुसन्निधेः।।९३।।
(छन्द = वसन्ततिलका)
आलोक्य तं गलितमोहरसः स्वराज्यं,
मत्वा जरत्तृणमिवोद्गतबोधिरुद्यन्।

तब चक्रवर्ती भी उनके वचनों से उसीप्रकार शान्त हो गया, जिसप्रकार दावानल से दग्ध हुआ पर्वत नवीन बादलों के जल से शान्त हो जाता है।।९१।।

जिसे शीघ्र ही आत्मज्ञान होने वाला है और जिसका मुकुट नम्रीभूत हो रहा है - ऐसे भरत ने पिता के शोक से उत्पन्न हुई चिन्ता को छोड़ कर गणधरदेव को नमस्कार किया तथा अत्यन्त बढ़ी हुई अपनी भोगतृष्णा की निन्दा करते हुए तथा मोक्ष के लिये शीघ्रता करते हुए बड़े वैभव के साथ अपने नगर में प्रवेश किया।।९२।।

अथानन्तर भरत महाराज ने किसी समय उज्ज्वल दर्पण में अपना मुखकमल देख कर परम सुख के स्थान स्वरूप भगवान वृषभदेव के पास से आये हुए दूत के समान सफेद बाल देखा।।९३।।

९२ = ४७/३९१ ९३ = ४७/३९२ ९४ = ४७/३९३

श्रीपुराणम्

आदातुमात्महितमात्मजमर्ककीर्तिं,
लक्ष्म्या स्वया स्वयमयोजयदूर्जितेच्छः।।९४।।
(छन्द = मालिनी)
विदितसकलतत्त्वः सोऽपवर्गस्य मार्गं,
जिगमिषुरपसत्त्वैर्दुर्गमं निष्प्रयासम्।
यमसमितिसमग्रं संयमं शम्बलं वा-
दित विदितसमर्थाः किं परं प्रार्थयन्ते।।९५।।
(छन्द = भुजङ्गप्रयात)
मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य सद्यः,
समुत्पन्नवत् केवलं चानु तस्मात्।
तदैवाभवद् भव्यता तादृशी सा,
विचित्राङ्गिनां निवृतेः प्राप्तिरत्र।।९६।।

उसे देख कर जिनका सब मोहरस गल गया है, जिन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ है, जो आत्महित को ग्रहण करने के लिये उद्युक्त हैं और जिनकी वैराग्यविषयक इच्छा अत्यन्त सुदृढ़ तथा वृद्धिशील है - ऐसे भरत ने अपने राज्य को जीर्णतृण के समान मान कर अपने पुत्र अर्ककीर्ति को अपनी लक्ष्मी से युक्त किया अर्थात् अपनी समस्त सम्पत्ति अर्ककीर्ति को प्रदान कर दी।।९४।।

जिसने समस्त तत्त्वों को जान लिया है और जो हीन जीवों के द्वारा अगम्य मोक्षमार्ग में गमन करना चाहते हैं - ऐसे चक्रवर्ती भरत ने मार्ग हितकारी भोजन के समान प्रयासहीन यम तथा समितियों पूर्ण संयम को धारण किया था। सो ठीक ही है, क्योंकि पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को समझने वाले पुरुष संयम के सिवाय अन्य किसी पदार्थ की प्रार्थना नहीं करते हैं।।९५।।

उन्हें उसीसमय मनःपर्ययज्ञान तथा बाद में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उनकी वैसी ही भव्यता उसीसमय प्रकट हो गई। सो ठीक ही है, क्योंकि प्राणियों को मोक्ष की प्राप्ति बड़ी विचित्र होती है।।९६।।

९५ = ४७/३९४ ९६ = ४७/३९५

(छन्द = मालिनी)
परिचितयतिहंसो धर्मवृष्टिं निषिञ्चन्,
नभसि कृतनिवेशो निर्मलस्तुङ्गवृत्तिः।
फलमविकलमग्र्यं भव्यसस्येषु कुर्वन्,
व्यहरदखिलदेशान् शारदो वा स मेघः।।९७।।
(छन्द = पृथ्वी)
विहृत्य सुचिरं विनेयजनतोपकृत्स्वायुषो,
मुहूर्तपरिमास्थितौ विहितसत्क्रियो विच्युतौ।
तनुत्रितयबन्धनस्य गुणसारमूर्त्तिः स्फुरन्,
जगत्त्रयशिखामणिः सुखनिधिः स्वधाम्नि स्थितः।।९८।।
(छन्द = वसन्ततिलका)
सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्याः,
सौख्यं गताः सकलजन्तुषु शान्तचित्ताः।

जिनसे मुनिरूपी हंस परिचित हैं, जो धर्म की वर्षा करते रहते हैं, जो आकाश में निवास करते हैं, जो निर्मल हैं, जो उत्तम वृत्ति से सम्पन्न हैं तथा जो भव्य जीवरूपी धान्य में मोक्षरूपी पूर्ण फल को लगाने वाले हैं - ऐसे भरत महाराज ने शरत्कालीन मेघ के समान समस्त देशों में विहार किया।।९७।।

जिन्होंने चिरकाल तक विहार कर शिक्षा प्रदान करने योग्य जनसमूह का अत्यधिक कल्याण किया है - ऐसे भरत महाराज ने अपनी आयु की अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति अवशिष्ट रहने पर योगनिरोध किया। उससे तीन शरीर विषयक बन्धनों के नष्ट हो जाने पर सारभूत गुण ही जिनकी मूर्ति रह गयी है, जो प्रकाशमान हैं, जो तीन लोक के चूड़ामणि हैं तथा सुख के भण्डार हैं - ऐसे भरत महाराज मोक्षधाम में स्थित हो गये।।९८।।

जो समस्त जीवों के विषय में शान्तचित्त हैं, जो उत्तम सुख को प्राप्त हैं, जो यम-शील आदि गुणों से पूर्ण हैं, जो गुणवान हैं, जो गणसमूह के इन्द्र

९७ = ४७/३९७ ९८ = ४७/३९८ ९९ = ४७/३९९

कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा,
निर्वाणमापुरमितं गुणिनो गणीन्द्राः।।९९।।
(छन्द = शार्दूलविक्रीड़ित)
यो नाभेस्तनयोऽपि विश्वविदुषां पूज्यः स्वयम्भूरिति,
त्यक्ताशेषपरिग्रहोऽपि सुधियां स्वामीति यः शब्द्यते।
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्त्वसमितेरेवोपकारी मतो,
निर्दानोऽपि बुधैरपास्य चरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये।।१००।।

इति श्रीपुराण समाम्नाये दशमं पर्व।

इति समाप्तो ग्रन्थः।

हैं - ऐसे वृषभसेन आदि मुख्य मुनिराज भी कालक्रम से अपरिमित निर्वाणधाम को प्राप्त हुए।।९९।।

जो नाभिराज के पुत्र होकर भी स्वयम्भू हैं, जो समस्त विद्वानों में पूज्य हैं, जो समस्त परिग्रहों का त्याग कर चुकने पर भी विद्वानों के स्वामी कहे जाते हैं, जो मध्यस्थ होकर भी भव्य जीवों के समूह का उपकार करने वाले हैं तथा जो दान से रहित होते हुए भी विद्वानों के द्वारा जिनके चरणों की सेवा की जाती है - ऐसे भगवान वृषभदेव तुम सब को शान्ति प्रदान करने वाले हों।।१००।।

इसप्रकार श्रीपुराण में दसवाँ पर्व समाप्त हुआ।

इसप्रकार श्रीपुराण ग्रन्थ समाप्त हुआ।

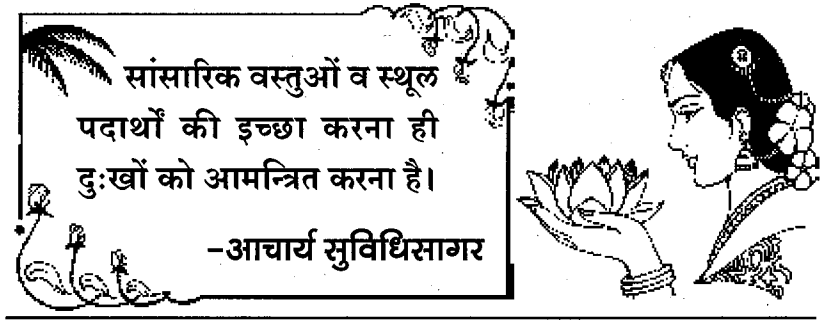

श्लोकानुक्रमणिका

अ					
अकस्मात्तारका दृष्ट्वा	१	३९	अथतस्मिन्वनाभेगे	८	७९
अङ्गपुत्र ममाङ्गेषु	२	१६	अथ दिग्विजयाच्चक्री	३	७९
अङ्गपुत्रिपरिष्वङ्ग	३	३४	अथ दूतवचश्चण्ड	१०	१
अचिराल्लब्धसंज्ञश्च	४	१०१	अथ पण्डितिकान्येद्यु	३	४४
अच्युतेन्द्रसमायोग	४	९७	अथ प्रदक्षिणीकृत्य	४	९१
अच्युतं कल्पमासाद्य	४	२६	अथ सामानिका देवा	३	६
अजितञ्जयभूपालाद्	४	७५	अथ सुप्तैकदा देवी	७	९
अटटप्रमितं तस्य	१	४४	अथ सोमप्रभो राजा	८	२१
अजितञ्जयमारूक्ष	८	६८	अथ सौधर्मकल्पेशो	७	२५
अत्यन्त विरला जाता	१	५८	अथ स्वयम्प्रभादेवी	३	१८
अत्रान्तरे किलायातौ	७	१०७	अथातो नवमासाना	७	२०
अत्रान्तरे ज्वलन्मौलि	९	१३	अथातो वज्रजङ्घार्यः	६	१२
अत्रान्तरे महौषध्यौ	७	६९	अथाद्यस्य पुराणस्य	१	८८
अत्रारमद्भवसम्बन्धः	४	९३	अथाधिराज्यमासाद्य	७	७५
अथ कदाचिदसौ	१०	९३	अथान्यदा पुराधीश	५	४९
अथकायं समुत्सृज्य	७	१००	अथान्यदा महादेवी	७	५३
अथ कालागरुद्दाम	६	१	अथान्यदा महाराजो	५	१४
अथ क्रमाद्यशस्वत्यां	७	५८	अथान्यदा समुत्पन्न	१०	७१
अथ चक्रधरो जैनीं	८	७६	अथान्यदा स्वयम्बुद्धो	२	६२
अथ चक्रधरः काले	१०	३८	अथान्येद्युरबुद्धासौ	६	४३
अथ चक्रधरः पूजा	५	३	अथान्येद्युरमुष्याङ्गे	२	२१
अथ चक्रधरः पूजां	८	५९	अथान्येद्युरुपारूढ	९	२८
अथचक्रधरस्यासीत्	९	८५	अथान्येद्युरसौ राजा	१	९३
अथ तत्र कृतावासं	९	८	अथान्येद्युरसौ सुप्ता	३	२५
			अथान्येद्युर्महाराजा	५	९

अथान्येद्युर्महास्थान	७	७९
अथापरान्तं निर्जेतुम	९	१
अथावरुह्य कैलासा	९	७४
अथावसाने नैर्ग्रन्थीं	६	७०
अथासौ पुत्रनिर्दिष्ट	२	४०
अथाहूय सुतां चक्री	४	१
अथोपाचक्रमेवक्तुं	९	९२
अद्य वास्तां तदानीं तौ	७	४
अदृष्टपूर्वौ तौ दृष्ट्वा	१	३२
अधिवासितजैस्त्रास्त्रः	८	६६
अधोग्रैवेयकस्याधो	६	११
अनन्तरं च लौकान्ति	६	८५
अनादिनिधनः कालो	१	३
अनुगङ्गातटं देशान्	९	७०
अनुन्धरीं च सोत्कण्ठां	५	९८
अनुलङ्घ्यं पितुर्वाक्यं	२	२७
अनुवार्द्धितटं मत्वा	९	३
अनुसिन्धुतटं सैन्यै	९	७
अन्येद्युरवधिज्ञान	२	३६
अन्येद्युश्च त्वमज्ञाना	३	६१
अन्योन्यं सह सम्भूय	१०	६४
अपराजितसेनान्य	५	७०
अपि चाद्य मया स्वप्ना	१०	४६
अभिजानासि तत्पुत्री	४	७९
अभेद्ये मम देहाद्धौ	१०	१४
अयं मतिवरोऽत्रैव	५	४५
अरिरादयिषुर्देवं	७	८१
अविलिप्त सुगन्धि	७	३८
अष्टमङ्गलधारीणि	८	१६
असंख्यकल्पकोटीषु	९	५७
असिर्मसिः कृषिर्विद्या	७	७२
अस्मत्स्वामी खगाधीशः	२	६७
अहं पण्डितिका सत्यं	३	४५
अहं पूर्वं भवेऽभूवं	३	५१
अहो स्त्रीरूपमत्रेदं	४	९४
आ		
आजन्मनो यदेतेन	३	५
आदिक्षत्रान्वयोच्छित्तौ	१०	५८
आदित्यगतिमग्रण्यं	२	६५
आदिष्टोऽस् रम्यहमीशेन	७	११५
आध्यानमात्रमेत्यारा	१०	१२
आप्तागमपदार्थानां	६	२९
आयुष्मन् भवता सृष्टा	१०	४८
आलोक्य तं गलितमो	१०	९४
आसीच्छतबलो नाम्ना	२	४६
आस्तां भुजबली तावद्	९	७९
इ		
इज्यां वार्तां च दत्तिं च	१०	३७
इति कालान्तरे दोष	१०	५०
इति चक्रधरादेशं	९	१९
इति तद्वचनस्यान्ते	९	९६
इति तद्वचनात्तेषाम्	१	३५
इति तद्वचनात्सर्वान्	१०	३५
इति तद्वचनाद्धैर्य	३	१०
इति तद्वचनाद्भीता	७	१०५
इति तद्वचनाद्विद्यां	२	१९
इति तद्वचनाज्जात	५	६२
इति तद्वचनाज्जाता	२	६
इति निर्द्धार्य कार्यज्ञान्	९	८०
इति निर्विद्य भोगेषु	५	१८
इति निर्विद्य भोगेभ्यो	७	८८
इति निश्चित्य कार्यज्ञं	९	८९
इति निश्चित्य राजेन्द्रः	१०	२५
इति परममुदारं	२	१००
इति पुण्योदयात्तेषां	६	४२
इति पृष्टवते तस्मै	६	४७
इति पृष्टो मुनीन्द्रोऽसौ	३	५९
इति प्रतर्कयन्नेव	४	९९
इति प्रतीत माहात्म्यो	२	५९
इति प्रशान्तमोजस्वि	९	१६
इति प्रश्नमुपन्यस्य	२	६९
इति प्रश्नावसानेऽस्य	६	१९
इति प्रीतिङ्करार्चार्य	६	३१
इति ब्रुवन्तमभ्येत्य	३	६४
इति ब्रुवंस्तथोत्थाय	९	११
इति ब्रुवाण एवासा	३	३६
इति ब्रुवाणां तां भूयः	४	८१
इति मनसि यथार्थं	१०	९१
इति राज्ञानुयुक्तोऽसौ	५	७५
इति लौकान्तिकैर्देवै	७	९१
इति विज्ञापितस्तेन	४	११५
इति शासति शास्त्रज्ञे	९	७८
इति सुकृतविपाकादान	१	१००
इति स्तुत्वा सुरेन्द्रास्तं	७	३९
इति स्वप्नफलं तेषां	१०	८१
इतीरयन्वचो भूयः	४	१०६
इतोऽतीत भवं चास्य	२	७२
इतोऽष्टमे भवे भावि	५	९४
इतोऽहं पञ्चमेऽभूवं	४	४
इत्थं मुनिवचः पथ्य	३	६७
इत्यत्थन्त सुखे	६	८
इत्यभ्यर्णे बले जिष्णो	१०	२
इत्यसौ बोधितस्तेन	६	५२
इत्यस्मद्वचनाज्जात	४	४२
इत्यस्य परमां चर्यां	८	७
इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं	१०	६८
इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्यं	९	८४
इत्यादि युक्तिभिर्जीवं	४	६०
इत्याद्यः कालभेदोऽव	१	१७
इत्याविष्कृतमानेन	९	९९
इत्युक्तः प्रेमनिघ्नेन	४	११३
इत्युक्तस्तु मया साधु	४	१०५
इत्युक्त्वमात्र एवासौ	४	३२
इत्युक्त्वा पण्डितावोचत्	३	७५
इत्युक्त्वा पण्डिताश्वास्य	३	७६
इत्युक्त्वास्मिन्गते पुत्र	५	९०
इत्युच्चरद् गिरामोघो	१०	१८
इत्युदीर्य ततोऽन्तर्द्धि	२	८८
इत्येकान्नशतं पुत्रा	७	६१
इत्येवमनुबध्नन्तौ	७	१११
इदं रूपमदीनाना	७	१०४
इदानीं तु विना हेतोः	१	४७
इन्द्रप्रतीन्द्रपदयोः	४	६३
इह जम्बूमति द्वीपे	१	८९
इह जम्बूमतिद्वीपे	७	१
इहैवापरतो मेरो	२	७३
उ		
उत्पादितास्त्रयो वर्णा	७	७४
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ	१	५
उद्घाटितकवाटेन	९	२२

उदश्रुलोचनश्चायं	४	१००
उपशान्त गुणस्थाने	६	९५
उपोष्यविधिवत्कर्म	४	१५
ए		
एतौ तौ प्रतिदृश्येते	१	३३
एवमालोकितस्वप्ना	१०	७९
ऐ		
ऐशानो लिखितः कल्पः	४	९६
क		
कथं नु पालयाम्येनं	५	२४
कदाचिच्च नरेन्द्रेण	४	५५
कदाचित् कानने रम्ये	३	५६
कदाचिदथ गत्वाहं	४	२७
कदाचिदथ तस्यासन्	३	१
कदाचिदथ तस्यासीद्	२	१
कमलप्रमितं तस्य	१	५३
करग्रहेण सम्पीड्य	८	७७
करण्डस्थिततत्कार्य	५	२६
करीन्द्रकन्धरारूढ	१०	५६
करीन्द्रभारनिर्भुग्न	१०	५४
कर्त्तव्यो नैषु विश्वासः	१	४८
कर्मबन्धननिर्मुक्तो	४	३७
कर्माणि हत्वा निर्मूलं	१०	८०
कलसावमृतापूर्णौ	७	१३
कलाधर कलास्पर्द्धि	१	२१
कल्पाङ्घ्रिपा यदा जाता	१	५४
कल्पानोकहवीर्याणां	१	२८
कल्याणत्रितयेवर्यां	४	७६
कस्मादस्मिञ्जनाकीर्णे	५	७४
काकिणीमणिरत्नाभ्यां	९	३१
कान्तारचर्यां सङ्गीर्य	५	३५
कालान्ते नरकादिभमा	६	५३
किन्तु तेऽद्य पुरोनाहं	३	४८
किन्त्वत्र कतिचित्	४	९५
कुमार परमो धर्मो	२	५२
कुमुदप्रमितं तस्य	१	६८
कुमुदाङ्ग मितायुष्कः	१	७१
कुशेशयशयं देवं	७	१९
केनास्मिन् कर्मणा	३	५८
कैलासाचलमभ्यर्ण	९	७१
कैशवश्च परित्यक्त	६	७२
कोटीकोट्यो दशैकस्य	१	६
कोष्ठागारनियुक्तांश्च	५	७७
कौबेरी मथ निर्जेतु	९	६
कृतकृत्यस्य तस्यान्त	१०	२२
कृतग्रन्थपरित्यागः	१०	७२
कृतप्रणामौ तौ तस्य	५	२८
कृतापदान इत्युच्चैः	१०	१३
कृताभिषेचनानेतान्	७	७७
कृतानुबन्धना भूय	१०	३०
कृती कतिपयैरेष	९	२०
कृतोच्च विग्रहारम्भौ	९	४१
कृत्वानशनसच्चर्या	२	४९
कृत्वाष्टाह्निकमिद्धर्द्धि	२	९१
कृत्स्नामिति प्रसाद्यैना	९	६१
क्रमाच्चक्रधरो भूत्वा	४	७१
क्रमात् कैवल्यमुपाद्य	२	५५
क्रमादथ सुरानीका	७	२६
क्रमादापततामेतौ	५	२७
क्रमेण देशान् सिन्धूंश्च	९	९०
क्रोधान्धेन तदा दध्ये	१०	११
क्वचित्किञ्चिन्निगूढान्तः	३	७३
क्षणाददृश्यतां प्राप	७	८४
क्षणादेकः क्षणान्नैकः	७	४६
क्षेमवृत्तिं ततस्तेषां	१	५९
ग		
गङ्गापगोभयप्रान्त	९	६८
गजेन्द्रभवदाताङ्गं	७	११
गत्वा गुरु निदेशेन	६	५०
गत्वा च ते यथोद्देशं	९	८१
गन्धर्वनायकारब्ध	७	४७
गन्धर्वपुरनाथस्य	४	२३
गन्धिले विषयेऽयोध्या	४	३५
गर्भात्प्रभृत्य सौ देवो	८	३२
गव्युतिप्रमितोच्छ्रायाः	१	२६
गीर्वाणेन्द्रस्तमिन्द्राण्याः	७	२९
गुरोस्तस्यैव पार्श्वेऽतौ	४	६१
गुहोष्मणा स नाश्लेषि	९	२३
गेहं गेहं यथायोग्यं	८	१९
गृहमेधी गृहीताणुव्रतः	४	७
गृहाङ्गणानिरध्याश्च	५	५३
गृहीत्वाहं च तद्धार्ता	४	१०८
घ		
घण्टाकण्ठीरवध्वान	७	२३
घनावरणरुद्धस्य	१०	६५
च		
चक्रपूजां ततः कृत्वा	३	४३
चक्रिणा ज्ञापितो भूयः	९	३०
चक्रिणोऽभयघोषश्च	६	५९
चतुः सहस्रगणना	७	९९
चरमगात्रधरावेतौ	१०	४
चिन्तां व्यपास्य गुरुशो	१०	९२
चिह्नैरमीभिरह्नय	८	४२
चैत्रमास्य सितेपक्षे	७	९८
चैत्रे मास्यसिते पक्षे	७	२१
छ		
छत्ररत्नमुपर्यासी	९	४३
ज		
जगत्त्रितयनाथोऽपि	१०	७३
जगत्प्रीतिङ्करो योऽस्य	६	४४
जगद्गुरुं समादाय	७	२८
जगाद श्रीमती सत्यं	३	४७
जज्ञाते तनयौ राम	४	६६
जनानुरागमुत्साहं	२	७६
जनितेतस्तृतीयेऽह्नि	४	८४
जम्बूद्धीपस्य पूर्वस्मिन्	४	५१
जम्बूद्धीपस्य पूर्वस्मिन्	६	२३
जम्बूद्धीपे महामेरो	३	१३
जम्बूद्धीपे महामेरो	६	५
जयकरिघटाबन्धै	९	१००
जयताच्चक्रवर्तीति	९	२१
जयवर्माथ निर्वेगं	२	७७
जयवर्माथ निक्षिप्य	४	३६
जयवर्माह्वयं सोऽयं	२	७५
जयसेनः श्रुतिर्बुद्ध्वा	६	५५
जलदृष्टिनियुद्धेषु	१०	५
जात्यनुस्मरणाज्जीव	२	५
जिनोपदिष्टसन्मार्ग	२	६८
जीवितान्ते स दुर्ध्यान	२	३४
जीवितान्ते सुखं प्राणान्	६	३४

जृम्भिकारम्भमात्रेण	१	१६	ततोऽन्तरमतिक्रम्य	१	७०
ज्ञात्वा च भवमागत्य	२	४३	ततोऽन्तरमभुद्भूयो	१	६०
ज्योतिर्ज्ञानस्य बीजानि	१	४२	ततोऽन्तरमसंख्येयाः	१	४३
ज्योतिर्लोके महान् सिंह	८	३९	ततोऽन्यं कुरुविन्दाख्यं	२	२३
ज्योतिश्चक्रमिदं शश्वद्	१	४१	ततोऽन्यपाति करका	४	११८
ज्वलन्मुकुटभाचक्रो	१०	१०	ततोऽबुद्ध सुराधीशः	७	२२
त			ततो ब्रुहि मिथः कन्ये	३	४६
ततश्चक्रधरादिष्टा	९	४७	ततो ब्रह्मेन्द्रतां सोऽगात्	६	७६
ततस्तदवलोक्यासौ	७	७८	ततो भगवतो वक्त्रा	७	६७
ततस्तद्धचनोपाया	७	८४	ततो भरतराजेन्द्रो	८	७७
ततस्तन्निश्चयं ज्ञात्वा	७	२०	ततोऽभिवन्द्य योगीन्द्रौ	७	९६
ततस्तस्मिन् सरस्यस्य	७	३३	ततोऽभिवन्द्य सम्पूज्य	७	३७
ततस्तस्य सपर्यायां	७	६३	ततोऽभिषिञ्च्य साम्राज्ये	७	९२
ततस्तृतीयकालेऽस्मिन्	१	२७	ततोऽभिषेचनं भर्तुः	७	३४
ततस्ते जलदाकार	९	४२	ततोऽभिमत संसिद्ध्यै	८	६९
ततो गज इवापेत	१	९४	ततोऽभून्महती चिन्ता	७	२३
ततोऽच्युतस्य कल्पस्य	३	११	ततो मनुरसौ मत्वा	१	७७
ततोऽच्युतेन्द्रः प्रच्युत्य	६	७६	ततोऽमी चक्रिणोऽन्येद्यु	६	६७
ततोऽजितञ्जयश्चक्री	४	३९	ततो मुनिरसौ त्यक्त्वा	७	७४
ततो दमधराभिख्यः	७	३४	ततो यथाक्रमं तस्मिन्	१	१८
ततो दृष्टापदानोऽयं	९	४८	ततो युगन्धरस्यान्ते	४	१७
ततो धर्मोषधं प्राप्य	२	४१	ततो रक्ष मम प्राणान्	३	७१
ततो धिगिदमत्यन्त	२	३९	तयोरत्यन्त सम्प्रीत्या	६	६०
ततोऽधिरुह्यतं शैलं	९	७२	ततोऽवतीर्णः स्वर्गाग्रात्	४	७४
ततो निर्भत्स्यं तान्	२	८२	ततोवधुवरं सिद्ध	४	११६
ततो निववृते जित्वा	९	४७	ततो विदूरमुल्लङ्घ्य	८	६२
ततो निष्पत्यपूर्वोक्त	७	४८	ततो विदूरमुल्लङ्घ्य	८	६४
ततोनीलाञ्जना नाम	७	८३	ततो विधिवदानर्च	९	७३
ततो नृपतिना तस्मै	७	७७	ततो विस्मयमासेदु	८	३०
ततो नृपमुवाचेत्थ	७	६०	ततो वोचमहं ताभ्यां	४	७०

ततोऽसौ धृतदिव्यास्त्रो	९	४	ततः प्राचीं दिशं जेतुं	८	६१
ततोऽसौ भावयामास	६	९३	ततः प्रापुः सुराधीशा	७	३२
ततोऽस्मद्गुरुरेवासीत्	४	४७	ततः सपदि सञ्जात	१	६६
ततोऽस्य चेतसीत्यासीत्	७	८७	ततः समर संघट्टे	९	९८
ततोऽस्य योग्यतां मत्वा	६	८४	ततः सर्वार्थसिद्धिस्थो	७	७७
ततोऽस्य सवयोरूप	७	४९	ततः सिद्धार्थनामैत्य	८	२०
ततोऽस्य मतिरत्यासीद्	८	२	ततः सुखोपविष्टौ	६	१६
ततोऽस्या दृढधर्माख्यो	३	१९	ततः सौमनसोद्यान	३	२०
ततः कतिपयैरेव	९	३७	ततः संवत्सरे पूर्णे	८	८
ततः कतिपयैर्दैवै	७	४१	ततः स्वायुः क्षयं बुद्ध्वा	२	९०
ततः कलियुगेऽभ्यर्णे	१०	४९	ततः स्वासनकम्पेन	७	११२
ततः कल्याणि कल्याणं	३	६६	तत्कार्यद्धैतमासाद्य	३	३८
ततः कालात्यये धीमान्	६	९४	तत्कीदृशं कथा वेति	३	५०
ततः कुमारकालोऽस्य	७	६८	तत्पादौ प्रणमन्नेव	३	४१
ततः किमत्र कर्त्तव्य	३	३९	तत्पुराधिपतेः श्रीमद	४	५३
ततः कृताभिषेकोऽसौ	१	९५	तत्प्रकाशकृतोद्योतं	९	३२
ततः कृतिमतिर्भुक्त्वा	६	९०	तत्प्रश्नावसितावित्थं	१०	४७
ततः क्षेपीय एवासौ	१०	३९	तत्फलं सन्मतिं मुक्त्वा	१०	५२
ततः पर्याकुलाः सत्यः	३	३२	तत्र कल्पतरुन् धुन्वन्	२	१८
ततः पाणौ महाबाहु	४	११९	तत्र नन्दनपूर्वाशा	४	२९
ततः पुरोधाः कल्याणं	८	१८	तत्र पट्टकशालायां	३	७७
ततः पृतनया सार्द्धं	३	४०	तत्र पुर्यां प्रभाकर्या	५	४६
ततः प्रचलितासेना	८	६३	तत्र प्रभाकरीपुर्यां	४	२८
ततः प्रच्युत्यकालान्ते	४	१०	तत्र वातायनद्धार	६	३
ततः प्रच्युत्य शार्दूल	५	६९	तत्रवृत्तिं प्रजानां स	७	७३
ततः प्रतीपमागत्य	९	१२	तत्र श्रीभवने रम्ये	५	७
ततः प्रयाणकैः कैश्चित्	५	९७	तत्राधिरोप्य परिविष्ट	७	११९
ततः प्रसेनजिज्जज्ञे	१	८०	तत्रानीतश्च तन्मध्ये	२	२८
ततः प्रस्थानगम्भीर	५	४	तत्रामरकृतानेक	७	४२
ततः प्रस्थानिकैः पुण्य	८	६०	तत्रावासित साधनो	८	८०

तत्रावासित सैन्यं च ९
तत्रासीत् पाटलीग्रामे ३
तत्रासीनश्च संशोध्य ९
तत्रासीनं तमिन्द्राद्याः ८
तत्रासौ सुखमावसत् ७
तत्रास्ति मन्दरात्पूर्वा ३
तत्रोपपादशय्याया २
तथात्रैव भवद्धंशे २
तथापप्तद्दिवो देव ८
तथाप्युग्रं तपो तप्त ८
तथा मतिवराद्याश्च ६
तथा युष्मत्पिता युष्मन् २
तथासीनं च तं देव ७
तथासीनस्य चोद्यान ७
तथैकादशभिर्मासैः ६
तथैवमपरं राजन् २
तदनन्तरमेवाभून्नाभिः १
तदाकर्णनमात्रेण १०
तदाकार्यं द्वयं तस्य ३
तदागत्य सुराः सर्वे १
तदा पापास्रवद्वार ४
तदा प्रक्षुभितां बोधि ८
तदा प्रभृति सुत्राम ७
तदा प्रीतिङ्करस्येति ६
तदा भरतराजेन्द्रो १०
तदाभूदर्भकोत्पत्तिः १
तदा भूवंस्तयोरेव ६
तदा मर्त्याह्यमर्त्याभा १
तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा ७
तदा स्थितिर्मनुष्याणां १
तदासीत्तव मिथ्यात्व ६
तदुन्मुद्य तदन्तस्थं ७
तदुपङ्गं गजादीनाम् १
तदुपायं च तेऽद्याहं ३
तदुपालम्भमित्युच्च ४
तदेति मद्वचः श्रुत्वा ४
तदेव युवराजोऽपि १०
तदैतदभवत्तस्याः ३
तद्गन्धलोलुपं तत्र ७
तद् गृहाणाद्य सम्यक्त्वं ६
तद्वक्षे श्रुणु सौम्याङ्गि ३
तद्वार्तार्कर्णनात्तूर्णं ३
तद्वार्तार्कर्णनाद्वाङ्गा ७
तद्धियोयगादहं ६
तनुच्छाया च तस्यासीत् ३
तन्मामुदक्कुरुन् पुत्र २
तन्व्यौ कच्छमहाकच्छ ७
तपो जिनगुणर्द्धिश्च ४
तपोवनमथोभेजे ८
तमिदानीमनुस्मृत्य ३
तमिस्रेति गुहा यासौ ९
तयोरत्यन्तसम्प्रीत्या ६
तयोरेव सुता जाता ६
तयो सूनुरभूद्देवो ३
तयोः पुत्री बभूवासौ ३
तयोः प्रहसिताख्योऽयम ४
तरुणस्य वृषस्योच्चै १०
तल्लोभादिष्टका भूयो ७
तवधर्मामृतं स्रष्टु ७
तवाभिज्ञानमन्यच्च ४
तस्मात्ते दर्शनं सम्यग् ६ २७
तस्माद्धिग्धिगिदं रूपं ७ ८७
तस्मान्नास्माभिराक्रान्त १० ३४
तस्मान्मा स्म गमः शोकं ३ ९
तस्मिन् पुत्रे नृपस्यास्य ६ ६१
तस्यैव काले जलदाः १ ८६
तस्य कालेऽति सम्प्रीताः १ ७५
तस्य काले प्रजाजन्य १ ६९
तस्य काले प्रजा दीर्घम् १ ७८
तस्य काले प्रजास्तोक १ ७२
तस्य काले भवेत्तेषाम् १ ६५
तस्य काले सुतोत्पत्तौ १ ८५
तस्य पाता तदासीच्च ८ ९
तस्य प्रागुक्तराशायां ७ ३३
तस्यानुजः कुमारोऽभू ८ १०
तस्याभुवन्महाप्रज्ञाः १ ९६
तस्यामादधुरभ्यर्ण ७ १७
तस्यायुरममप्रख्य १ ३७
तस्याः पतिरभूत्खेन्द्र १ ९१
ताभ्यामलङ्कृते पुण्ये ७ ३
तावच्च चक्रिणा बन्धु ४ ११०
तावच्चपरचक्रेण ९ ४०
तावच्च मन्त्रिणो मुख्याः १० ३
तावच्चारणयोर्युग्मं ६ १४
तावभ्येत्य समभ्यर्च्य २ ६६
तावान्निर्जित निःशेष ९ ६६
तां काण्डकप्रपाताख्यां ९ ६७
तुटिकाब्दमितं तस्य १ ५०
ते तु स्वव्रतसिद्ध्यर्थ १० २८
तेनावबुद्धाच्युतेन्द्र ३ ४२
तेनोपशमभावेन ३ ६५
तेऽप्यष्टौ भ्रातरस्तस्य ६ ९९
तेषामाहारसम्प्रीति १ १३
तेषामुद्भिन्न वेलाना ७ २४
तेषां कृतानि चिह्नानि १० ३६
तेषां विक्रियया सान्त १ ४६
तेष्वन्त्यो भवती भर्त्ता ४ ४६
तेष्वव्रता विना सङ्गात् १० २७
तैश्च तस्य किलाङ्गानि २ २२
त्यक्ताहार शरीरः सन् ४ ८
त्रयस्त्रिंशत्पयोराशि ६ ९६
त्रिज्ञानविमलालोकः ४ १९
त्रिषष्टिलक्षाः पूर्वाणां ७ ७८
त्रिसहस्राधिक त्रिंशत् ६ ९७
तन्निर्वर्ण्य चिरं जात ४ १०९
त्वमप्यम्बावलम्बेथाः ६ ३०
त्वमुद्धाट्य गुहाद्वारं ९ १८
त्वयेश पुत्र नप्तृभ्यः ७ ११०
त्वय्यसाधारणी प्रीति ४ ३१
त्वं दिष्ट्या वर्द्धसे कन्ये ४ ८७
त्वं विद्धि मां स्वयंबुद्धं ६ २०
त्वामायुष्मन्जगन्मान्यो ९ ९३
तं तदा प्रतिमालोक्य २ ३
तं रूप्याद्रिगुहाद्वार ९ १७

द

दत्वा पूपं निगूढं स्व ७ ८७
दधद्धीरतरां दृष्टिं १० ६
दध्वनद् दुन्दुभिध्वानै ३ २८
दध्वानध्वनदम्भोद ८ ४०
दामनी लम्बमाने खे ७ १२

दम्पत्योरिति सम्प्रीत्या ६ ३३
दाहज्वरपरिताङ्ग २ १५
दिव्याननुभवन् भोगान् ४ २०
द्विरुक्तसुषमाद्यासीद् १ ७
द्विषड्योजनमागाह्य ८ ७१
दीप्तामेकां च सज्वालां २ ८३
द्वीपे जम्बूमतीहैव २ ७१
दूत तातवितीर्णां नो ९ ९७
दूतसात्कृतसन्मानाः ९ ८२
दूरानतचलन्मौलि ९ २७
देवदानवगन्धर्व १० ४०
देव दिग्विजयस्यार्द्धं ९ १०
देवस्य वज्रदन्तस्य ४ १०३
देवागमेक्षणात्तस्याः ३ ३०
देव्यः षष्टिसहस्राणि ५ २२
देव्यां वसुन्धराख्यायां ४ ७०
दोषः कोऽत्र गुणः कोऽत्र १० ४५
दोः सहस्रोद्धृतैः कुम्भै ७ ३७
दृष्टाः स्वप्ने मृगाधीशा १० ७१
दृष्ट्वा तद्विलयं सद्यो ५ १०
दृष्ट्वा तौ सहसासी ६ १५
दृष्ट्वा प्रमुदितं तेषां ७ ४५
दृष्ट्वा स्वप्नाविमौ स्पष्टं २ ८४

ध

धनदेवचरो योऽसा ८ ११
धनदेवोऽपि तस्या ६ ८९
धावमानः शिलास्तम्भ ५ ८१
धीमन्निमां चलां लक्ष्मीं २ ४
ध्वनौ भगवता दिव्ये १० ८२

न

नकुलोऽयं भवेन्यस्मिन् ५ ८५
नगर्यां केशवोऽत्रैव ६ ८२
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां ६ ७७
नगर्या मलकाख्यायां ५ ४०
नगर्यामिह धुर्योऽहं ४ ८२
नद्योरुत्तरणोपायः ९ ३४
नन्दश्च नन्दिमित्रश्च ३ ५४
नन्दिषेण नृपानन्त ६ ६४
नन्द्यावर्तविमानेऽभू ६ ४०
नभोङ्गणमथापूर्य १ ३८
नमत्खचर राजेन्द्र २ ५३
नमस्कार पदान्युच्चै ३ १२
नमिरनमयदुच्चै ७ १२०
नमिश्च विनमिश्चेति ७ १०८
नमिश्च विनमिश्चैव ९ ६४
नयुतप्रमितायुष्कः १ ७४
नलिनप्रमितायुष्कः १ ५७
नवमासं स्थिता गर्भे ६ ६
नवसंयतएवासौ २ ७८
नवयौवनपूर्णोना २ ९५
नाट्यमालामरस्तत्र ९ ६९
नातिदूरे निविष्टस्य ९ ७५
नातिदूरे पुरस्यास्य ७ ९७
नात्यासन्नविदूरे ८ ३५
नाधिराज्यं विभात्यस्य ९ ९५
नानगारा वसून्यस्मत् १० २३
नानर्द्धिभूषणं दृष्ट्वा ३ ५७
नाभिराजाज्ञया स्रष्टु ७ ७१
नाभिराजोऽन्यदा दृष्ट्वा ७ ५१
नाभिराजः समुद्दिभन्न ७ ४३
नायकैः सममन्येद्युः ९ ३६
नारीरूपमयं यन्त्र ७ ८६
नास्ति चक्रस्य विश्रान्तिः ९ ७७
नित्य प्रसादलाभेन ५ १
नित्यो निरञ्जनः किञ्चि १० ८७
निदानं वासुदेवत्वे ४ ६२
निध्यानादजयूथस्य १० ५५
नियुद्धमथ सङ्गीर्य १० ९
निरतिशयमुदारं ६ १००
निरर्गलीकृतं द्वारं ९ ३८
निरुद्धोच्छ्वासदोः ६ ४
निर्नामिका वणिक्पुत्री ५ ४२
निर्वर्ण्यपट्टकं तत्र ४ ९२
निर्वाणमगमत्पद्मा ४ २५
निश्चित्येति समाहूय ५ २५
निष्टप्तकनकच्छायः २ ९६
निःसपत्नां महीमेनां ९ ५०
नूनं स्वयम्प्रभा चर्या ४ ९८
नृपदानानुमोदेन ५ ६६
नृपप्रश्नवशात्तस्मिन् ४ ५६
नृपस्तु सुविधिः पुत्र ६ ६९
नृपैरष्टादशाभ्यस्त ६ ६८
नेदुः सुरानका मन्द्रं ८ २७
नोदरे विकृतिः कापि ७ १८
नौ द्रोणी संक्रमादीनि १ ७९
न्यग्रोधपादपस्याधः ८ ३६
न्यस्तराज्यस्तेषु सः १ ९९

प

पञ्चमी दुःषमा ज्ञेया १ ८
पण्डिता तत् क्षणं प्राप्ता ४ ८६
पतद्गङ्गा जलावर्त ९ ६०
पतिब्रुवाश्च ये मिथ्या ३ ७४
पदानि सप्तातामूहुः ७ ८५
पद्मप्रमितमस्यायुः १ ६१
पद्माङ्गप्रमितायुष्कः १ ६४
परमायुरथास्या ७ ५०
परवादिनगास्तेऽपि २ ७
परिचितयतिहंसो १० ९७
परिवेषोपरक्तस्य १० ६३
परीत्य प्रणतो भक्त्या ७ ११३
पर्वप्रमितमाम्नातम् १ ८१
पलालपर्वत ग्रामे ३ ६०
पल्यस्य दशमो भागः १ ३१
पल्योपमपृथक्त्वा २ ९८
पश्चाच्च नवमासेषु ७ ८
पांसुधूसररत्नौघ १० ६०
पिता तु मयि निक्षिप्त ४ १३
पितः पतितवानस्यां २ ३८
पितुः क्रमागतां लक्ष्मी ४ ६
पितृभक्त्या स तन्मूर्च्छा २ ३७
पिहितास्रवनामासौ ५ ५६
पिहितास्रव भट्टार ४ ७८
पीठो वृषभसेनोऽभूत् ७ ५९
पीत्वाथो धर्मपीयूषं १० ४२
पुत्र नप्तृभिरन्यैश्च २ ५७
पुत्राणां च यथाम्नायं ७ ६७

पुत्रिके च तयोर्जाते ३ ५५
पुत्री मा स्म गमः शोक ४ २
पुनरन्तरमत्राभूद् १ ६३
पुनरन्तरमुल्लङ्घ्य तत् १ ७३
पुनरप्यन्तरं तावद्धर्ष १ ६७
पुनरप्यवदल्लब्ध २ २४
पुनरेकाकिनः सिंह १० ५३
पुनर्मन्वन्तरं तत्र १ ५२
पुनर्मन्वन्तरं प्राग्वद् १ ५६
पुनः प्रशान्त गम्भीरे २ ८
पुरा किल मृगा भद्राः १ ४५
पुराणं मुनिमानम्य १ २
पुरास्यामवसर्पिण्यां १ ९
पुरे धान्याह्वये ज्ञातः ५ ८२
पुरोधाय शरं रत्न ८ ७४
पुरोधोवचनात्तुष्टो ५ ५५
पुंसां स्त्रीणां च चारित्र १० ६६
पुष्पवन्तावथाषाढ्याम् १ २९
पूतं स्वायम्भुव गात्रं ७ ३५
पूर्वकोटिमितं तस्य १ ८४
पूर्ववत्पश्चिमे खण्डे ९ ३९
पूर्वोक्त कुलकृत्स्वन्त्यौ ७ २
पूर्वोक्ता नृपपुत्राश्च ६ ७३
प्रचकम्पे तदावास ३ ३
प्रतथेऽत महाभागो ८ ४७
प्रतिश्रुतिरिति ख्यातस्तदा १ ३०
प्रत्यवूबुधमित्युच्चै ४ ३०
प्रत्यासन्न मृतिं बुध्वा २ २६
प्रत्यासन्नमृतेस्तस्य २ १३
प्रत्युक्तश्च मयेत्यस्ति ४ १०२
प्रदित्सतामुना राज्यं ५ १९
प्रनृत्यतां प्रभूतानां १० ५७
प्रपूर्यन्तेस्म षण्मासा ८ १
प्रबोधितश्च सोऽन्येद्य ४ ४१
प्रभञ्जननृपाच्चित्र ६ ६६
प्रभञ्जनोऽभूत्सेनानीः ५ ६८
प्रभञ्जश्च्युतस्तस्मात ५ ७२
प्रभाकर विमानेऽभू ६ ४१
प्रभासमजयत्तत्र ९ ५
प्रभोः प्रबोधमाधातुं ७ ८९
प्रमोदभरतः प्रेम ७ ५७
प्रयाणपट्हेषूच्चैः ८ ४३
प्रवालपत्रपुष्पाढेः १० ३२
प्रशस्य खेचराधीशः २ ६१
प्रसवागारमिन्द्राणी ७ २७
प्रहीणा वृक्षवीर्यादि १ २३
प्राक्केन हेतुना यूयं १० ३१
प्रागक्षिगोचरः सम्प्रत्येष १० ९०
प्रागुक्ताश्च मृगा जन्म ६ ९
प्राग्भाषिते विदेहेऽस्ति ३ २२
प्राग् विदेह महाकच्छ २ ६४
प्राच्यानिवास भूपालान् ९ २
प्राप्ता जातिस्मरत्वंच ५ ९३
प्रार्थयेऽहं तथाप्येतद् ४ ११४
प्रायो व्याख्यात एवास्य ९ ८७
प्रीतिवर्धनमारोप्य ४ २१
प्रीतेरद्य परां कोटि ४ ११२
प्रेक्षतकेचिदागत्य ३ ७८
प्रोच्चचार महाध्वानो ८ २८

फ

फलिष्यति विपाके ते ३ ६३
फले ग्रहीनिमान् दृष्ट्वा ७ १०३
फाल्गुने मासितामिस्र ८ ३७

ब

बद्ध्वायुर्नरिकं जातः ५ ४७
बलवान् कुरुराजोऽपि ९ ४६
बहुभिःखेचरै : सार्धं ४ ३३

भ

भक्त्या प्रणमतस्तस्य १० ४१
भुक्त्वापि सुचिरं कालं ९ ८३
भगवन्तौ युवां क्वत्यौ ६ १७
भगवानथ सञ्जात ८ ३१
भगवानिति निश्चिन्वन ८ ४
भरतस्यानुजा ब्राह्मी ८ ५४
भरतेशः किलात्रापि १० ८
भरतो भारतं वर्षं १० २१
भवता किन्नु दृष्टोऽसौ ४ ५९
भवद्भविष्यद् भूतं च ८ ५०
भवितात्मासुखं प्राणा २ ९३
भुक्वामरीं श्रियं तत्र ४ ६८
भूयोऽप्यनुनयैरस्य ९ ८८
भूयो भूयः प्रणम्येशं १० ६९
भूयः प्रोत्साहितो देवै ९ ५९
भेजे वर्षसहस्रेण २ ९७
भोगं काम्यन्विसृष्टासु २ ८०
भोगेषु सतृषावेतौ ७ १०९
भोगैरनारतैरेवं ५ ८
भो धीर ! धीरतामेव ३ ७
भो भव्य ! भव्य एवासौ २ ७०

म

मणिमालीत्यभूत् तस्मात् २ ३२
मत्वेति नाकिभिर्नून ७ ३६
मदीयं राज्यमाक्रान्त ९ ९४
मध्यतूर्यविभूषास्रग् १ १५
मध्ये गन्धकुटीद्धर्द्धिं ८ ४८
मध्ये रत्नद्वयस्यास्य ९ ४४
मनोहराङ्गी तस्याभूत् १ ९२
मनोहराख्यमुद्यान ३ २७
मनोहरातद्भमयोः ४ १२
मनोहरा मयि स्नेहात् ४ १४
मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य १० ९६
मन्त्रिणश्च तदामात्य २ २
मन्दरस्थ विरस्यान्ते ४ ४३
मन्यसेऽनन्यभोगीनां १० १५
मन्वन्तरमसङ्ख्येया १ ३६
मन्वन्तरमसङ्ख्येयाः १ ४९
मया तत्र विचित्रस्य ४ ८९
मया सृष्टा द्विजन्मानः १० ४३
मरीचिश्च गुरोर्नप्ता ७ १०६
मरीचिवर्ज्याः सर्वेऽपि ८ ५६
मरुद्देवोऽभवत्कान्तः १ ७६
महाकलकलैर्गीतै ७ ४०
महाखेचर भोगाहि २ ७९
महानघनरेन्द्रस्य ५ ५२
महापीठोऽभवत्सोऽपि ६ ८१
महाबलभवेऽस्मत्तो ६ २६
महाबलभवे येऽस्म ६ ४६
महाबलिनि निक्षिप्त १० ११
महामतिश्च सम्भिन्न १ ९७

महामहमहापूजां १० ८४
महीधरे निजं राज्यभारं ४ २४
माघ कृष्ण चतुर्दश्यां १० ८५
मातुलान्यास्तवायान्त्या ४ ८५
मानसोऽस्य प्रवीचारो ६ ७४
मायानिद्रामपाकृत्य ७ ४४
मार्गप्रबोधनार्थं च ८ ३
माला च सहजा तस्य ३ २
मां वित्तं किंकरं भर्तुः ७ ११४
मासमात्रावशिष्टं च २ ८७
मासाद्धित्राश्च नो यावत् ७ १०२
माहेन्द्रकल्पेऽनल्पर्द्धिं २ ५०
मासैः षोडशभिः पञ्च ६ ९८
मुनिस्तदवलोक्यासौ ३ ६२
मृष्यतां च तदस्माभिः १० १७
मौनी ध्यानी स निर्मानो ८ ३४
म्लेच्छखण्डमखण्डाज्ञः ९ २४
म्लेच्छराजबलैः सार्द्धं ९ २५

य

यत् किञ्चिद्रुचितं तुभ्यं ४ १११
यत्रोन्मग्नजला सिन्धु ९ ३३
यथावसर सम्प्राप्तः १ २४
यथाविधिस्ततस्तप्त्वा ४ १८
यथोचितामपचितिं ६ ८६
यथोदितस्य सूर्यस्य ३ ८
यदा दम्पतिसम्भूति ६ ७
यदा पट्टकमादाय ४ ८८
यदा प्रबलतां याताः १ ५१
यमैः सममुपारूढ ५ १३
यशस्वती सुनन्दाभ्यां १० ७८
यावदभ्येतिसेनानी ९ ६३
युगन्धरजिनेन्द्रस्य ४ ४९
युवयोर्भोगमद्याहं ७ ११६
युवा तु दोर्बलीप्राज्ञः ९ ८६
युवा बाहुबली धीमान ८ ५८
युवां च परिशिष्टायु ४ ८३
युष्मत्सन्दर्शनाज्जात ६ १८
येऽणुव्रतधरा धीरा १० २४
यो नाभेस्तनयोऽपि १० १००
योऽसौ पुरिमतालेशो ८ ५१

र

रतिषेण महीभर्तुश्चन्द्र ६ ६५
राजा सविस्मयं भूयो ५ ७३
राज्ञा च घातितो मृत्वा ५ ९२
राज्यभोगात्कथंनाम ७ ८२
राज्यान्ते केशवेऽतीते ४ ६७
रत्नवृष्टि रथापप्त ८ २५
रत्नैश्चाभ्यर्च्य रत्नेशं ८ ७५
रुच्याहार गृहातोद्य १ १४

ल

लक्षं कैलासमासाद्य १० ७५
लक्ष्मीमतिमथोवाच ३ ३५
लक्ष्मीरिवाख्य कान्ताङ्गी ३ २३
लक्ष्मीरिवार्थिनां प्रार्थ्या ४ १०४
लक्ष्मीवानभिषेकपूर्व ४ १२०
ललिताङ्गच्युतौ तस्मात् ३ ६९
ललिताङ्गश्चयुत ४ ४७
ललिताङ्गस्ततश्च्युत्वा ४ २२
ललिताङ्गस्ततोऽसौ मां ४ १६
ललिताङ्गस्य तत्रासं ३ ६८
लवङ्गलवलिप्राय ८ ७८

व

वक्रेऽपि गुणवत्यस्मि ८ ७२
वज्रजङ्घभवे यास्य ७ ६३
वज्रजङ्घानुजां कन्या ५ २
वज्रदन्ताह्वये सूनौ ६ ९१
वज्रनाभिरथापूर्ण ६ ८३
वज्रनाभेर्जयागारे ६ ८८
वज्रबाहुपतिस्तस्य ३ १५
वज्रबाहु महाराजो ५ ५
वज्रास्थिबन्धनाः सौम्याः १ १२
वपुरारोग्यमैश्वर्यं ५ १७
वराहार्यश्च नन्दाख्ये ६ ३९
वराहोऽयं भवेऽतीते ५ ७९
वर्त्तितो द्रव्यकालेन १ ४
वस्तुवाहनकोटीश्च ८ ५
वासगेहेऽन्यदाशिश्ये ६ २
विजयोऽनन्तवीर्यो ७ ६०
वत्सरानशनस्यान्ते १० २०
विदितसकलतत्त्वः १० ९५
विद्धि तभ्दाविपुण्यर्धि २ ८६
विद्धि ध्यानचतुष्कस्य २ ५८
विद्धिमां विजयार्द्धस्य ९ १५
विद्या वैमुख्यतो ज्ञात्वा २ २०
विद्यासु विमुखीभावं २ १४
विध्वस्ते पन्नागानीके ९ ४९
विनोपलब्ध्या सद्भावं ४ ५७
विभीषणनृपात्पुत्र ६ ६३
विभोर्निगूढ्वर्यस्य ८ ६
विमानमापतत्स्वर्गाद् ७ १४
विमाने श्रीप्रभे तत्र ६ ३५
विमुक्तप्रग्रहैर्वाहै ८ ७०
विरुद्धोच्छ्वासदौस्थित्या ६ ४
विंशत्यब्धिस्थितिस्तत्र ४ ३४
विश्वदृश्वै तयोः पुत्रो ७ ५
विश्वस्यधर्मसर्गस्य १० ४४
विषकण्टकजालीव १० १६
विषयस्यास्य मध्येऽस्ति १ ९०
विषयातन्वभूद्दिव्या २ ११
विषये पुण्डरीकिण्यां ४ ६५
विषये मङ्गलावत्यां ४ ११
विषये मङ्गलावत्यां ६ ५४
विषये वत्सकावत्यां ४ ६९
विसृज्य च पुरोदूत ५ ३१
विहिततिनिखिल ३ ८०
विहृत्य सुचिरं विनेय १० ९८
वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो ७ ४८
वेदिकातोरणद्धार ८ ६५
व्याघ्रोऽष्टादशभिर्भक्त ५ ६४

श

शङ्खः शं खचरैः सार्धं ८ ४१
शतानि पञ्चपञ्चाग्राम् १ ७७
शनैः शनैर्विवृद्धानि १ ८७
शरीरत्रितयापाये १० ८६
शान्तिक्रियामतश्चक्रे १० ७०
शार्दूल भूतपूर्वो यः ६ ३८
शार्दूलार्यचराद्याश्च ६ ६२
शार्दूलार्यादियोऽप्याभ्यां ६ ३२

शार्दूलार्यादियोऽप्यस्मिन् ६ ३७
शिरः पुत्रस्य निर्भिद्य ५ ९१
शिलातले निविष्टं च ५ ५९
शुनोऽर्चितस्य सत्कारै १० ६१
शुभे दिने शुभे लग्ने ७ ५६
शुष्कमध्य तडागस्य १० ५९
शेषेभ्योऽपि स्वसूनुभ्यः ७ ९३
शेषो विधिस्तु निःशेषः १ २२
श्रद्धादिगुणसम्पत्या ५ ३६
श्रद्धादि गुणसम्पन्नः ८ २४
श्रीधरोऽथ दिवश्च्युत्वा ६ ५७
श्रीप्रभाद्रौ तमभ्यर्च्य ६ ४५
श्रीमती गुरुणेत्युक्ता ४ ८०
श्रीमती च भवत्तीर्थे ५ ९५
श्रीमती तनयाश्चामी ५ १२
श्रीमती वज्रजङ्घादि ८ २३
श्रीमते सकलज्ञान १ १
श्रीमत्या सह संश्रित्य ५ ३८
श्रीमान् भरतराजर्षि ८ ४६
श्रीमान् वृषभसेनाख्यः ८ ५२
श्रीषेण इत्यभूद्राजा २ ७४
श्रीर्ह्री र्धृतिश्च कीर्तिश्च ७ १६
श्रुतकीर्तेरथानन्त ५ ७१
श्रुत्वा धर्मं ततोऽपृच्छत् ५ ३९
श्रुत्वेति स्वान्भवान् भूयो ५ ४३
श्रुत्वोदारं च गम्भीरं २ ६०
श्रुणु पुत्रि तवास्माकं ४ ३
श्रुणु भोस्त्वं महाराज २ ९
श्वशुर्यस्ते युवावज्र ४ ९०

ष

षड्भिर्मासैरथैतस्मिन् ७ ६
षण्मासानशनं धीरः ७ १०१

स

स इमां पुण्यपाकेन २ १०
स एव शतबुद्धिस्ते ६ ४८
स एष भवतः कण्ठे २ ४४
सखीभिरथ सोपाय ३ ३१
सङ्क्रन्दननियुक्तेन ७ ७
स चक्रवर्त्ति तामेत्य ५ ६१
स चान्यदा महामेरौ २ ५१
स जातिस्मरतां गत्वा २ ३५
स तथा दुर्मृतिं प्राप्य २ ३०
स तथापि कृतप्रज्ञो ३ १७
स तद्वचनमाकर्ण्य २ २५
स तया मन्दरे कान्त २ ९९
सतां सत्फलसम्प्राप्त्यै १० ७४
सत्यं गुरुः प्रसन्नो नौ ७ ११७
सत्वरं च समासाद्य २ ८९
सदाप्यधिनभोभागं १ ३४
स देवदेवे निक्षिप्य २ ५४
सधान्यैर्हरितैः कीर्ण १० २९
सनत्कुमार माहेन्द्र ७ ३१
स निवेदित वृत्तान्तौ ९ ९१
सन्त्येवानन्तशो जीवा १० ३३
सपत्रीचक्रिणामुक्तः ८ ७३
स परित्यज्य संयोगा २ ४२
सप्तसागरकालायुः ४ ९
सप्रणामं च सम्प्राप्तं ९ १४
सप्रश्रयमथासाद्य ८ १७
स बह्वारम्भ संरम्भ २ १२
समन्त्रिकं ततो राज्ये ५ ९९
समम्भ्रातृभिरष्टाभि ६ ९२
समवादी धरद् ब्राह्मी ७ ६६
समागधवदाध्याय ९ ५४
समाधिना कृतप्राण ३ २१
समाधिना तनुत्यागा ६ ७१
समाहूय महाभागान् ७ ७६
समुच्चरन् जयध्वान ९ ५५
स मुनिः कथमेवात्र ५ ५१
समं भगवतानेन ६ ८७
सम्यग्दर्शनपूतात्मा २ ४८
स यशोधरयोगीन्द्र ५ २१
सरसीजलमागाढौ १० ७
सरः सहंसमब्धिश्च ७ ५४
स राज्यं सुचिरं भुक्त्वा २ ४७
स राज्यमकरोच्चापं ९ ५२
स राज्यभोगनिर्विण्ण ५ ११
स रुष्टः पुत्रमाहन्तु २ २९
सर्वेऽपि ते वृषभसेन १० ९९
स व्योममार्गमुत्पत्य ७ ११८
स शरो दूरमुत्पत्य ९ ५३
स श्रीमान् कुरुशार्दूलः ८ ५३
स सन्मतिरनुध्याय १ ४०
ससम्भ्रमं च सोऽभ्येत्य ९ ९
सस्यान्यकृष्टपच्यानि ७ ७०
स सौमनस पौरस्त्य २ ६३
सागरोपमकोटीनां १ १०
सागरोपमकोटीनां १ २५
सा तदा तद्ध्वनिं श्रुत्वा ३ २९
सा पश्चत् षोडश स्वप्ना ७ १०
सापि सम्यक्त्वमाहात्म्यात् ६ ३६
सारदारुभिरुत्तम्भ्य स्त ९ ३५
सिंह संहारसंध्याभ ८ १४
सीमन्धरार्हत्पादाब्ज ४ ७२
सुतायातिबलाख्याय २ ९२
सुतोऽर्द्धचक्रिणश्चन्द्र ४ ५
सुनन्दायां महाबाहु ७ ६२
सुनन्दा सुन्दरीं पुत्रीं ७ ६४
सुन्दरीचात्तनिर्वेदा ८ ५५
सुन्दर्याश्च सुतोऽभूवं ६ २४
सुप्रभा च समासाद्य ४ ३८
सुबाहुरहमिन्द्रोऽभूद्यः ६ ८०
सुमेरुमैक्षतोत्तुङ्गं ८ १३
सुरा जाता विमानेशा ५ ६७
सुरेन्द्रनिर्मितां दिव्यां ७ ९४
सुरैर्दूरादथालोकि ८ ४४
सुषमालक्षणः कालो १ १९
सुसीमानगरे जज्ञे ६ ५८
सुसीमानगरे नित्यं ४ ५२
सूर्यप्रभस्य देवस्य ६ १३
सूर्येन्दू भुवनस्येव ८ १५
सेनानी प्रमुखास्तावत् ९ ७६
सेनान्यं बलरक्षायै ८ ६७
सोऽत्यन्तविषयासक्ति २ ३३
सोऽत्र सत्रौ समैक्षिष्ट २ ८१
सोऽदर्शद्भगवत्यस्यां ८ १२
सोऽन्यदा नृपतौ चैत्य ५ ८६
सोन्वक् प्रदक्षिणी कृत्य ८ ४९

सौधर्माधिपतेरङ्कम	७	३०	स्वयं निर्णीतमर्थं तं	७	३०
स्कन्धाधिरोपितां कृत्वा	७	९६	स्वयं स्मकरकं धत्ते	४	११७
स्नेहेनेष्टवियोगोत्थः	१०	८९	स्वसारं च नमेर्धन्यां	९	६७
सम्प्रेक्ष्य भगवद्रूपं	८	२२	स्वसुताग्राममन्येद्युः	७	८९
स्वपट्टकमिदं चान्य	४	१०७	स्वानुजन्मानमत्र स्थं	७	७०
स्वप्नद्वयमदः पूर्व	२	८७	स्वानुजाया विवाहार्थं	७	८३
स्वप्नानेवं फलानेतान्	१०	६७	स्वायुरन्तेऽहमिन्द्रोऽभूद्	४	७३
स्वभुक्तिक्षेत्र सीमानं	९	७६	स्वायुरान्ते ततश्च्युत्वा	४	६४
स्वबन्धुनिर्विशेषा मे	७	४४	**ह**		
स्वर्गभूनिर्विशेषां तां	३	१४	हयहेषितमातङ्ग	७	३२
स्वयम्प्रभजिनोपान्ते	६	२७	हरितैरङ्कुरैः पुष्पैः	१०	२६
स्वयम्प्रभा विमानेऽग्रे	६	२२	हरिवाहन नामासौ	७	८०
स्वयम्बुद्धात्प्रबुद्धात्मा	७	४१	हस्त्यश्वरथभूयिष्ठं	७	६
स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु	१	९८	हस्तिनाख्येपुरे रुयाते	७	७६
स्वयं कस्यचिदेकस्य	९	७८	हिमाचल मनुप्राप्त	९	७१